हमारी वसीयत और विरासत

लेखक :

श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

फरवरी १९८६]   [मूल्य : ६-५० रुपया

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

लेखक :

श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रथमवार

फरवरी १९८६

मूल्य : ६-५० रुपया

मुद्रक :

युग निर्माण प्रेस, मथुरा।

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

माता भागवती देवी शर्मा

विषय-सूची

१.	इस जीवन यात्रा के गम्भीरतापूर्वक पर्यवेक्षण की आवश्यकता	५
२.	जीवन के सौभाग्य का सूर्योदय	९
३.	मार्गदर्शक द्वारा भावी जीवन क्रम सम्बन्धी निर्देश	२५
४.	गुरुदेव का प्रथम बुलावा पग-पग पर परीक्षा	४१
५.	प्रवास का दूसरा चरण एवं कार्यक्षेत्र का निर्धारण	६७
६.	विचार क्रान्ति का बीजारोपण पुनः हिमालय आमन्त्रण	७८
७.	महामानव बनने की विधा जो हमने सीखी, अपनायी	८६
८.	तीसरी हिमालय यात्रा ऋषि परम्परा का बीजारोपण	१०७
९.	ब्राह्मण, मन और ऋषि कर्म	१२५
१०.	हमारी प्रत्यक्ष सिद्धियाँ	१३८
११.	चौथा और अन्तिम निर्देशन	१४६
१२.	स्थूल का सूक्ष्म में परिवर्तन : सूक्ष्मीकरण	१५९
१३.	इन दिनों हम यह करने में जुट रहे हैं।	१६८
१४.	आत्मीयजनों से अनुरोध एवं उन्हें आश्वासन	१८३

इस जीवन यात्रा के गम्भीरता पूर्वक पर्यवेक्षण की आवश्यकता

जिन्हें भले या बुरे क्षेत्रों में विशिष्ट व्यक्ति समझा जाता है उनकी जीवनचर्या के साथ जुड़े हुए घटनाक्रमों को भी जानने की इच्छा होती है। कौतूहल के अतिरिक्त इसमें एक भाव ऐसा भी होता है, जिसके सहारे कोई अपने काम आने वाली बात मिले सके। जो हो कथा-साहित्य से जीवन चर्याओं का सघन सम्बन्ध है। वे रोचक भी लगती हैं और अनुभव प्रदान करने की दृष्टि से उपयोगी भी होती हैं।

हमारे सम्बन्ध में प्रायः आये दिन लोग ऐसी पूछताछ करते रहे हैं, पर उसे आमतौर से टालते ही रहा गया है। जो प्रत्यक्ष क्रियाकलाप हैं, वे सबके सामने हैं। लोग तो जादू चमत्कार जानना चाहते हैं। हमारे सिद्ध पुरुष होने—अनेकानेक व्यक्तियों को सहज ही हमारे सामीप्य अनुदानों से लाभान्वित होने से उन रहस्यों को जानने की उनकी उत्सुकता है। वस्तुतः जीवित रहते तो वे सभी किम्वदन्तियाँ ही बनी रहेंगी, क्योंकि हमने प्रतिबन्ध लगा रखा है कि ऐसी बातें रहस्य के पर्दे में ही रहें। यदि उस दृष्टि से कोई हमारी जीवन चर्या पढ़ना चाहता हो तो उसे पहले हमारी जीवन चर्या के तत्व दर्शन को समझना चाहिए। कुछ अलौकिक विलक्षण खोजने वालों को भी हमारे जीवन क्रम को पढ़ने से संभवतः नई दिशा मिलेगी

प्रस्तुत जीवन वृत्तान्त में कौतूहल व अतिवाद न होते हुए भी वैसा सारगर्भित बहुत कुछ है, जिससे अध्यात्म विज्ञान के वास्तविक स्वरूप और उसके सुनिश्चित प्रतिफल को समझने में सहायता मिलती है। उसका सही रूप विदित न होने के कारण लोग-बाग इतनी भ्रान्तियों में फँसते हैं कि भट-काव अन्य निराशा से वे श्रद्धा ही खो बैठते हैं और इसे पाखंड मानने लगते

हैं। इन दिनों ऐसे प्रच्छन्न नास्तिकों की संख्या अत्यधिक है जिनने कभी उत्साहपूर्वक पूजा पत्री की थी—अब ज्यों-त्यों करके चिन्ह पूजा करते हैं। तो भी अब लकीर पीटने की तरह अभ्यास के वशीभूत हो करते हैं। आनन्द और उत्साह सब कुछ गुम गया। ऐसा असफलता के हाथ लगने के कारण हुआ। उपासना की परिणतियाँ फलश्रुति पढ़ी-सुनी गईं थीं। उसमें से कोई कसौटी पर खरी नहीं उतरी तो विश्वास टिकता भी कैसे ?

हमारी जीवन गाथा सब जिज्ञासुओं के लिए एक प्रकाश स्तम्भ का काम कर सकती है। वह एक बुद्धि जीवी और यथार्थवादी द्वारा अपनाई गई कार्य पद्धति है। छद्म जैसा कुछ उसमें है नहीं। असफलता का लाँछन भी उन पर नहीं लगता। ऐसी दशा में जो गम्भीरता से समझने का प्रयत्न करेगा कि सही लक्ष्य तक पहुँचने का सही मार्ग हो सकता था, शार्टकट के फेर में भ्रम-जंजाल न अपनाये गये होते तो निराशा, खीज और थकान हाथ न लगती तब या तो मँहगा समझकर हाथ ही न डाला जाता, यदि पाना ही था तो उसका मूल्य चुकाने का साहस पहले से ही सँजोया गया होता। ऐसा अवसर उन्हें मिला नहीं, इसी को दुर्भाग्य कह सकते हैं। यदि हमारा जीवन पढ़ा गया होता, उसके साथ आदि से अन्त तक गुंथे हुए अध्यात्म तत्व-दर्शन और क्रिया विधान को समझने का अवसर मिला होता तो निश्चय ही प्रच्छन्न भ्रमग्रस्त लोगों की संख्या इतनी न रही होती जितनी अब है।

एक और वर्ग है—विवेक दृष्टि वाले यथार्थवादियों का। वे ऋषि परम्परा पर विश्वास करते हैं और सच्चे मन से विश्वास करते हैं कि वे आत्मबल के धनी थे। उन विभूतियों से उनने अपना दूसरों का और समस्त विश्व का भला किया था। भौतिक विज्ञान की तुलना में जो अध्यात्म विज्ञान को श्रेष्ठ मानते हैं उनकी एक जिज्ञासा यह भी रहती है कि वास्तविक स्वरूप और विधान क्या है ? कहने को तो हर कुंजड़ी अपने बेरों को मीठा बताती है। पर कथनी पर विश्वास न करने वालों द्वारा उपलब्धियों का जब लेखा-जोखा लिया जाता है तब प्रतीत होता है कि कौन कितने पानी में है।

सही क्रिया, सही लोगों द्वारा, सही प्रयोजनों के लिए अपनाये जाने

पर उसका सत्परिणाम भी होना ही चाहिए। इस आधार पर जिन्हें ऋषि परम्परा के अध्यात्म का स्वरूप समझना हो, उन्हें निजी अनुसंधान करने की आवश्यकता नहीं है। वे हमारी जीवनचर्या को आदि से अन्त तक पढ़ और परख सकते हैं। विगत साठ वर्षों में से प्रत्येक वर्ष इसी प्रयोजन के लिए व्यतीत हुआ है। उसके परिणाम भी खुली पुस्तक की तरह सामने हैं। इन पर गम्भीर दृष्टिपात करने पर यह अनुमान निकल सकता है कि सही परिणाम प्राप्त करने वालों ने सही मार्ग भी अवश्य अपनाया होगा। ऐसा अद्भुत मार्ग दूसरों के लिए भी अनुकरणीय हो सकता है। आत्म विद्या और अध्यात्म विज्ञान की गरिमा से जो प्रभावित हैं, उसका पुनर्जीवन देखना चाहते हैं, प्रतिपादनों को परिणतियों की कसौटी पर कसना चाहते हैं, उन्हें निश्चय ही हमारी जीवनचर्या के पृष्ठों का पर्यवेक्षण सन्तोषप्रद और समाधान कारक लग सकता है।

प्रत्यक्ष घटनाओं की दृष्टि से कुछ प्रकाशित किये जा रहे प्रसंगों को छोड़कर हमारे जीवन क्रम में बहुत विचित्रताएँ एवं विविधताएँ नहीं हैं। कौतुक-कौतूहल व्यक्त करने वाली उछल-कूद एवं जादू-चमत्कारों की भी उसमें गुंजाइश नहीं है। एक सुव्यवस्थित और सुनियोजित ढर्रे पर निष्ठापूर्वक समय कटता रहा है। इसलिए विचित्रताएँ ढूँढ़ने वालों को उसमें निराशा भी लग सकती है पर जो घटनाओं के पीछे काम करने वाले तथ्यों और रहस्यों में रुचि लेंगे, उन्हें इतने से भी अध्यात्म, सनातन, के परम्परागत प्रवाह का परिचय मिल जायेगा और वे समझ सकेंगे कि सफलता, असफलता का कारण क्या है ? क्रियाकाण्ड को सब कुछ मान बैठना और व्यक्तित्व के परिष्कार की---पात्रता की प्राप्ति पर ध्यान न देना यही एक कारण है जिसके चलते उपासना क्षेत्र में निराशा छाई और अध्यात्म को उपहासास्पद बनने-बदनाम होने का लाँछन लगा। हमारे क्रिया-कृत्य सामान्य हैं पर उसके पीछे उस पृष्ठ-भूमि का समावेश है जो ब्रह्म तेजस् को उभारती और उसे कुछ महत्वपूर्ण कर सकने की समर्थता तक ले जाती है।

जीवन चर्या के घटना परक विस्तार से कौतूहल बढ़ने के अतिरिक्त

कुछ लाभ है नहीं। काम की बात है इन क्रियाओं के साथ जुड़ी हुई अन्तर्दृष्टि और उस आन्तरिक तत्परता का समावेश जो छोटे से बीज की खाद पानी की आवश्यकता पूरी करते हुए विशाल वृक्ष बनाने में समर्थ होती रही। वस्तुतः साधक का व्यक्तित्व ही साधना क्रम में प्राण फूँकता है अन्यथा मात्र क्रियाकृत्य खिलवाड़ बनकर रह जाते हैं।

तुलसी का राम, सूर का हरे कृष्ण, चैतन्य का संकीर्तन, मीरा का गायन, रामकृष्ण का पूजन मात्र क्रिया-कृत्यों के कारण सफल नहीं हुआ था। ऐसा औड़म-बौड़म तो दूसरे असंख्य करते रहते हैं पर उनके पल्ले बिडम्बना के अतिरिक्त और कुछ नहीं पड़ता, बाल्मीकि ने जीवन बदला तो उल्टा नाम जपते ही मूर्धन्य हो गए। अजामिल, अंगुलिमाल, गणिका, आम्रपाली मात्र कुछ अक्षर दुहराना ही नहीं सीखे थे, उनने अपनी जीवनचर्या को भी अध्यात्म आदर्शों के अनुरूप ढाला था।

आज कुछ ऐसी विडम्बना चल पड़ी है कि लोग कुछ अक्षर दुहराने और कुछ क्रिया-कृत्य करने स्तवन उपहार प्रस्तुत करने भर से अपने कर्त्तव्य की इतिश्री कर लेते हैं। चिन्तन, चरित्र और व्यवहार तो उस आदर्शवादिता के ढाँचे में ढालने का प्रयत्न नहीं करते जो आत्मिक प्रगति के लिए अनिवार्य रूप में आवश्यक है। हमारी साधना पद्धति में इस भूल का समावेश न होने देने का आरम्भ से ही ध्यान रखा गया। अस्तु वह यथार्थवादी भी है और सर्वसाधारण के लिए उपयोगी भी। इस दृष्टि कोण को ध्यान में रखकर ही जीवन चर्या को पढ़ा जाय।

जीवन के सौभाग्य का सूर्योदय

हमारे जीवन का पचहत्तरवाँ वर्ष पूरा हो चुका। इस लम्बी अवधि में मात्र एक काम करने का मन हुआ और उसी को करने में जुट गए। वह प्रयोजन था 'साधना से सिद्धि' का अन्वेषण–पर्यवेक्षण। इसके लिए यही उपयुक्त लगा कि जिस प्रकार अनेक वैज्ञानिकों ने पूरी-पूरी जिन्दगियाँ लगाकर अन्वेषण कार्य किया और उसके द्वारा समूची मानवजाति की महती सेवा संभव हो सकी, ठीक उसी प्रकार यह देखा जाना चाहिए कि पुरातन काल से चली आ रही "साधना से सिद्धि" की प्रक्रिया का सिद्धान्त सही है या गलत। इसका परीक्षण दूसरों के ऊपर न करके अपने ऊपर किया जाय। यह विचारणा दस वर्ष की उम्र से उठी एवं पंद्रह वर्ष की आयु तक निरन्तर विचार क्षेत्र में चलती रही। इसी बीच अन्यान्य घटना क्रमों का परिचय देना हो तो इतना भर ही बताया जा सकता है कि हमारे पिताजी अपने सहपाठी महामना मालवीय जी के पास उपनयन संस्कार कराके लाये। उसी को गायत्री दीक्षा कहा गया। ग्राम के स्कूल में प्राइमरी पाठशाला तक की पढ़ाई की। पिताजी ने ही लघु कौमुदी–सिद्धान्त कौमुदी के आधार पर संस्कृत व्याकरण पढ़ा दिया। वे श्रीमद् भागवत की कथाएँ कहने राजा, महाराजाओं के यहाँ जाया करते थे। मुझे भी साथ ले जाते। इस प्रकार भागवत का अद्योपान्त वृत्तान्त याद हो गया।

इसी बीच विवाह भी हो गया। पत्नी अनुशासन प्रिय, परिश्रमी, सेवाभावी, और हमारे निर्धारणों में सहयोगिनी थी। बस समझना चाहिए कि पन्द्रह वर्ष समाप्त हुए।

सन्ध्या वन्दन हमारा नियमित क्रम था। मालवीयजी ने गायत्री मन्त्र

की विधिवत् दीक्षा दी थी और कहा था कि यह ब्राह्मण की कामधेनु है। इसे बिना नागा किये जपते रहना। पाँच माला अनिवार्य, अधिक जितनी हो जाय उतनी उत्तम। उसी आदेश को मैंने गाँठ बाँध लिया और उसी क्रम को अनवरत चलाता रहा।

भगवान की अनुकम्पा ही कह सकते हैं जो अनायास ही हमारे ऊपर पन्द्रहवर्ष की उम्र में बरसी और वैसा ही सुयोग बनता चला गया जो हमारे लिए विधि द्वारा पूर्व से ही नियोजित था। हमारे बचपन में सोचे गए संकल्प को प्रयास के रुप में परिणित होने का सुयोग मिल गया।

पन्द्रहवर्ष की आयु थी प्रातः की उपासना चल रही थी। बसन्त पर्व का दिन था। उस दिन ब्रह्म मुहूर्त में कोठरी में ही सामने प्रकाश-पुंज के दर्शन हुए। आँखें मलकर देखा कि कहीं कोई भ्रम तो नहीं है। प्रकाश प्रत्यक्ष था। सोचा कोई भूत-प्रेत या देव-दानव का विग्रह तो नहीं है। ध्यान से देखने पर भी वैसा कुछ लगा नहीं। विस्मय भी हो रहा था और डर भी लग रहा था। स्तब्ध था।

प्रकाश के मध्य में से एक योगी का सूक्ष्म शरीर उभरा, सूक्ष्म इसलिए कि छवि तो दीख पड़ी पर वह प्रकाश-पुंज के मध्य अधर लटकी हुई थी। यह कौन है? आश्चर्य।

उस छवि ने बोलना आरम्भ किया व कहा—हम तुम्हारे साथ तीन जन्मों से जुड़े हैं। मार्गदर्शन करते आ रहे हैं। अब तुम्हारा बचपन छूटते ही आवश्यक मार्गदर्शन करने आये हैं। सम्भवतः तुम्हें पूर्व जन्मों की स्मृति नहीं है इसी से भय और आश्चर्य हो रहा है। पिछले जन्मों का विवरण देखो और अपना सन्देह निवारण करो। उनकी अनुकम्पा हुई और योग-निद्रा जैसी झपकी आने लगी। बैठा रहा। पर स्थिति ऐसी हो गई मानों मैं निद्राग्रस्त हूँ। तन्द्रा-सी आने लगी। योग निद्रा कैसी होती है इसका अनुभव मैंने जीवन में पहली बार किया। ऐसी स्थिति को ही जागृत समाधि भी कहते हैं। इस स्थिति में डुबकी लगाते ही एक-एक करके मुझे अपने

पिछले तीन जन्मों का दृश्य क्रमशः ऐसा दृष्टिगोचर होने लगा मानो वह कोई स्वप्न न होकर प्रत्यक्ष घटनाक्रम ही हो। तीन जन्मों की तीन फिल्में आँखों के सामने से गुजर गयीं।

पहला जीवन—**सन्त कबीर** का, सपत्नीक काशी निवास। धर्मों के नाम पर चल रही विडम्बना का आजीवन उच्छेदन। सरल अध्यात्म का प्रतिपादन।

दूसरा जन्म—**समर्थ रामदास** के रूप में दक्षिण भारत में विच्छृंखलित राष्ट्र को शिवाजी के माध्यम से संगठित करना। स्वतन्त्रता हेतु वातावरण बनाना एवं स्थान-स्थान पर व्यायामशालाओं एवं सत्संग भवनों का निर्माण।

तीसरा जन्म—**रामकृष्ण परमहंस**, सपत्नीक कलकत्ता निवास। इस बार पुनः गृहस्थ में रहकर विवेकानन्द जैसे अनेकों महापुरुष गढ़ना व उनके माध्यम से संस्कृति के नव-जागरण का कार्य सम्पन्न कराना।

आज याद आता है कि जिस सिद्ध पुरुष—अंशधर ने हमारी पन्द्रह वर्ष की आयु में घर पधार कर पूजा की कोठरी में प्रकाश रूप में दर्शन दिया था, उनका दर्शन करते ही मन ही मन तत्काल अनेकों प्रश्न सहसा उठ खड़े हुए थे। सद्गुरुओं की तलाश में आमतौर से जिज्ञासु गण मारे-मारे फिरते हैं। जिस-तिस से पूछते हैं। ऐसा लाभ मिलने को अपना भारी सौभाग्य मानते हैं। कोई कामना होती है तो उसकी पूर्ति के वरदान माँगते हैं। पर अपने साथ जो घटित हो रहा था वह उसके सर्वथा विपरीत था। महामना मालवीय जी से गायत्री मन्त्र की दीक्षा पिताजी ने आठ वर्ष की आयु में ही दिलवा दी थी। उसी को प्राण दीक्षा बताया गया था। गुरु वरण होने की बात भी वहीं समाप्त हो गई थी। और किसी गुरु के प्राप्त होने की कभी कल्पना भी नहीं उठी। फिर अनायास ही वह लाभ कैसे मिला, जिसके सम्बन्ध में अनेकों किम्बदन्तियाँ सुनकर हमें भी आश्चर्यचकित होना पड़ा है।

शिष्य गुरुओं की खोज में रहते हैं। मनुहार करते हैं। कभी उनकी अनुकम्पा भेंट दर्शन हो जाय तो अपने को धन्य मानते हैं। उनसे कुछ प्राप्त करने की आकांक्षा रखते हैं। फिर क्या कारण है कि मुझे अनायास ही ऐसे सिद्ध पुरुष का अनुग्रह प्राप्त हुआ। यह कोई छद्म तो नहीं है? अदृश्य में प्रकटीकरण की बात भूत-प्रेत से सम्बन्धित सुनी जाती है और उनसे भेंट होना किसी अशुभ अनिष्ट का निमित्त कारण माना जाता है। दर्शन होने के उपरान्त मन में यही संकल्प उठने लगे। सन्देह उठा, किसी विपत्ति में फँसने जैसा कोई अशुभ तो पीछे नहीं पड़ा।

मेरे इस असमंजस को उन्होंने जाना। रुष्ट नहीं हुए। वरन् वस्तु-स्थिति को जानने के उपरान्त किसी निष्कर्ष पर पहुँचने और बाद में कदम उठाने की बात उन्हें पसन्द आई। यह बात उनकी प्रसन्न मुख-मुद्रा को देखने से स्पष्ट झलकती थी। कारण पूछने में समय नष्ट करने के स्थान पर उन्हें यह अच्छा लगा कि अपना परिचय, आने का कारण और मुझे पूर्वजन्म की स्मृति दिलाकर विशेष प्रयोजन के निमित्त चुनने का हेतु स्वतः ही समझा दें। कोई घर आता है तो उसका परिचय और आगमन का निमित्त कारण पूछने का लोक व्यवहार भी है। फिर कोई वजनदार आगन्तुक जिसके घर जाते हैं उसका भी कोई वजन तौलते हैं। अकारण हलके और ओछे आदमी के यहाँ जा पहुँचना उनका महत्व भी घटाता है और किसी तर्क बुद्धि वाले के मन में ऐसा कुछ घटित होने के पीछे कोई कारण न होने की बात पर सन्देह होता है और आश्चर्य भी।

पूजा की कोठरी में प्रकाश-पुंज उस मानव ने कहा—"तुम्हारा सोचना सही है। देवात्माएँ जिनके साथ सम्बन्ध जोड़ती हैं उन्हें परखती हैं। अपनी शक्ति और समय खर्च करने से पूर्व कुछ जाँच-पड़ताल भी करती हैं। जो भी चाहे उसके आगे प्रकट होने लगें और उसका इच्छित प्रयोजन पूरा करने लगें ऐसा नहीं होता। पात्र-कुपात्र का अन्तर किये बिना चाहे जिसके साथ सम्बन्ध जोड़ना किसी बुद्धिमान और सामर्थ्यवान के लिए कभी

कहीं सम्भव नहीं होता। कई लोग ऐसा सोचते तो हैं कि किसी सम्पन्न महामानव के साथ सम्बन्ध जोड़ने में लाभ है। पर यह भूल जाते हैं कि दूसरा पक्ष अपनी सामर्थ्य किसी निरर्थक व्यक्ति के निमित्त क्यों गँवायेंगे।

हम सूक्ष्म दृष्टि से ऐसे सत्पात्र की तलाश करते रहे जिसे सामयिक लोक-कल्याण का निमित्त कारण बनाने के लिए प्रत्यक्ष कारण बनावें। हमारा यह सूक्ष्म शरीर है। सूक्ष्म शरीर से स्थूल कार्य नहीं बन पड़ते। इसके लिए किसी स्थूल शरीर धारी को ही माध्यम बनाना और शस्त्र की तरह प्रयुक्त करना पड़ता है। यह विषम समय है। इसमें मनुष्य का अहित होने की अधिक सम्भावनाएँ हैं। उन्हीं का समाधान करने के निमित्त तुम्हें माध्यम बनाना है। जो कमी है उसे दूर करना है। अपना मार्गदर्शन और सहयोग देना है। इसी निमित तुम्हारे पास आना हुआ है। अब तक तुम अपने सामान्य जीवन से ही परिचित थे। अपने को साधारण व्यक्ति ही देखते थे। असमंजस का एक कारण यह भी है। तुम्हारी पात्रता का वर्णन करें तो भी कदाचित तुम्हारा सन्देह निवारण न हो। कोई किसी की बात पर अनायास ही विश्वास करे ऐसा समय भी कहाँ है। इसीलिये तुम्हें पिछले तीन जन्मों की जानकारी दी गयी।"

तीनों ही जन्मों का विस्तृत विवरण जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त तक का दर्शाने के बाद उन्होंने बताया कि किस प्रकार वे इन तीनों जीवनों में हमारे साथ रहे और सहायक बने।

वे बोले—"यह तुम्हारा चौथा जन्म है। तुम्हारे इस जन्म में भी सहायक रहेंगे। और इस शरीर से वह करावेंगे जो समय की दृष्टि से आवश्यक है। सूक्ष्म शरीरधारी प्रत्यक्ष जन-सम्पर्क नहीं कर सकते और न घटनाक्रम स्थूल शरीरधारियों द्वारा ही सम्पन्न होते हैं इसलिए योगियों को उन्हीं का सहारा लेना पड़ता है।

तुम्हारा विवाह हो गया सो ठीक हुआ। यह समय ऐसा है जिसमें एकाकी रहने से लाभ कम और जोखिम अधिक है। प्राचीन काल में ब्रह्मा,

विष्णु, महेश, सूर्य, गणेश, इन्द्र आदि सभी सपत्नीक थे। सातों ऋषियों की पत्नियाँ थीं। कारण कि गुरुकुल आरण्यक स्तर के आश्रम चलाने में माता की भी आवश्यकता पड़ती है और पिता की भी। भोजन, निवास, वस्त्र, दुलार आदि के लिए भी माता चाहिए और अनुशासन, अध्यापन, अनुदान यह पिता की ओर से मिलता है। गुरु ही पिता है और गुरु पत्नी ही माता। ऋषि परम्परा के निर्वाह के लिए यह उचित भी है आवश्यक भी। आजकल भजन के नाम पर जिस प्रकार आलसी लोग सन्त का बाना पहनते और भ्रम जंजाल फैलाते हैं, तुम्हारे विवाहित होने से मैं प्रसन्न हूँ। इसमें बीच में व्यवधान तो आ सकता है पर पुनः तुम्हें पूर्व जन्म में तुम्हारे साथ रही सहयोगिनी पत्नी के रूप में मिलेगी जो आजीवन तुम्हारे साथ रहकर महत्वपूर्ण भूमिका निबाहेगी। पिछले दो जन्मों में तुम्हें सपत्नीक रहना पड़ा है। यह न सोचना कि इससे कार्य में बाधा पड़ेगी। वस्तुतः इससे आज परिस्थितियों में सुविधा ही रहेगी एवं युग परिवर्तन के प्रयोजन में भी सहायता मिलेगी।"

वह पावन दिन—बसन्त पर्व का दिन था। प्रातः—ब्रह्म मुहूर्त था। नित्य की तरह सन्ध्या वन्दन का नियम निर्वाह चल रहा था। प्रकाश–पुञ्ज के रूप में देवात्मा का दिव्य दर्शन—उसी कौतूहल से मन में उठी जिज्ञासा और उसके समाधान का यह उपक्रम चल रहा था। मैंने अपना पिछला जन्म आदि से अन्त तक देखा। इसके बाद दूसरा भी। तदुपरान्त तीसरा भी। तीनों ही जन्म दिव्य थे। साधना में निरत रहे थे एवं तीनों ही में समाज के नवनिर्माण की महती भूमिका निभानी पड़ी थी। उन सामने उपस्थित देवात्मा के मार्गदर्शन तीनों ही जन्मों में मिलते रहे थे। इसलिए उस समय तक जो अपरिचित जैसा कुछ लगता था वह दूर हो गया। एक नया भाव जगा घनिष्ट आत्मीयता का। उनकी महानता अनुकम्पा और साथ ही अपनी कृतज्ञता का। इस स्थिति ने मन का काया-कल्प कर दिया। कल तक जो परिवार अपना लगता था वह पराया लगने लगा और जो प्रकाश–पुञ्ज अभी-अभी सामने आया था, वह प्रतीत होने लगा कि मानो यही हमारी आत्मा है। इसी के साथ हमारा भूतकाल बँधा हुआ था और अब जितने दिन जीना है,

वह अवधि भी इसी के साथ जुड़ी रहेगी। अपनी ओर से कुछ कहना नहीं। कुछ चाहना नहीं। किन्तु दूसरे का जो आदेश हो उसे प्राण-पण से पालन करना। इसी का नाम समर्पण है। समर्पण मैंने उसी दिन प्रकाश-पुञ्ज देवात्मा को किया और उन्हीं को न केवल मार्गदर्शक वरन् भगवान के समतुल्य माना। उस सम्बन्ध निर्वाह को प्राय: साठ वर्ष होने को आते हैं। बिना कोई तर्क बुद्धि लड़ाये, बिना कुछ ननुनच किये, एक ही इशारे पर—एक ही मार्ग पर गतिशीलता होती रही है। सम्भव है, नहीं, अपने बूते यह हो सकेगा या नहीं, इसके परिणाम क्या होंगे ? इन प्रश्नों में से एक भी आज तक मन में उठा नहीं।

उस दिन मैंने एक और नई बात समझी कि सिद्ध पुरुषों की अनुकम्पा मात्र लोक-हित के लिए—सत्प्रवृत्ति सम्बर्धन के निमित्त होती है। न उनका कोई सगा सम्बन्धी होता है न उदासीन विरोधी। किसी को ख्याति, सम्पदा या कीर्ति दिलाने के लिए उनकी कृपा नहीं बरसती। विराट् ब्रह्म—विश्व मानव ही उनका आराध्य होता है। उसी के निमित्त अपने स्वजनों को वे लगाते हैं अपनी इस नवोदित मान्यता के पीछे राम कृष्ण—विवेकानन्द का, समर्थ रामदास—शिवाजी का, चाणक्य–चन्द्रगुप्त का, गाँधी-विनोबा का, बुद्ध-अशोक का गुरु शिष्य सम्बन्ध स्मरण हो आया। जिनकी आत्मीयता में ऐसा कुछ न हो, सिद्धि-चमत्कार, कौतुक-कौतूहल, दिखाने या सिखाने का क्रिया-कलाप चलता रहा हो, समझना चाहिए कि वहाँ गुरु और शिष्य की क्षुद्र प्रवृत्ति है और जादूगर-बाजीगर जैसा कोई खेल-खिलवाड़ चल रहा है। गन्ध बाबा—चाहे जिसे सुगन्धित फूल सुंघा देते थे। बाघ बाबा, अपनी कुटी में बाघ को बुलाकर बिठा लेते थे। समाधि बाबा कई दिन तक जमीन में गढ़े रहते थे। सिद्ध बाबा आगन्तुकों की मनोकामना पूरी करते थे। ऐसी-ऐसी अनेक जनश्रुतियाँ भी दिमाग में घूम गईं और समझ में आया कि यदि इन घटनाओं के पीछे मस्मेरीज्म स्तर की जादूगरी थी तो वे 'महान्' कैसे हो सकते हैं। ठण्डे प्रदेश में गुफा में रहना जैसी घटनाएँ भी कौतूहल वर्धक ही हैं। जो काम साधारण आदमी न कर सके उसे कोई एक करामात की तरह

कर दिखाए तो इसमें कहने भर की सिद्धाई है। मौन रहना, हाथ पर रखकर भोजन करना, एक हाथ ऊपर रखना, झूले पर पड़े-पड़े समय गुजारना जैसे असाधारण करतब दिखाने वाले बाजीगर सिद्ध हो सकते हैं। पर यदि कोई वास्तविक सिद्ध या शिष्य होगा तो उसे पुरातन काल के लोक मङ्गल के लिए जीवन उत्सर्ग करने वाले ऋषियों के राजमार्ग पर चलना पड़ा होगा। आधुनिक काल में भी विवेकानन्द, दयानन्द, कबीर, चैतन्य, समर्थ की तरह उसी मार्ग पर चलना पड़ा होगा। भगवान अपना नाम जपने वाले मात्र से प्रसन्न नहीं होते। न उन्हें पूजा-प्रसाद आदि की आवश्यकता है। जो उनके इस विश्व उद्यान को सुरम्य, सुविकसित करने में लगते हैं, उन्हीं का नाम जप सार्थक है। यह विचार मेरे मन में उसी वसन्त पर्व के दिन, दिनभर उठते रहे। क्योंकि उनने स्पष्ट कहा था कि पात्रता में जो कमी है उसे पूरा करने के साथ-साथ लोक-मङ्गल का कार्य भी साथ-साथ करना है। एक के बाद दूसरा नहीं दोनों साथ-साथ। चौबीस वर्ष का उपासना क्रम समझाया। गायत्री पुरश्चरणों की श्रृंखला बताई। इसके साथ पालन करने योग्य नियम बताये, साथ ही स्वतन्त्रता संग्राम में एक सच्चे स्वयंसेवक की तरह काम करते रहने के लिये कहा।

उस दिन उन्होंने हमारा समूचा जीवनक्रम किस प्रकार चलना चाहिए इसका स्वरूप एवं पूरा विवरण बताया। बताया ही नहीं स्वयं लगाम हाथ में लेकर चलाया भी। चलाया ही नहीं, हर प्रयास को सफल भी बनाया।

उसी दिन हमने सच्चे मन से उन्हें समर्पण किया। वाणी ने नहीं, आत्मा ने कहा—"जो कुछ पास में है, आपके निमित्त ही अर्पण। भगवान को हमने देखा नहीं पर वह जो कल्याण कर सकता था वही कर रहे हैं। इसलिए आप हमारे भगवान हैं। जो आज सारे जीवन का ढाँचा आपने बताया है उसमें राई रत्ती प्रमाद न होगा।

उस दिन उनने भावी जीवन सम्बन्धी थोड़ी-सी बातें विस्तार से समझाईं (१) गायत्री महाशक्ति के चौबीस वर्ष में चौबीस महा-पुरश्चरण

(२) अखण्ड घृत दीप की स्थापना (३) चौबीस वर्ष में एवं उसके बाद समय-समय पर क्रमबद्ध मार्गदर्शन के लिए चार बार हिमालय् अपने स्थान पर बुलाना प्रायः छह माह से एक वर्ष तक अपने समीवर्ती क्षेत्र में ठहराना।

इस सन्दर्भ में और भी विस्तृत विवरण उन्हें बताना था, सो बता दिया। विज्ञ पाठकों को इतनी ही जानकारी पर्याप्त है, जितना ऊपर उल्लेख है। उनके बताए निर्देशानुसार सारे काम जीवन भर निभते चले गए एवं वे उपलब्धियाँ हस्तगत होती रहीं जिन्होंने आज हमें वर्त्तमान स्थिति में ला बिठाया है।

समर्थ गुरु की प्राप्ति-एक अनुपम सुयोग :

रामकृष्ण, विवेकानन्द को ढूँढ़ते हुए उनके घर गये थे। शिवाजी को समर्थ गुरु रामदास ने खोजा था। चाणक्य चन्द्रगुप्त को पकड़कर लाये थे। गोखले गान्धी पर सवार हुए थे। हमारे सम्बन्ध में भी यही बात है। मार्ग-दर्शक सूक्ष्म शरीर से पन्द्रह वर्ष की आयु में घर आये थे और आस्था जगाकर उन्होंने दिशा विशेष पर लगाया था।

सोचता हूँ कि जब असंख्यों सद्गुरु की तलाश में फिरते और धूर्तों से सिर मुड़ाने के उपरान्त खाली हाथ वापस लौटते हैं तब अपनी ही विशेषता थी जिसके कारण एक दिव्य शक्ति को बिना बुलाये स्वेच्छापूर्वक घर आना और अनुग्रह बरसाना पड़ा। इसका उत्तर एक ही हो सकता है कि जन्मान्तरों से पात्रता के अर्जन का प्रयास। यह प्रायः जल्दी नहीं हो पाता। व्रतशील होकर लम्बे समय तक कुसंस्कारों के विरूद्ध लड़ना होता है।

सङ्कल्प धैर्य; और श्रद्धा का त्रिविध सुयोग अपनाये रहने पर मनोभूमि ऐसी बनती है कि अध्यात्म के दिव्य अवतरण को धारण कर सके। यह पात्रता ही शिष्यत्व है, जिसकी पूर्ति कहीं से भी हो जाती है। समय पात्रता विकसित करने में लगता है, गुरु मिलने में नहीं, एकलव्य के मिट्टी के द्रोणा-

चार्य असली की तुलना में कहीं अधिक कारगर सिद्ध होने लगे थे । कबीर को अछूत होने के कारण जब रामानन्द ने दीक्षा देने से इन्कार कर दिया तो उनने एक युक्ति निकाली । काशी घाट की जिन सीढ़ियों पर रामानन्द नित्य स्नान के लिए जाया करते थे, उन पर भोर होने से पूर्व ही कबीर जा लेटे रामानन्द अन्धेरे में निकले तो पैर लड़के के सीने पर पड़ा । चौंके राम-नाम कहते हुए पीछे हट गये । कबीर ने इसी को दीक्षा संस्कार मान लिया और राम नाम को मन्त्र तथा रामानन्द को गुरु कहने लगे । यह श्रद्धा का विषय है । जब पत्थर की प्रतिमा देवता बन सकती है तो श्रद्धा के बल पर किसी उपयुक्त व्यक्तित्व को गुरु क्यों नहीं बनाया जा सकता ? आवश्यक नहीं कि इसके लिए विधिवत् संस्कार कराया ही जाय, कान फुकवाये ही जायँ ।

अध्यात्म प्रयोजनों के लिए गुरु स्तर के सहायक की इसलिए आवश्यकता पड़ती है कि उसे पिता और अध्यापक का दुहरा उत्तरदायित्व निभाना पड़ता है । पिता बच्चे को अपनी कमाई का एक अंश देकर पढ़ने की सारी साधन सामग्री जुटाता है । अध्यापक उसके ज्ञान अनुभव को बढ़ाता है । दोनों के सहयोग से ही बच्चे का निर्वाह और शिक्षण चलता है । भौतिक निर्वाह की आवश्यकता तो पिता भी पूरा कर देता है पर आत्मिक क्षेत्र में प्रगति के लिए जिन वस्तुओं की आवश्यकता है, उसमें मनःस्थिति के अनुरूप मार्गदर्शन करने तथा सोंपे हुए कार्य को कर सकने के लिए आवश्यक सामर्थ्य गुरु अपने संचित तप भण्डार में से निकालकर हस्तान्तरित करता है । इसके बिना अनाथ बालक की तरह शिष्य एकाकी पुरुषार्थ के बलबूते उतना नहीं कर सकता जितना कि करना चाहिए । इसी कारण "गुरु बिनु होहि न ज्ञान" की उक्ति अध्यात्म क्षेत्र में विशेष रूप से प्रयुक्त होती है ।

दूसरे लोग गुरु तलाश करते फिरते भी हैं । पर सुयोग्य तक जा पहुचने पर भी निराश होते हैं । स्वाभाविक है इतना घोर परिश्रम और कष्ट सहकर की गई कमाई ऐसे ही कुपात्र और विलास संग्रह, अहङ्कार, अपव्यय के लिए हस्तान्तरित नहीं की जा सकती । देने वाले में इतनी बुद्धि भी होती

है कि लेने वाले की प्रामाणिकता किस स्तर की है, जो दिया जा रहा है उसका उपयोग किस कार्य में होगा। जो लोग इस कसौटी पर खोटे उतरते हैं, उनकी दाल नहीं गलती। इन्हें वे ही लोग मूँडते हैं जिनके पास देने को कुछ नहीं है। मात्र शिकार फँसाकर शिष्य से जिस-बहाने दान, दक्षिणा मूँड़ते रहते हैं। प्रसन्नता की बात है कि इस विडम्बना भरे प्रचलित कुचक्र में हमें नहीं फँसना पड़ा। हिमालय की एक सत्ता अनायास ही घर बैठे मार्गदर्शन के लिए आ गई और हमारा जीवन धन्य हो गया।

हमें इतने समर्थ गुरु अनायास ही कैसे मिले? इस प्रश्न का एक ही समाधान निकलता है कि उसके लिए लम्बे समय से जन्म-जन्मान्तरों में पात्रता अर्जन की धैर्य पूर्वक तैयारी की गई। उतावली नहीं बरती गई। बातों में फँसकर किसी गुरु की जेब काट लेने जैसी उस्तादी नहीं बरती गई वरन् यह प्रतीक्षा की गई कि अपने गले को किसी पवित्र सरिता में मिलाकर अपनी हस्ती का उसी में समापन किया जाय। किसी भौतिक प्रयोजन के लिए इस सुयोग की ताक-झाँक नहीं की जाय वरन् बार-बार यही सोचा जाता रहे कि जीवन सम्पदा की श्रद्धान्जलि किसी देवता के चरणों में समर्पित करके धन्य बना जाय।

दयानन्द ने गुरु विरजानन्द की इच्छानुरूप अपने जीवन का उत्सर्ग किया था। विवेकानन्द अपनी सभी इच्छाएँ समाप्त करके गुरु को सन्तोष देने वाले कष्टसाध्य कार्य में प्रवृत्त हुए थे। इसी में सच्ची गुरु भक्ति और गुरु दक्षिणा है। हनुमान ने राम को अपना समर्पण करके प्रत्यक्षतः तो सब कुछ खोया ही था पर परोक्षतः वे सन्त तुल्य ही बन गये थे और वह कार्य करने लगे थे जो राम के ही बलबूते के थे। समुद्र छलाँगना, पर्वत उखाड़ना, लंका जलाना बेचारे हनुमान नहीं कर सकते थे। वे तो अपने स्वामी सुग्रीव को बाली के अत्याचार तक से छुड़ाने में समर्थ नहीं हो सके थे। समर्पण ही था जिसने एकात्मता उत्पन्न कर दी। गन्दे नाले में थोड़ा गंगाजल गिर पड़े तो वह भी गन्दगी बन जायेगा किन्तु यदि बहती हुई गंगा में थोड़ी गन्दगी जा मिले तो फिर उसका अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा। जो बचेगा मात्र गंगा जल

ही होगा । जो स्वयं समर्थ नहीं हैं, वे भी समर्थों के प्रति समर्पित होकर उन्हीं के समतुल्य बन गये हैं । ईंधन जब आग से लिपट जाता है तो फिर उसकी हेय स्थिति नहीं रहती वरन् अग्नि के समान प्रखरता आ जाती है । वह तद्रूप हो जाता है ।

श्रद्धा का केन्द्र भगवान है और प्राप्त भी उसी को करना पड़ता है पर उस अदृश्य के साथ सम्बन्ध जोड़ने के लिए किसी दृश्य प्रतीक का सहारा लेना आवश्यक होता है । इस कार्य को देव प्रतिमाओं के सहारे भी सम्पन्न किया जा सकता है और देहधारी गुरु यदि इस स्तर का है तो उस आवश्यकता की पूर्ति करा सकता है ।

हमारे यह मनोरथ अनायास ही पूरे हो गये । अनायास इसलिए कि उसके लिए पिछले जन्मों से पात्रता उत्पन्न करने की पृथक साधना आरम्भ कर दी गई थी । कुण्डलिनी जागरण, ईश्वर दर्शन स्वर्ग मुक्ति तो बहुत पीछे की वस्तु है । सबसे प्रथम दैवी अनुदानों को पा सकने की क्षमता अर्जित करनी पड़ती है । अन्यथा जो वजन न उठ सके, जो भोजन न पच सके वह उलटे और भी बड़ी विपत्ति खड़ी करता है ।

प्रथम मिलन के दिन समर्पण सम्पन्न हुआ और उसके सच्चे झूठे होने की परीक्षा भी तत्काल ही चल पड़ी । दो बातें विशेष रूप से कही गईं । "संसारी लोग क्या करते और क्या कहते हैं, उसकी ओर से मुँह मोड़कर निर्धारित लक्ष्य की ओर एकाकी साहस के बलबूते चलते रहना । दूसरा यह है कि अपने को अधिक पवित्र और प्रखर बनाने के लिए तपश्चर्या में जुट जाना । चौबीस वर्ष के चौबीस गायत्री महापुरश्चरण के साथ जौ की रोटी और छाछ पर निर्वाह करने का अनुशासन रखा । सामर्थ्य विकसित होते ही वह सब कुछ मिलेगा जो अध्यात्म मार्ग के साधकों को मिलता है । किन्तु मिलेगा विशुद्ध परमार्थ के लिए । तुच्छ स्वार्थों की सिद्धि में उन दैवी अनुदानों को प्रयुक्त न किया जा सके ।" बसन्त पर्व का यह दिन, गुरु अनुशासन का अवधारण ही हमारे लिए नया जन्म बन गया । याचकों की कमी नहीं पर सत्पात्रों पर सब कुछ लुटा देने वाले सहृदयों की भी कमी नहीं । कृष्ण ने

सुदामा पर सब कुछ जो लुटा दिया था। सद्गुरु की प्राप्ति हमारे जीवन का अनन्य एवं परम सौभाग्य रहा।

पिछले तीन जन्मों की एक झाँकी :

पिछले जिन तीन जन्मों का दृश्य गुरुदेव ने हमें दिखाया उनमें से प्रथम थे सन्त कबीर, दूसरे समर्थ रामदास, तीसरे रामकृष्ण परमहंस। इन तीनों का कार्यकाल इस प्रकार रहा है—कबीर ई० (सन् १३९८ से १५१८) समर्थ (सन् १६०८ से १६८२) श्री रामकृष्ण परमहंस (सन् १८३६ से १८८७) यह तीनों ही भारत की सन्त सुधारक परम्परा के उज्ज्वल नक्षत्र रहे हैं। उनके शरीरों द्वारा ऐसे महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न हुए जिससे देश, धर्म, समाज और संस्कृति का महान कल्याण हुआ।

भगवान के भक्त तीनों ही थे। इसके बिना आत्मबल की समर्थता और कषाय-कलमषों का निराकरण कठिन है। किन्तु साथ ही भगवान के विश्व उद्यान को सींचने और समुन्नत सुविकसित करने की प्रक्रिया भी साथ-साथ ही चलनी चाहिए तो इन तीनों के जीवनों में यह परम्पराएँ भली प्रकार समाहित रहीं।

कबीर को एक मुसलमान जुलाहे ने तालाब के किनारे पड़ा हुआ पाया था। उन्हें कोई ब्राह्मण कन्या अवैध सन्तान होने के कारण इस प्रकार छोड़ गई थी। जुलाहे ने उन्हें पाल लिया। वे सन्त तो आजीवन रहे पर गुजारे के लिए रोटी अपने पैतृक व्यवसाय से कमाते रहे।

अपने बारे में उनने लिखा है—

काशी का मैं बासी ब्राह्मण, नाम मेरा परबीना।
एक बार हर नाम बिसारा, पकरि जुलाहा कीन्हा॥
भई मेरा कौन बुनेगा ताना॥

कबीर ने तत्कालीन हिन्दू समाज की कुरीतियाँ और मत-मतान्तरों की विग्रह विडम्बनाओं को दूर करने के लिए प्राण-पण से प्रयत्न किये। उन पर इस्लाम विरोधी होने का इलजाम लगाया गया और हाथ-पैरों में लोहे की

जंजीर बाँधकर नदी में डलवा दिया गया पर ईश्वर कृपा से जंजीर टूट गई और वे जीवित बच गये। कुल वंश को लेकर उन्हें समाज का विग्रह सहना पड़ा पर वे एकाकी अपने प्रतिपादन पर अड़ रहे। उन दिनों काशी में मृत्यु से स्वर्ग मिलने और मगहर में मरने पर नरक जाने की मान्यता प्रचलित थी। वे इसका खण्डन करने के लिए अन्तिम दिनों मगहर ही चले गये और वहीं शरीर छोड़ा। कबीर विवाहित थे। उनकी पत्नी का नाम लोई था वह आजीवन उनके हर कार्य में उनके साथ रहीं। जीवन का एक भी दिन उनने ऐसा न जाने दिया, जिसमें भ्रान्तियों के निवारण और सत्परम्पराओं के प्रतिपादन में प्राण-पण से प्रयत्न न किया हो। विरोधियों में से कोई उन्हें तनिक भी न झुका सका।

मरते समय उनकी लाश को हिन्दू जलाना चाहते थे मुसलमान दफनाना। इसी बात को लेकर विग्रह खड़ा हो गया। चमत्कार यह हुआ कि कफन के नीचे से लाश गायब हो गई। उसके स्थान पर फूल पड़े मिले। इनमें से आधों को मुसलमानों ने दफनाया और आधों को हिन्दुओं ने जलाया। दोनों ही सम्प्रदाय वालों ने उनकी स्मृति में भव्य भवन बनाये। कबीर पन्थ को मानने वाले लाखों व्यक्ति हिन्दुस्तान में हैं।

दूसरे समर्थ रामदास महाराष्ट्र के उच्चस्तरीय सन्त थे। उन्होंने शिवाजी को स्वतन्त्रता की लड़ाई लड़ने के लिए तैयार किया। भवानी से अक्षय पराक्रम वाली तलवार दिलवाई गाँव-गाँव घूमकर ७०० महावीर मन्दिर बनवाये। जिनमें हनुमान जी की प्रतिमा तो थी ही साथ ही व्यायामशाला और सत्संग प्रक्रिया भी नियमित रूप से चलती थी। इन देवालयों के माध्यम से शिवाजी को सैनिक, शस्त्र और धन मिलता था। ताकि स्वतन्त्रता संग्राम सफलता पूर्वक चलता रहे। शिवाजी ने राज्य की स्थापना की। उसकी गद्दी पर गुरु के खड़ाऊँ स्थापित किये और स्वयं प्रबन्धक मात्र रहे। शिवाजी द्वारा छेड़ा गया आन्दोलन बढ़ता ही गया और अन्त में गान्धीजी के नेतृत्व में भारत स्वतन्त्र होकर रहा।

तीसरे रामकृष्ण परमहंस कलकत्ता के पास एक देहात में जन्मे थे। वे

कलकत्ता दक्षिणेश्वर मन्दिर में पूजा करते थे। हजारों जिज्ञासु नित्य उनके पास आकर ज्ञान पिपासा तृप्त करते थे और उनके आशीर्वाद अनुदानों से लाभ उठाते थे। उनकी धर्मपत्नी शारदामणि थी।

उन्होंने नरेन्द्र के रूप में सुपात्र पाया और सन्यास देकर विवेकानन्द नाम दिया और देश–देशान्तरों में भारतीय संस्कृति की गरिमा समझाने भेजा। देश में शिक्षित वर्ग ईसाई एवं नास्तिक बनता चला जा रहा था। विवेकानन्द के प्रवचनों से लाखों के मस्तिष्क सुधरे। उनने संसार भर में रामकृष्ण परमहंस मिशन की स्थापनाएँ कीं जो पीड़ा निवारण की सेवा करता है। विवेकानन्द स्मारक कन्या कुमारी पर, जहाँ उन्हें नव–जागृति का सन्देश गुरु से मिला था, बना है एवं देखने ही योग्य है।

यह एक आत्मा के विभिन्न शरीरों का वर्णन है। इसके अतिरिक्त अन्यान्य आत्माओं में प्रेरणाएँ भर कर उस दैवी सत्ता ने समय–समय पर उनसे बड़े–बड़े काम कराये। चैतन्य महाप्रभु बंगाल के एवं बाबा जलाराम गुजरात के उन्हीं के संरक्षण में ऊँची स्थिति तक पहुँचे और देश को ऊँचा उठाने में, भगवद् भक्ति को उसके वास्तविक स्वरूप में जन–जन तक पहुँचाने में उस अन्धकार युग में अभिनव सूर्योदय का काम किया।

यह तीन प्रधान जन्म थे जिनकी हमें जानकारी दी गयी। इनके बीच–बीच मध्यकालों में हमें और भी महत्त्वपूर्ण जन्म लेने पड़े हैं पर वे इतने प्रख्यात नहीं हैं, जितने उपरोक्त तीन। हमें समग्र जीवन की रूपरेखा इन्हीं में दिखायी गयी और बताया गया कि गुरुदेव इन जन्मों में हमें किस प्रकार अपनी सहायता पहुँचाते–ऊँचा उठाते और सफल बनाते रहे हैं।

अधिक जानने की अपनी इच्छा भी नहीं हुई जब समझ लिया गया कि इतनी महान आत्मा स्वयं पहुँच-पहुँच कर सत्पात्र आत्माओं को ढूँढ़ती और उनके द्वारा बड़े काम कराती रही हैं, तो हमारे लिए इस जन्म में भी यही उचित है कि एक का पल्ला पकड़ें,एक नाव में बैठें और अपनी निष्ठा डगमगाने न दें। इन तीन महान् जन्मों के माध्यम से जो समय बचा, उसे हमें कहाँ-कहाँ किस रूप में, कैसे खर्च करना पड़ा, यह पूछने का अर्थ उन पर अविश्वास

व्यक्त करना था। अनेक गवाहियाँ माँगना था। हमारे सन्तोष के लिए यह तीन जन्म ही पर्याप्त थे।

महान् कार्यों का बोझ उत्तरदायित्व सम्भालने वाले को समय–समय पर अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। अनेक प्रकार के असाधारण पराक्रम दिखाने पड़ते हैं। यह हमारे साथ भी घटित होता रहा है। दौड़–दौड़कर गुरुदेव सहायता के लिए पहुँचते रहे हैं। हमारी नन्हीं सी सामर्थ्य में अपनी महती सामर्थ्य मिलाते रहे हैं, संकटों से बचाते रहे हैं, लड़खड़ाते पैरों को सम्भालते रहे हैं। इन तीन जन्मों की घटनाओं से ही पूरी तरह विश्वास हो गया। इसलिए उसी दिन निश्चय कर लिया कि अपना जीवन अब इन्हीं के चरणों पर समर्पित रहेगा। इन्हीं के संकेतों पर चलेगा।

इस जन्म में उन्होंने हमें धर्मपत्नी समेत पाया और कहा–"इस विषम समय में आध्यात्मिक जीवन धर्मपत्नी समेत अधिक-अच्छी तरह बिताया जा सकता है। विशेषतया जब तुम्हें आगे चलकर आश्रम बनाकर शिक्षा व्यवस्था बनानी हो। ऋषि व्यवस्था में माता द्वारा भोजन, निवास, स्नेह–दुलार आदि का प्रबन्ध और पिता द्वारा अनुशासन, अध्यापन, मार्गदर्शन का कार्य चलने में सुविधा रहती है।

मार्गदर्शक द्वारा भावी जीवन क्रम सम्बन्धी निर्देश

हमारा अनुभव यह रहा है कि, जितनी उत्सुकता साधकों को सिद्ध पुरुष खोजने की होती है उससे असंख्यों गुनी उत्कण्ठा सिद्ध पुरुषों को सुपात्र साधकों की तलाश करने के निमित्त होती है। साधक सत्पात्र चाहिए। जिसने अपना चिन्तन, चरित्र और व्यवहार परिष्कृत कर लिया हो वही सच्चा साधक है। उसे मार्गदर्शक खोजने नहीं पड़ते वरन् वे दौड़कर स्वयं उनके पास आते और उंगली पकड़ कर आगे चलने का रास्ता बताते हैं। जहाँ वे लड़खड़ाते हैं वहाँ गोदी में उठाकर कन्धे पर बिठाकर पार लगाते हैं। हमारे सम्बन्ध में यही हुआ है। घर बैठे पधारकर अधिक सामर्थ्यवान बनाने के लिए २४ वर्ष का गायत्री पुरश्चरण उन्होंने कराया एवं उसकी पूर्णाहुति में सहस्र कुण्डी गायत्री यज्ञ सम्पन्न कराया है। धर्म तन्त्र से लोक शिक्षण के लिए एक लाख अपरिचित व्यक्तियों को परिचित ही नहीं, घनिष्ठ बना कर कन्धे से कन्धा—कदम से कदम मिलाकर—चलने योग्य बना दिया।

अपने प्रथम दर्शन में ही चौबीस महापुरश्चरण पूरे होने एवं बार बार एक-एक वर्ष के लिए हिमालय बुलाने की बात गुरुदेव ने कही।

हमें हिमालय पर बार-बार बुलाये जाने के कई कारण थे। एक यह जानना कि सुनसान प्रकृति के सान्निध्य में—प्राणियों एवं सुविधाओं के अभाव में आत्मा को एकाकीपन कहीं अखरता तो नहीं ?, दूसरे यह कि इस क्षेत्र में रहने वाले हिंस्र पशुओं के साथ मित्रता बना सकने लायक आत्मीयता विकसित हुई या नहीं, तीसरे, वह समूचा क्षेत्र देवात्मा है। उसमें ऋषियों ने

मानवी काया में रहते हुए देवत्व उभारा और देव मानव के रूप में ऐसी भूमिकाएँ निभाईं जो साधन और सहयोग के अभाव में साधारण जनों के लिए कर सकना सम्भव नहीं थीं। उनसे हमारा प्रत्यक्षीकरण कराया जाना था।

उनका मूक निर्देश था कि अगले दिनों उपलब्ध आत्मबल का उपयोग हमें ऐसे ही प्रयोजन के लिए एक साथ करना है, जो ऋषियों ने समय-समय पर तात्कालिक समस्याओं के समाधान के निमित्त अपने प्रबल पुरुषार्थ से सम्पन्न किया था। यह समय ऐसा है जिसमें अगणित अभावों की एक साथ पूर्ति करनी है। साथ ही एक साथ चढ़ दौड़ी अनेकानेक विपत्तियों से जूझना है। यह दोनों ही कार्य इसी उत्तराखण्ड कुरुक्षेत्र में पिछले दिनों सम्पन्न हुए हैं। पुरातन देवताओं ऋषियों में से कुछ आंशिक रूप से सफल हुए हैं, कुछ असफल भी रहे हैं। इस बार एकाकी वे सब प्रयत्न करने और समय की माँग को पूरा करना है। इसके लिए जो मोर्चे बन्दी करनी है उसकी झलक झाँकी समय रहते कर ली जाय ताकि कन्धों पर आने वाले उत्तरदायित्वों की पूर्व जानकारी रहे और पूर्वज किस प्रकार दाँव-पेंच अपना कर विजयश्री को वरण करते रहे हैं, इस अनुभव से कुछ न कुछ सरलता मिले। यह तीनों ही प्रयोजन समझने, अपनाने और परीक्षा में उत्तीर्ण होने के निमित्त ही हमारी भावी हिमालय यात्राएँ होनी हैं, ऐसा उनका निर्देश था। आगे उन्होंने बताया कि "हम लोगों की तरह तुम्हें भी सूक्ष्म शरीर के माध्यम से अति महत्वपूर्ण काम करने होंगे। इसका पूर्वाभ्यास करने के लिए यह सीखना होगा कि स्थूल शरीर से हिमालय के किस भाग में—कितने समय तक किस प्रकार ठहरा जा सकता है और निर्धारित उद्देश्य की पूर्ति में संलग्न रहा जा सकता है।"

'सहज शीत ताप के मौसम में, जीवनोपयोगी सभी वस्तुएँ मिल जाती हैं, शरीर पर भी ऋतुओं का असह्य दबाव नहीं पड़ता। किन्तु हिमालय क्षेत्र के असुविधाओं वाले प्रदेश में स्वल्प साधनों के सहारे कैसे रहा जा सकता

है, यह भी एक कला है साधना है। जिस प्रकार नट शरीर को साधकर अनेक प्रकार के कौतूहलों का अभ्यास कर लेते हैं, लगभग उसी प्रकार का यह अभ्यास है जिसमें नितान्त एकाकी रहना पड़ता है। पत्तियों और कन्दों के सहारे निर्वाह करना पड़ता है और हिंस्र जीव-जन्तुओं के बीच रहते हुए अपने प्राण बचाना पड़ता है।

जब तक स्थूल शरीर है तभी तक यह झंझट है। सूक्ष्म शरीर में चले जाने पर वे आवश्यकताएँ समाप्त हो जाती हैं जो स्थूल शरीर के साथ जुड़ी हुई हैं। सर्दी-गर्मी से बचाव, क्षुधा पिपासा का निवारण, निद्रा और थकान का दबाव यह सब झंझट उस स्थिति में नहीं रहते हैं। पैरों से चलकर मनुष्य थोड़ी दूर जा पाता है, किन्तु सूक्ष्म शरीर के लिए एक दिन में सैकड़ों योजनों की यात्रा सम्भव है। एक साथ, एक मुख से सहस्रों व्यक्तियों के अन्तःकरणों तक अपना सन्देश पहुँचाया जा सकता है। दूसरों की इतनी सहायता सूक्ष्म शरीर धारी कर सकते हैं, जो स्थूल शरीर रहते सम्भव नहीं। इसलिए सिद्ध पुरुष सूक्ष्म शरीर द्वारा काम करते हैं। उनकी साधनाएँ भी स्थूल शरीर वालों की अपेक्षा भिन्न हैं।"

"स्थूल शरीरधारियों की एक छोटी सीमा है। उनकी बहुत सारी शक्ति तो शरीर की आवश्यकताएँ जुटाने में दुर्बलता, रुग्णता, जीर्णता आदि के व्यवधानों से निपटने में खर्च हो जाती है। किन्तु लाभ यह है कि प्रत्यक्ष दृश्यमान कार्य स्थूल शरीर से ही हो पाते हैं। इस स्तर के व्यक्तियों के साथ घुलना-मिलना—आदान-प्रदान इसी के सहारे सम्भव है। इसलिए जन-साधारण के साथ सम्पर्क साधे रहने के लिए प्रत्यक्ष शरीर से ही काम लेना पड़ता है। फिर वह जरा-जीर्ण हो जाने पर अशक्त हो जाता है और त्यागना पड़ता है। ऐसी स्थिति में उसके द्वारा आरम्भ किये गये काम अधूरे रह जाते हैं। इसलिए जिन्हें लम्बे समय तक ठहरना है और महत्वपूर्ण व्यक्तियों के अन्तराल में प्रेरणाएँ एवं क्षमताएँ देकर बड़े काम कराते रहना है, उन्हें सूक्ष्म शरीर में ही प्रवेश करना पड़ता है।"

"जब तक तुम्हारे स्थूल शरीर की उपयोगिता रहेगी, तभी तक वह काम करेगा। इसके उपरान्त इसे छोड़कर सूक्ष्म शरीर में चला जाना होगा। तब साधनाएँ भिन्न होंगी, क्षमताएँ बढ़ी-चढ़ी होंगी। विशिष्ट व्यक्तियों से सम्पर्क रहेगा। बड़े काम इसी प्रकार हो सकेंगे।"

गुरुदेव ने कहा—"उचित समय आने पर तुम्हारा परिचय देवात्मा हिमालय क्षेत्र से कराना है। गो मुख से पहले सन्त महापुरुष स्थूल शरीर समेत निवास करते हैं। इस क्षेत्र में भी कई प्रकार की कठिनाईयाँ हैं। इनके बीच निर्वाह करने का अभ्यास करने के लिए, एक-एक साल वहाँ निवास करने का क्रम बना देने की योजना बनाई है। इसके अतिरिक्त हिमालय का हृदय जिसे अध्यात्म का ध्रुव केन्द्र कहते हैं उसमें चार-चार दिन ठहरना होगा, हम साथ रहेंगे। स्थूल शरीर जैसी स्थिति सूक्ष्म शरीर की बनाते रहेंगे। वहाँ कौन रहता है, किस स्थिति में रहता है, तुम्हें कैसे रहना होगा यह भी तुम्हें विदित हो जाएगा। दोनों शरीरों का दोनों क्षेत्रों का अनुभव क्रमशः बढ़ते रहने में तुम उस स्थिति में पहुँच जाओगे, जिसमें ऋषि अपने निर्धारित संकल्पों की पूर्ति में संलग्न रहते हैं। संक्षेप में यही है तुम्हें चार बार हिमालय बुलाने का उद्देश्य। इसके लिए जो अभ्यास करना पड़ेगा, जो परीक्षा उत्तीर्ण करनी पड़ेगी, यह उद्देश्य भी इस बुलावे का है। तुम्हारी यहाँ पुरश्चरण साधना में इस विशिष्ट प्रयोग से कोई विघ्न न पड़ेगा।

सूक्ष्म शरीर धारी उसी क्षेत्र में इन दिनों निवास करते हैं। पिछले हिम युग के बाद परिस्थितियाँ बदल गई हैं। जहाँ धरती का स्वर्ग था, वहाँ का वातावरण अब देवताओं के उपयुक्त नहीं रहा, इसलिए वे अन्तरिक्ष में रहते हैं।

पूर्वकाल में ऋषिगण गो मुख से ऋषीकेश तक अपनी-अपनी रुचि और सुविधाओं के अनुसार रहते थे। वह क्षेत्र अब पर्यटकों, तीर्थयात्रियों और व्यवसाइयों से भर गया है। इसलिए उसे उन्हीं लोगों के लिए छोड़ दिया गया है। अनेकों देव मन्दिर बन गये हैं ताकि यात्रियों का कौतूहल-पुरातन काल का इतिहास और निवासियों का निर्वाह चलता रहे।"

हमें बताया गया कि थियोसोफी की संस्थापिका ब्लैवेट्स्की सिद्ध पुरुष थीं। ऐसी मान्यता है कि वे स्थूल शरीर में रहते हुए भी सूक्ष्म शरीरधारियों के सम्पर्क में थीं। उनने अपनी पुस्तकों में लिखा है कि दुर्गम हिमालय में "अदृश्य सिद्ध पुरुषों की पार्लियामेण्ट" है। इसी प्रकार उस क्षेत्र के दिव्य निवासियों को "अदृश्य सहायक" भी कहा गया है। गुरुदेव ने कहा कि वह सब सत्य है, तुम अपने दिव्य चक्षुओं से यह सब उसी हिमालय क्षेत्र में देखोगे, जहाँ हमारा निवास है।" तिब्बत क्षेत्र उन दिनों हिमालय की परिधि में आता था। अब वह परिधि घट गयी है। तो भी ब्लैवेट्स्की का कथन सत्य है। स्थूल शरीरधारी उसे देख नहीं पाते पर हमें अपने मार्गदर्शक गुरुदेव की सहायता से उसे देख सकने का आश्वासन मिल गया।

गुरुदेव ने कहा—"हमारे बुलावे की प्रतीक्षा करते रहना। जब परीक्षा की स्थिति के लिए उपयुक्तता एवं आवश्यकता समझी जायगी, तभी बुलाया जायगा। अपनी ओर से उसकी इच्छा या प्रतीक्षा मत करना। अपनी ओर से जिज्ञासावश उधर प्रयाण भी मत करना।। वह सब निरर्थक रहेगा। तुम्हारे समर्पण के उपरान्त वह जिम्मेदारी हमारी हो जाती है। इतना कह कर वे अन्तर्धान हो गये।

दिये गये कार्यक्रमों का प्राण-पण से निर्वाह :

इस प्रथम साक्षात्कार के समय मार्गदर्शक सत्ता द्वारा तीन कार्यक्रम दिए गए थे। सभी नियमोपनियमों के साथ २४ वर्ष का २४ गायत्री महा-पुरश्चरण सम्पन्न किया जाना था। अखण्ड घृत दीपक को भी साथ-साथ निभाना था। अपनी पात्रता में क्रमशः कमी पूरी करने के साथ लोकमंगल की भूमिका निभाने हेतु साहित्य सृजन करना दूसरा महत्वपूर्ण दायित्व था। इसके लिए गहन स्वाध्याय भी करना था जो एकाग्रता सम्पादन की साधना थी। साथ ही जन-सम्पर्क का भी कार्य करना था ताकि भावी कार्यक्षेत्र को दृष्टिगत रखते हुए हमारी संगठन क्षमता विकसित हो। तीसरा महत्वपूर्ण दायित्व था स्वतन्त्रता संग्राम में एक स्वयंसेवी सैनिक की भूमिका निभाना।

देखा जाय तो सभी दायित्व शैली एवं स्वरूप की दृष्टि से परस्पर विरोधी थे। किन्तु साधना एवं स्वाध्याय की प्रगति में इनमें से कोई बाधक नहीं बने। जबकि इस बीच हमें दो बार हिमालय भी जाना पड़ा। अपितु सभी साथ-साथ सहज ही ऐसे सम्पन्न होते चले गये कि हमें स्वयं इनके क्रियान्वयन पर अब आश्चर्य होता है। इसका श्रेय उस दैवी मार्गदर्शक सत्ता को जाता है जिसने हमारे जीवन की बागडोर प्रारम्भ से ही अपने हाथों में ले ली थी एवं सतत् संरक्षण का आश्वासन दिया।

ऋषि दृष्टिकोण की दीक्षा जिस दिन मिली, उसी दिन यह भी कह दिया गया कि यह परिवार सम्बद्ध तो है पर बिजातीय द्रव्य की तरह है—बचने योग्य। इसके तर्क, प्रमाणों की ओर से कान बन्द किये रहना ही उचित रहेगा। इसलिए सुननी तो सबकी चाहिये पर करनी मन की। उनके परामर्श को—आग्रह को वजन या महत्व दिया गया और उन्हें स्वीकारने का मन बनाया गया तो फिर लक्ष्य तक पहुँचना कठिन है। श्रेय और प्रेय की दोनों दिशायें एक दूसरे के प्रतिकूल जाती हैं। दोनों में से एक ही अपनायी जा सकती है। संसार प्रसन्न होगा तो आत्मा रूठेगी। आत्मा को सन्तुष्ट किया जायेगा तो संसार की—निकटस्थों की नाराजगी सहन करनी पड़ेगी। आमतौर से यही होता रहेगा। कदाचित् ही कभी कहीं ऐसे सौभाग्य बने हैं, जब सम्बन्धियों ने आदर्शवादिता अपनाने का अनुमोदन दिया हो। आत्मा को तो अनेकों बार संसार के सामने झुकना पड़ा है। ऊँचे निश्चय बदलने पड़े हैं और पुराने ढर्रे पर आना पड़ा है।

यह कठिनाई अपने सामने पहले दिन से ही आई। बसन्त पर्व को जिस दिन नया जन्म मिला, उसी दिन नया कार्यक्रम भी। पुरश्चरणों की श्रृंखला के साथ-साथ आहार-विहार के तपस्वी स्तर के अनुबन्ध भी। तह-लका मचा, जिसने सुना अपने-अपने ढङ्ग से समझाने लगा। मीठे और कड़ुवे शब्दों की वर्षा होने लगी। मन्तव्य एक ही था कि जिस तरह सामान्य जन जीवनयापन करते हैं, कमाते-खाते हैं, वही राह उचित है। ऐसे कदम न उठाये जायें जिनसे इन दोनों में व्यवधान पड़ता हो। यद्यपि पैतृक सम्पदा

इतनी थी कि उसके सहारे तीन पीढ़ी तक घर बैठकर गुजारा हो सकता था। पर उस तर्क को कोई सुनने तक के लिए तैयार न हुआ। नया कमाओ, नया खाओ, जो पुराना है, उसे भविष्य के लिए कुटुम्बियों के लिए जमा रखो। सब लोग अपने-अपने शब्दों में एक ही बात कहते थे। अपना मुँह एक—सामने वाले के सौ। किस-किस को कहाँ तक जबाव दिया जाय? अन्त में हारकर गाँधीजी के तीन गुरुओं में से एक को अपना भी गुरु बना लिया। मौन रहने से राहत मिली। "भगवान की प्रेरणा" कह देने से थोड़ा काम चल जाता क्योंकि उसे काटने के लिए उन सबके पास बहुत पैने तर्क नहीं थे। नास्तिकवाद तक उतर आने या अन्तःप्रेरणा का खण्डन करने लायक तर्क उनमें से किसी ने भी नहीं सीखे समझे थे। इसलिए बात ठण्डी पड़ गयी। मैंने अपना संकल्पित व्रत इस प्रकार चालू कर दिया मानो किसी को जबाव देना ही नहीं था। किसी का परामर्श लेना ही नहीं था। अब सोचता हूँ कि उतनी दृढ़ता न अपनायी गई होती, तो नाव दो चार झकझोरे खाने के उपरान्त ही डूब जाती। जिस साधना बल के सहारे आज अपना और दूसरों का कुछ भला बन पड़ा उसका सुयोग ही न आता। ईश्वर के साथ वह नाता जुड़ता ही नहीं जो पवित्रता और प्रखरता से कम में जड़ें जमाने की स्थिति में होता ही नहीं।

इसके बाद दूसरी परीक्षा बचपन में ही तब सामने आई जब काँग्रेस का असहयोग आन्दोलन आरम्भ हुआ। गाँधीजी ने सत्याग्रह आन्दोलन का बिगुल बजाया। देश-भक्तों का आह्वान किया और जेल जाने—गोली खाने के लिए घर से निकल पड़ने के लिए कहा।

मैंने अन्तरात्मा की पुकार सुनी और समझा कि यह ऐतिहासिक अवसर है। इसे किसी भी कारण चुकाया नहीं जाना चाहिए। मुझे सत्याग्रहियों की सेना में भर्ती होना ही चाहिए। अपनी मर्जी से उस क्षेत्र के भर्ती केन्द्र में नाम लिखा दिया। साधन सम्पन्न घर छोड़कर नमक सत्याग्रह के लिए निर्धारित मोर्चे पर जाना था। उन दिनों गोली चलने की चर्चा बहुत जोरों से थी। लम्बी सजायें—काला पानी होने की भी। ऐसी अफवाहें सर-

कारी पक्ष के—किराये के प्रचारक जोरों से फैला रहे थे ताकि कोई सत्याग्रही बने नहीं। घर वाले उसकी पूरी-पूरी रोकथाम करें। मेरे सम्बन्ध में भी यही हुआ। समाचार विदित होने पर मित्र, पड़ौसी, कुटुम्बी, सम्बन्धी एक भी न बचा जो इस विपत्ति से बचाने के लिए जोर लगाने के लिए न आया हो। उनकी दृष्टि से यह आत्म-हत्या जैसा प्रयास था।

बात बढ़ते-बढ़ते जबावी आक्रमण तक की आयी। किसी ने अनशन की धमकी दी, तो किसी ने आत्म-हत्या। हमारी माताजी अभिभावक थीं। उन्हें यह पट्टी पढ़ाई गयी कि लाखों की पैतृक सम्पत्ति से वे मेरा नाम खारिज कराकर अन्य भाइयों के नाम कर देंगी। भाइयों ने कहा—घर से कोई रिश्ता न रहेगा और उसमें प्रवेश भी न मिलेगा। इसके अतिरिक्त भी और कई प्रकार की धमकियाँ दीं। उठाकर ले जाया जायेगा और डाकुओं के नियन्त्रण में रहने के लिए बाधित कर दिया जायेगा।

इन मीठी-कड़वी धमकियों को मैं शान्तिपूर्वक सुनता रहा। अन्तरात्मा के सामने एक ही प्रश्न रहा कि समय की पुकार बड़ी है या परिवार का दबाव। अन्तरात्मा की प्रेरणा बड़ी है या मन को इधर-उधर डुलाने वाले असमंजस की स्थिति। अन्तिम निर्णय किससे कराता? आत्मा और परमात्मा दो को ही साक्षी बनाकर और उनके निर्णय को ही अन्तिम मानने का फैसला किया।

इस सन्दर्भ में प्रह्लाद का फिल्म चित्र आँखों के आगे तैरने लगा। वह समाप्त न होने पाया था कि ध्रुव की कहानी मस्तिष्क में तैरने लगी। इसका अन्त न होने पाया कि पार्वती का निश्चय उछलकर आगे आ गया। इस आरम्भ के उपरान्त महामानवों की, वीर बलिदानियों की, सन्त, सुधारक और शहीदों की अगणित कथा-गाथायें सामने तैरने लगीं। उनमें से किसी के भी घर-परिवार वालों ने, मित्र-सम्बन्धियों ने समर्थन नहीं किया था। वे अपने एकाकी आत्मबल के सहारे कर्तव्य की पुकार पर आरूढ़ हुए और दृढ़ रहे। फिर यह सोचना व्यर्थ है कि इस समय अपने इर्द-गिर्द के लोग क्या

करते और क्या कहते हैं ? उनकी बात सुनने से आदर्श नहीं निभेंगे। आदर्श निभाने हैं तो अपने मन की ललक लिप्साओंसे जूझना पड़ेगा। इतना ही नहीं इर्द-गिर्द जुड़े हुए उन लोगों की भी उपेक्षा करनी पड़ेगी जो मात्र पेट प्रजनन के कुचक्र में ही घूमते और घुमाते रहे हैं।

निर्णय आत्मा के पक्ष में गया। मैं अनेकों विरोध और प्रतिबन्धों को तोड़ता—लुक-छिपकर निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचा और सत्याग्रही की भूमिका निभाता हुआ जेल चला गया। जो भय का काल्पनिक आतङ्क बनाया गया था उसमें से एक भी चरितार्थ नहीं हुआ।

छुटपन की एक घटना इन दोनों प्रयोजनों में और भी साहस देती रही। गाँव में एक बुढ़िया मेहतरानी घावों से पीड़ित थी। दस्त भी हो रहे थे। घावों में कीड़े पड़ गये थे। बेतरह चिल्लाती थी पर कोई छूत के कारण उसके घर में घुसता न था। मैंने एक चिकित्सक से उपचार पूछा। दवाओं का एकाकी प्रबन्ध किया उसके घर नियमित रूप से जाने लगा। चिकित्सा के लिए भी परिचर्या के लिए भी—भोजन व्यवस्था के लिए भी। यह सारे काम मैंने अपने जिम्मे ले लिए। मेहतरानी के घर में घुसना, उसके मल-मूत्र से सने कपड़े धोना आज से ६५ वर्ष पूर्व पूरा गुनाह था। जाति बहिष्कार कर दिया गया। घर वालों तक ने प्रवेश न करने दिया। चबूतरे पर पड़ा रहता और जो कुछ घर वाले दे जाते, उसी को खाकर गुजारा करता। इतने पर भी मेहतरानी की सेवा छोड़ी नहीं। यह पन्द्रह दिन चली और वह अच्छी हो गई। वह जब तक जियी मुझे भगवान कहती रही। उन दिनों १३ वर्ष की आयु में भी अकेला था। सारा घर और सारा गाँव एक ओर। लड़ता रहा हारा नहीं। अब तो उम्र कई वर्ष और अधिक बड़ी हो गयी थी. अब क्यों हारता ?

स्वतन्त्रता संग्राम की कई बार जेलयात्रा—२४ महापुरश्चरणों का व्रत धारण—इसके साथ ही मेहतरानी की सेवा-साधना यह तीन परीक्षायें, मुझे छोटी उम्र में ही पास करनी पड़ीं। आन्तरिक दुर्बलतायें और सम्बद्ध परिजनों

के दुहरे मोर्चे पर एक साथ लड़ा। उस आत्म-विजय का ही परिणाम है कि आत्मबल संग्रह में अधिक लाभ से लाभान्वित होने का अवसर मिला। उन घटनाक्रमों से हमारा आपा बलिष्ठ होता चला गया एवं वे सभी कार्यक्रम हमारे द्वारा बखूबी निभते चले गये जिनका हमें संकल्प दिलाया गया था।

महा पुरश्चरणों की शृंखला नियमित रूप से चलती रही। जिस दिन गुरुदेव के आदेश से उस साधना का शुभारम्भ किया था उसी दिन घृत दीप की अखण्ड-ज्योति भी स्थापित की। उसकी जिम्मेदारी हमारी धर्मपत्नी ने सम्भाली, जिन्हें हम भी माताजी के नाम से पुकारते हैं। छोटे बच्चे की तरह उस पर हर घड़ी ध्यान रखे जाने की आवश्यकता पड़ती थी। अन्यथा वह बच्चे की तरह मचल सकता था, बुझ सकता था। वह अखण्ड दीपक इतने लम्बे समय से बिना किसी व्यवधान के अब तक नियमित जलता रहा है। इसके प्रकाश में बैठकर जब भी साधना करते हैं तो मनःक्षेत्र में अनायास ही दिव्य भावनाएँ उठती रहती हैं। कभी किसी उलझन को सुलझाना अपनी सामान्य बुद्धि के लिए सम्भव नहीं होता तो इस अखण्ड ज्योति की प्रकाश किरणें अनायास ही उस उलझन को सुलझा देती हैं।

नित्य ६६ माला का जप, गायत्री माता के चित्र प्रतीक का धूप, दीप, नैवेद्य, अक्षत, पुष्प, जल से पूजन। जप के साथ-साथ प्रातःकाल के उदीयमान सविता देवता का ध्यान। अन्त में सूर्यार्घ्य दान। इतनी छोटी-सी विधि व्यवस्था अपनाई गई। उसके साथ बीज मन्त्र—सम्पुट आदिका कोई तान्त्रिक विधि-विधान जोड़ा नहीं गया। किन्तु श्रद्धा अटूट रही। सामने विद्यमान गायत्री माता के चित्र के प्रति असीम श्रद्धा उमड़ती रही। लगता रहा वे साक्षात सामने बैठी हैं। कभी-कभी उनके अंचल में मुँह छिपा कर प्रेमाश्रु बहाने के लिए मन उमड़ता। कभी ऐसा नहीं हुआ कि मन न लगा हो। कहीं अन्यत्र भागा हो। तन्मयता निरन्तर प्रगाढ़ स्तर की बनी रही। समय पूरा हो जाता तो अलग अलार्म बजता। अन्यथा उठने को जी ही नहीं करता था। उपासना क्रम में कभी एक दिन भी विघ्न न आया।

यही बात अध्ययन के सम्बन्ध में रही। उसके लिए अतिरिक्त समय

न निकालना पड़ा । कांग्रेस कार्यों के लिए प्रायः काफी-काफी दूर चलना पड़ता । जब परामर्श या कार्यक्रम का समय आता तब पढ़ना बन्द हो जाता जहाँ चलना आरम्भ हुआ वहीं पढ़ना भी आरम्भ हो गया । पुस्तक साइज के ४० पन्ने प्रति घण्टे पढ़ने की स्पीड रही । कम से कम दो घण्टे नित्य पढ़ने के लिए मिल जाते । कभी-कभी ज्यादा भी । इस प्रकार २ घण्टे में ८० पृष्ठ । महीने में ४८०० पृष्ठ । साल भर में ५८ हजार पृष्ठ । साठ वर्ष की कुल अवधि में ३५ लाख पृष्ठ हमने मात्र अपनी अभिरुचि के पढ़े हैं । लगभग ३ हजार पृष्ठ नित्य विहंगम रूप से पढ़ लेने की बात भी हमारे लिए स्नान भोजन की तरह आसान व सहज रही है । यह क्रम प्रायः ६० वर्ष से अधिक समय से चलता आ रहा है और इतने दिन में अनगिनत पृष्ठ उन पुस्तकों के पढ़ डाले जो हमारे लिए आवश्यक विषयों से सम्बन्धित थे । महापुरश्चरणों की समाप्ति के बाद समय अधिक मिलने लगा । तब हमने भारत के विभिन्न पुस्तकालयों में जाकर ग्रन्थों—पाण्डुलिपियों का अध्ययन किया । वह हमारे लिये अमूल्य निधि बन गयी ।

मनोरंजन लिए एक पन्ना भी कभी नहीं पढ़ा है । अपने विषयों में मानों प्रवीणता की उपाधि प्राप्त करनी हो ऐसी तन्मयता से पढ़ा है । इसलिये पढ़े हुए विषय मस्तिष्क में एकीभूत हो गये । जब भी कोई लेख लिखते थे या पूर्व में वार्त्तालाप में किसी गम्भीर विषय पर चर्चा करते थे तो पढ़े हुए विषय अनायास ही स्मरण हो आते थे । लोग पीठ पीछे कहते हैं "यह तो चलता फिरता एन-साइक्लोपीडिया हैं ।" अखण्ड-ज्योति पत्रिका के लेख पढ़ने वाले उसमें इतने सन्दर्भ पाते हैं कि लोग आश्चर्यचकित होकर रह जाते हैं और सोचते हैं कि एक लेख के लिए न जाने कितनी पुस्तकों और पत्रिकाओं से सामग्री इकट्ठी करके लिखा गया है । यही बात युग निर्माण योजना, युग शक्ति पत्रिका के बारे में है । पर सच बात इतनी ही है कि हमने जो भी पढ़ा है, उपयोगी पढ़ा है और पूरा मन लगाकर पढ़ा है । इसलिए समय पर सारे सन्दर्भ अनायास ही स्मृति पटल पर उठ आते हैं । यह वस्तुतः हमारी तन्मयता से की गयी साधना का चमत्कार है ।

जन्मभूमि के गाँव में प्राथमिक पाठशाला थी। सरकारी स्कूल की दृष्टि से इतना ही पढ़ा है। संस्कृत हमारी वंश परम्परा में घुली हुई है। पिताजी संस्कृत के असाधारण प्रकाण्ड विद्वान थे। भाई भी। सबकी रुचि भी उसी ओर थी। फिर हमारा पैतृक व्यवसाय पुराणों की कथा कहना तथा पौरोहित्य रहा है सो उस कारण उसका भी समुचित ज्ञान हो गया। आचार्य तक के विद्यार्थियों को हमने पढ़ाया है, जबकि हमारी स्वयं की डिग्रीधारी योग्यता नहीं थी।

इसके बाद अन्य भाषाओं के पढ़ने की कहानी मनोरंजक है। जेल में लोहे के तसले पर कंकड़ की पेन्सिल से अँग्रेजी लिखना आरम्भ किया। एक दैनिक अंक "लीडर" अखबार का जेल में हाथ लग गया था। उसी से पढ़ना शुरू किया। साथियों से पूछताछ कर लेते, इस प्रकार एक वर्ष बाद जब जेल से छूटे तो अँग्रेजी की अच्छी-खासी योग्यता उपलब्ध हो गई। आपसी चर्चा से हर बार की जेलयात्रा में अँग्रेजी का शब्दकोश हमारा बढ़ता ही चला गया एवं क्रमशः व्याकरण भी सीख ली। बदले में हमने उन्हें संस्कृत एवं मुहावरों वाली हिन्दुस्तानी भाषा सिखा दी। अन्य भाषाओं की पत्रिकाएँ तथा शब्द कोश अपने आधार रहे हैं और ऐसे ही रास्ता चलते अन्यान्य भाषाएँ पढ़ ली हैं। गायत्री को बुद्धि की देवी कहा जाता है। दूसरों को वैसा लाभ मिला या नहीं। पर हमारे लिए ये चमत्कारी लाभ प्रत्यक्ष हैं। अखण्ड-ज्योति की संस्कृतनिष्ठ हिन्दी ने हिन्दी के प्राध्यापकों तक का मार्गदर्शन किया है। यह हम जब देखते हैं तो उस महाप्रज्ञा को ही इसका श्रेय देते हैं। अति व्यस्तता रहने पर भी विश्व की—ज्ञान की–विभूति इतनी मात्रा में हस्तगत हो गई, जिसमें हमें परिपूर्ण सन्तोष होता है और दूसरों को आश्चर्य।

गुरुदेव का आदेश पालन करने के लिए हमने काँग्रेस के सत्याग्रह आन्दोलन में भाग तो लिया पर प्रारम्भ में असमंजस ही बना रहा कि जब चौबीस वर्ष का एक संकल्प दिया गया था तो ५ और १९ वर्ष के दो टुकड़ों में क्यों विभाजित किया। फिर आन्दोलन में तो हजारों स्वयं सेवक संलग्न थे तो एक की कमीबेशी से उसमें क्या बनता बिगड़ता था।

हमारे असमंजस को साक्षात्कार के समय ही गुरुदेव ने ताड़ लिया था। जब बारी आई तो उनकी परावाणी से मार्ग दर्शन मिला कि "युग धर्म की अपनी महत्ता है। उसे समय की पुकार समझ कर अन्य आवश्यक कार्यों को भी छोड़कर उसी प्रकार दौड़ पड़ना चाहिए जैसे अग्निकाण्ड होने पर पानी लेकर दौड़ना पड़ता है और अन्य सभी आवश्यक काम छोड़ने पड़ते हैं।" आगे सन्देश मिला कि "अगले दिनों तुम्हें जन सम्पर्क के अनेकों काम करने है उनके लिए विविध प्रकार के व्यक्तियों से सम्पर्क साधने और निपटने का दूसरा कोई अवसर नहीं आने वाला है। यह उस उद्देश्य की पूर्ति का एक चरण है, जिसमें भविष्य में बहुत सा श्रम व समय लगना है। आरम्भिक दिनों में जो पाठ पढ़े थे, पूर्वजन्मों में जिनका अभ्यास किया था, उनकी रिहर्सल का अवसर भी मिल जाएगा। यह सभी कार्य निजी लाभ की दृष्टि से महत्वपूर्ण नही हैं। समय की माँग तो इसी से पूरी होती है।"

'व्यावहारिक जीवन में तुम्हें चार पाठ पढ़ाये जाने हैं। (१) समझदारी (२) ईमानदारी (३) जिम्मेदारी (४) बहादुरी। इनके सहारे ही व्यक्तित्व में खरापन आता है और प्रतिभा पराक्रम विकसित होता है। हथियार भोंथरे तो नहीं पड़ गए, कही पुराने पाठ विस्मृत तो नहीं हो गए, इसकी जाँच पड़ताल नये सिरे से हो जाएगी। इस दृष्टि से एवं भावी क्रिया पद्धति के सूत्रों को समझने के लिए तुम्हारा स्वतंत्रता संग्राम अनुष्ठान भी जरूरी है।"

देश के लिए हमने क्या किया ? कितने कष्ट सहे, सोंपे गए कार्यों को कितनी खूबी से निभाया, इसकी चर्चा यहाँ करना सर्वथा अप्रासंगिक होगा। उसे जानने की आवश्यकता प्रतीत होती हो तो परिजन—पाठक उत्तर प्रदेश सरकार के सूचना विभाग द्वारा प्रकाशित "आगरा संभाग के स्वतंत्रता संग्राम सेनानी" पुस्तक पढ़ लें। उसमें अनेकों महत्वपूर्ण कार्यों के साथ हमारा उल्लेख हुआ है। "श्रीराम मत्त हमारा उन दिनों का प्रचलित नाम है। यहाँ तो केवल यह ध्यान में रखना है कि हमारे हित में मार्ग दर्शक ने किस हित का ख्याल मन में रखकर यह आदेश दिया।

इन दस वर्षों में जेलों में तथा जेल से बाहर अनेकों प्रकृति के लोगों

से मिलना हुआ । स्वतंत्रता संग्राम के समय में जन-जागृति चरम सीमा पर थी । शूरवीर, साहस के धनी, संकल्प बल वाले अनेकों ऐसे व्यक्ति सम्पर्क में आए, जिनसे हमने बहुत कुछ सीखा । जन समुदाय को लाभान्वित करने और नैतिक क्रान्ति जैसे बड़े कार्य के लिए अपना प्रशंसक, समर्थक, सहयोगी बनाने हेतु किन रीति नीतियों को अपनाना चाहिए, यह हमें मात्र दो वर्षों में ही सीखने को मिल गया । इसके लिये वैसे पूरी जिन्दगी गुजार देने पर यह सुयोग उपलब्ध न होता । विचित्र प्रकार की विचित्र प्रकृतियों को अध्ययन करने का इतना अवसर मिला जितना देश के अधिकांश भाग का परिभ्रमण करने पर मिल पाता । हमारे मन में घर-गृहस्थी अपने पराये का मोह छूट गया और उन विपन्न परिस्थितियों में भी इतनी प्रसन्नतापूर्वक जीवन जिया कि अपने आपे की मजबूती पर विश्वास होता चला । सबसे बड़ी बात यह कि हमारा स्वभाव स्वयं सेवक की तरह ढलता चला गया जो अभी भी हमें इस चरमावस्था में पहुँचने पर भी विनम्र बनाए हुए हैं । हमारे असमंजस का समाधान उन दिनों गुजारे स्वतंत्रता संग्राम के प्रसंगों से हो गया कि क्यों हमसे अनुष्ठान दो भागों में कराया गया ।

काँग्रेस की स्थापना की एक शताब्दी होने को चली । पर वह काँग्रेस जिसमें हमने काम किया वह अलग थी । उसमें काम करने के हमारे अपने विलक्षण अनुभव रहे हैं । अनेकों मूर्धन्य प्रतिभाओं से सम्पर्क साधने के अवसर अनायास ही आते रहे । सदा विनम्र और अनुशासन रत स्वयं सेवक की अपनी हैसियत रखी । इसलिए मूर्धन्य नेताओं की सेवा में किसी विनम्र स्वयं सेवक की जरूरत पड़ती तो हमें ही पेल दिया जाता रहा । आयु भी इसी योग्य थी । इसी सम्पर्क में हमने बड़ी से बड़ी विशेषताएँ सीखीं । अवसर मिला तो उनके साथ भी रहने का सुयोग मिला, साबरमती आश्रम में गांधी जी के साथ और पवनार आश्रम में विनोबा के साथ रहने का लाभ मिला है । दूसरे उनके समीप जीते हुए दर्शन मात्र करते हैं या रहकर लौट आते हैं जब कि हमने इन सम्पर्कों में बहुत कुछ पढ़ा और जाना है । इन सबकी स्मृतियों का उल्लेख करना तो यहाँ अप्रासंगिक होगा । पर कुछ घटनाएँ ऐसी हैं जो

हमारे लिए कल्पवृक्ष की तरह महत्वपूर्ण सिद्ध हुईं।

सन् १९३३ की बात है। कलकत्ता में इण्डियन नेशनल कांग्रेस का अधिवेशन था। उन दिनों कांग्रेस गैर कानूनी थी। जो भी जाते, पकड़े जाते। उसमें गोली काण्ड भी हुआ। जिन्हें महत्वपूर्ण समझा गया, उन्हें वर्दवान स्टेशन पर पकड़ लिया गया और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के जमाने में बनी गोरों के लिए बनाई गई एक विशेष जेल (आसनसोल) में भेज दिया गया। इसमें हम भी आगरा जिले के अपने तीन साथियों के साथ पकड़े गए। यहाँ हमारे साथ में मदनमोहन जी मालवीय के अलावा गांधी जी के सुपुत्र देवीदास गाँधी, श्री जवाहर लाल नेहरू की माता स्वरूप रानी नेहरू, रफी अहमद किदवई, चन्द्रभान गुप्त, कन्हैयालाल खादी वाला जगन, प्रसाद रावत, आदि मूर्धन्य लोग थे। वहाँ जब तक हम लोग रहे, सायंकाल महामना मालवीय जी का नित्य भाषण होता था। मालवीय जी व माता स्वरूप रानी सबके साथ सगे बच्चों की तरह व्यवहार करते थे। एक दिन उनने अपने व्याख्यान में इस बात पर बहुत जोर दिया कि हमें आन्दोलन को आगे बढ़ाने के लिए हर मर्द से एक पैसा और हर स्त्री से एक मुट्ठी अनाज के लिए माँग कर लाना चाहिए ताकि सभी यह समझें कि कांग्रेस हमारी है। हमारे पैसों से बनी है। सबको इसमें अपनापन लगेगा एवं मुट्ठी फण्ड ही इसका मूल आर्थिक आधार बन जाएगा। वह बात औरों के लिए महत्वपूर्ण न थी पर हमने उसे गाँठ बाँध लिया। ऋषियों का आधार यही 'भिक्षा' थी। उसी के सहारे वे बड़े-बड़े गुरुकुल और आरण्यक चलाते थे। हमें भविष्य में बहुत बड़े काम करने के लिए गुरुदेव ने संकेत दिये थे। उनके लिए पैसा कहाँ से आयेगा, इसकी चिन्ता मन में बनी रहती थी। इस बार जेल में सूत्र हाथ लग गया। जेल से छूटने पर जब बड़े काम पूरे करने का उत्तरदायित्व कन्धे पर आया तब उसी फार्मूले का उपयोग किया। "दस पैसा प्रतिदिन या एक मुट्ठी" अनाज अंशदान के रूप में यही तरीका अपनाया और अब तक लाखों नहीं, करोड़ों रुपया खर्च कर या करा चुके हैं।

कांग्रेस अपनी गायत्री गंगोत्री की तरह जीवनधारा रही। जब

स्वराज्य मिल गया तो मैंने उन्हीं कामों की ओर ध्यान दिया जिससे स्वराज्य की समग्रता सम्पन्न हो सके। राजनेताओं को देश की राजनैतिक आर्थिक स्थिति सम्भालनी चाहिए। पर नैतिक क्रान्ति, बौद्धिक क्रान्ति और सामाजिक क्रान्ति उससे भी अधिक आवश्यक है, जिसे हमारे जैसे लोग ही सम्पन्न कर सकते हैं। यह धर्म-तन्त्र का उत्तरदायित्व है।

अपने इस नये कार्यक्रम के लिए अपने सभी गुरुजनों से आदेश लिया और काँग्रेस का एक ही कार्यक्रम अपने जिम्मे रखा। "खादी धारण।" इसके अतिरिक्त उसके सक्रिय कार्यक्रमों से उसी दिन पीछे हट गए जिस दिन स्वराज्य मिला। इसके पीछे बापू का आशार्वाद था, दैवी सत्ता का हमें मिला निर्देश था। प्रायः २० वर्ष लगातार काम करते रहने पर जब मित्रों ने स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी के नाते निर्वाह राशि लेने का फार्म भेजा तो हमने हँसकर स्पष्ट मना कर दिया। हमें राजनीति में श्रीराम मत्त या मत्तजी नामसे जाना जाता है। जो लोग जानते हैं, उस समय के मूर्धन्य जो जीवित हैं उन्हें विदित है कि आचार्य जी (मत्त जी) काँग्रेस के आधार स्तम्भ रहे हैं और कठिन से कठिन कामों में अग्रिम पंक्ति में खड़े रहे हैं। किन्तु जब श्रेय लेने का प्रश्न आया, उन्होंने स्पष्टतः स्वयं को पर्दे के पीछे रखा।

तीनों काम यथावत् पूरी तत्परता और तन्मयता के साथ सम्पन्न किये और साथ ही गुरुदेव जब-जब हिमालय बुलाते रहे तब-तब जाते रहे। बीच के दो आमन्त्रणों में उनने छै-छै महीने ही रोका। कहा "काँग्रेस का कार्य स्वतन्त्रता प्राप्ति की दृष्टि से इन दिनों आवश्यक है, सो इधर तुम्हारा रुकना छै-छै महीने ही पर्याप्त होगा।" उन छहः महीनों में हमसे क्या कराया गया एवं क्या कहा गया, यह सर्वसाधारण के लिए जानना जरूरी नहीं है। दृश्य जीवन के ही अगणित प्रसंग ऐसे हैं जिन्हें हम अलौकिक एवं दैवी शक्ति की कृपा का प्रसाद मानते हैं उसे याद करते हुए कृतकृत्य होते रहते हैं। *

—*—

गुरुदेव का प्रथम बुलावा—पग-पग पर परीक्षा

गुरुदेव द्वारा हमारी हिमालय बुलावे की बात मत्स्यावतार जैसी बढ़ती चली गई। पुराण की कथा है कि ब्रह्मा जी के कमण्डलु में कहीं से एक मछली का बच्चा आ गया। हथेली में आचमन के लिए कमण्डलु लिया तो वह देखते-देखते हथेली भर लम्बी हो गई। ब्रह्मा जी ने उसे घड़े में डाल दिया। क्षण भर में वह उससे भी दूनी हो गई। ब्रह्माजी ने उसे पास के तालाब में डाल दिया, उसमें भी वह समाई नहीं तब उसे समुद्र तक पहुँचाया गया। देखते-देखते उसने पूरे समुद्र को आच्छादित कर लिया। तब ब्रह्माजी को बोध हुआ। उस छोटी सी मछली में अवतार होने की बात जानी, स्तुति की और आदेश माँगा। बात पूरी होने पर मत्स्यावतार अन्तर्धान हो गये और जिस कार्य के लिए वे प्रकट हुए थे। वह कार्य सुचारु रूप से सम्पन्न हो गया।

हमारे साथ भी घटना क्रम ठीक इसी प्रकार चले हैं। आध्यात्मिक जीवन वहाँ से आरम्भ हुआ था जहाँ कि गुरुदेव ने परोक्ष रूप से महामना जी से गुरु दीक्षा दिलवाई थी। यज्ञोपवीत पहनाया था और गायत्री मन्त्र की नियमित उपासना करने का विधि-विधान बताया था। छोटी उम्र थी पर उसे पत्थर की लकीर की तरह माना और विधिवत् निबाहा। कोई दिन ऐसा नहीं बीता जिसमें नागा हुई हो। साधना नहीं तो भोजन नहीं। इस सिद्धान्त को अपनाया। वह आज तक ठीक चला है और विश्वास है कि जीवन के अन्तिम दिन तक यह निश्चित रूप से निभेगा।

इसके बाद गुरुदेव का प्रकाश रूप से साक्षात्कार हुआ। उनने आत्मा

को ब्राह्मण बनाने के निमित्त २४ वर्ष की गायत्री पुरश्चरण साधना बताई। वह भी ठीक समय पर पूरी हुई। इस बीच में बैटरी चार्ज कराने के लिए—परीक्षा देने के लिए बार-बार हिमालय आने का आदेश मिला। साथ ही हर यात्रा में एक-एक वर्ष या उससे कम दुर्गम हिमालय में ही रहने के निर्देश भी। वह क्रम भी ठीक प्रकार चला और परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर नया उत्तर-दायित्व भी कन्धे पर लदा। इतना ही नहीं उसका निर्वाह करने के लिए अनुदान भी मिला, ताकि दुबला बच्चा लड़खड़ा न जाय। जहाँ गड़बड़ाने की स्थिति आई वहीं मार्गदर्शक ने गोदी में उठा लिया।

पूरा एक वर्ष होने भी न पाया था कि बेतार का तार हमारे अन्तराल में हिमालय का निमन्त्रण ले आया। चल पड़ने का बुलावा आ गया। उत्सुकता, तो रहती थी पर जल्दी नहीं थी। जो नहीं देखा है उसे देखने की उत्कण्ठा, एवं जो अनुभव हस्तगत नहीं हुआ है, उसे उपलब्ध करने की आकाँक्षा ही थी। साथ ही ऐसे मौसम में जिसमें दूसरे लोग उधर जाते नहीं, ठण्ड, आहार, सुनसान, हिंस्र जन्तुओं का सामना पड़ने जैसे कई भय भी मन में उपज उठते। पर अन्ततः विजय प्रगति की हुई। साहस जीता। संचित कुसंस्कारों में से एक अनजाना डर भी था। यह भी था कि सुरक्षित रहा जाय और सुविधा पूर्वक जिया जाय जबकि घर की परिस्थितियाँ ऐसी ही थीं। दोनों के बीच कौरव पाण्डवों की लड़ाई जैसा महाभारत चला। पर यह सब २४ घण्टे से अधिक न टिका। ठीक दूसरे दिन हम यात्रा के लिए चल दिये। परिवार को प्रयोजन की सूचना दे दी। विपरीत सलाह देने वाले भी चुप रहे। वे जानते थे कि इसके निश्चय बदलते नहीं।

कड़ी परीक्षा देना और बढ़िया वाला पुरस्कार पाना, यही सिलसिला हमारे जीवन में चलता रहा है। पुरस्कार के साथ अगला बड़ा कदम उठाने का प्रोत्साहन भी। हमारे मत्स्यावतार का यही क्रम चलता आया है।

प्रथम बार हिमालय जाना हुआ तो वह प्रथम सत्संग था। हिमालय दूर से तो पहले भी देखा था पर वहाँ रहने पर किन परिस्थितियों का सामना

करना पड़ता है, इसकी पूर्व जानकारी कुछ भी न थी। वह अनुभव प्रथम बार ही हुआ। सन्देश आने पर चलने की तैयारी की। मात्र देव प्रयाग से उत्तर काशी तक उन दिनों सड़क और मोटर की व्यवस्था थी। इसके बाद तो पूरा रास्ता पैदल का था ही, ऋषिकेष से देव प्रयाग भी पैदल यात्रा करनी होती थी। सामान कितना लेकर चलना चाहिए जो कन्धे और पीठ पर लादा जा सके, इसका अनुभव न था। सो कुछ ज्यादा ही ले लिया। लादकर चलना पड़ा तो प्रतीत हुआ कि यह भारी है। उतना हमारे जैसा पैदल यात्री लेकर न चल सकेगा। सो सामर्थ्य से बाहर की वस्तुएँ रास्ते में अन्य यात्रियों को बाँटते हुए केवल उतना रहने दिया जो अपने से चल सकता था एवं उपयोगी भी था।

इस यात्रा से गुरुदेव एक ही परीक्षा लेना चाहते थे कि विपरीत परिस्थितियों में जूझने लायक मनःस्थिति पकी या नहीं। सो यात्रा अपेक्षाकृत कठिन ही होती गई। दूसरा कोई होता तो घबरा गया होता, वापस लौट पड़ता, या हैरानी में बीमार पड़ गया होता। पर गुरुदेव यह जीवन सूत्र व्यवहार रूप में सिखाना चाहते थे कि मनःस्थिति मजबूत हो तो परिस्थितियों का सामना किया जा सकता है, उन्हें अनुकूल बनाया या सहा जा सकता है। महत्वपूर्ण सफलताओं के लिए आदमी को इतना ही मजबूत होना पड़ता है।

ऐसा बताया जाता है कि जब धरती का स्वर्ग, या हृदय कहा जाने वाला भाग देवताओं का निवास था तब ऋषि गोमुख से नीचे और ऋषिकेश से ऊपर रहते थे, पर हिमयुग के बाद परिस्थितियाँ एकदम बदल गईं। देवताओं ने कारण शरीर धारण कर लिए और अन्तरिक्ष में विचरण करने लगे। पुरातन काल के ऋषि गोमुख से ऊपर चले गये। नीचे वाला हिमालय अब सैलानियों के लिए रह गया है। वहाँ कहीं-कहीं साधु बाबा जी की कुटियाँ तो मिलती हैं। पर जिन्हें ऋषि कहा जा सके ऐसों का मिलना कठिन है

हमने यह भी सुन रखा था कि हिमालय की यात्रा में मार्ग में आने वाली गुफाओं में सिद्धयोगी रहते हैं। वैसा कुछ नहीं मिला। पाया कि निर्वाह

एवं आजीविका की दृष्टि से वह कठिनाइयों से भरा क्षेत्र है। इसलिए वहाँ मनमौजी लोग आते जाते तो हैं पर ठहरते नहीं। जो साधु सन्त मिले, उनसे भेंट वार्त्ता होने पर विदित हुआ कि वे भी कौतूहल वश या किसी से कुछ मिल जाने की आशा में ही आते थे। न उनका तत्वज्ञान बढ़ा चढ़ा था, न तपस्वी जैसी दिनचर्या थी। थोड़ी देर पास बैठने पर वे अपनी आवश्यकता व्यक्त करते थे। ऐसे लोग दूसरों को क्या देंगे, यह सोचकर सिद्ध पुरुषों की तलाश में अन्यों द्वारा जब–तब की गई यात्रा मजे की यात्रा भर रहीं, यही मानकर अपने कदम आगे बढ़ाते गए। यात्रियों को आध्यात्मिक सन्तोष समाधान तनिक भी नहीं होता होगा, यही सोचकर मन दुःखी रहा।

उनसे तो हमें चट्टियों पर दुकान लगाए हुए पहाड़ी दुकानदार अच्छे लगे। वे भोले और भले थे। आटा दाल, चावल आदि खरीदने पर वे पकाने के बर्त्तन बिना किराया लिए—बिना गिने ऐसे ही उठा देते थे माँगने जाँचने का कोई धन्धा उनका नहीं था। अक्सर चाय बेचते थे। बीड़ी, माचिस, चना गुड़ सत्तू, आलू जैसी चीजें यात्रियों को उनसे मिल जाती थीं। यात्री श्रद्धालु तो होते थे, पर गरीब स्तर के थे। उनके काम की चीजें ही दुकानों पर बिकती थीं। कम्बल उसी क्षेत्र के बने हुए किराये पर रात काटने के लिए मिल जाते थे।

शीत ऋतु और पैदल चलना यह दोनों ही परीक्षाएँ कठिन थीं। फिर उस क्षेत्र में रहने वाले साधु सन्यासी उन दिनों गरम इलाकों में गुजारे की व्यवस्था करने नीचे उतर आते हैं। जहाँ ठन्ड अधिक है वहाँ के ग्रामवासी भी पशु चराने नीचे के इलाकों में उतर आते हैं। गाँवों में–झोंपड़ियों में सन्नाटा रहता है। ऐसी कठिन परिस्थितियों में हमें उत्तरकाशी से नन्दन वन तक की यात्रा पैदल चल कर पूरी करनी थी। हर दृष्टि से यह यात्रा बहुत कठिन थी।

स्थान नितान्त एकाकी। ठहरने खाने की कोई व्यवस्था नहीं, वन्य पशुओं का निर्भीक विचरण, यह सभी बातें काफी कष्टकर थीं। हवा उन दिनों काफी ठण्डी चलती थी। सूर्य ऊँचे पहाड़ों की छाया में छिपा रहने के कारण

दस बजे के करीब दीखता है और दो बजे के करीब शिखरों के नीचे चला जाता है। शिखरों पर तो धूप दीखती है, पर जमीन पर मध्यम स्तर का अन्धेरा। रास्ते में कभी ही कोई भूला-भटका आदमी मिलता। जिन्हें कोई अति आवश्यक काम होता, किसी की मृत्यु हो जाती तो ही आने-जाने की आवश्यकता पड़ती। हर दृष्टि से वह क्षेत्र अपने लिए सुनसान था। सहचर के नाम पर थे, छाती में धड़कने वाला दिल या सोच विचार उठाने वाले सिर में अवस्थित मन। ऐसी दशा में लम्बी यात्रा सम्भव है या असम्भव, यह परीक्षा अपनी ली जा रही थी। हृदय ने निश्चय किया जितनी साँस चलनी है उतने दिन अवश्य चलेगी। तब तक कोई मारने वाला नहीं। मस्तिष्क कहता, वृक्ष वनस्पतियों में भी तो जीवन है। उन पर पक्षी रहते हैं। पानी में जलचर मौजूद हैं। जङ्गल में वन्य पशु फिरते हैं। सभी नंगे बदन सभी एकाकी। जब इतने सारे प्राणी इस क्षेत्र में निवास करते हैं तो तुम्हारे लिए सब कुछ सुनसान कैसा? अपने को छोटा मत बनाओ। जब "बसुधैव कुटुम्बकम्" की बात मानते हो तब इतने सारे प्राणियों के रहते, तुम अकेले कैसे? मनुष्यों को ही क्यों प्राणी मानते हो? यह जीव-जन्तु क्या तुम्हारे अपने नहीं? फिर सूनापन कैसा?

हमारी यात्रा चलती रही। साथ-साथ चिन्तन भी चलता रहा। एकाकी रहने में मन पर दबाब पड़ता है। क्योंकि वह सदा से समूह में रहने का अभ्यासी है। एकाकी पन से उसे डर लगता है। अन्धेरा भी डर का एक बड़ा कारण है। मनुष्य दिन भर प्रकाश में रहता है। रात्रि को बत्तियों का प्रकाश जला लेता है। जब नींद आती है तब बिलकुल अन्धेरा होता है। उसमें भी डरने का उतना कारण नहीं जितना कि सुनसान अन्धेरे में होता है।

एकाकीपन में विशेषतया मनुष्य के मस्तिष्क को डर लगता है। योगी को इस डर से निवृत्ति पानी चाहिए। "अभय" को अध्यात्म का अति महत्व-पूर्ण गुण माना गया है। वह छूटे तो फिर उसे गृहस्थ की तरह सरंजाम

जुटाकर —सुरक्षा का प्रबन्ध करते हुए रहना पड़ता है। मन की कच्चाई तनी ही रहती है।

दूसरा सङ्कट हिमालय क्षेत्र के एकाकीपन में यह है कि उस क्षेत्र में अन्य जीवों विशेषतया हिंस्र पशुओं का डर लगता है। कोलाहल रहित क्षेत्र में ही वे विचरण करते हैं। रात्रि ही उनका भोजन तलाशने का समय है। दिन में प्रतिरोध का सामना करने का डर उन्हें भी रहता है।

रात्रि में, एकाकी, अन्धेरे में हिंस्र पशुओं का मुकाबला होना एक सङ्कट है। सङ्कट क्या सीधी मौत से मुठभेड़ है। कोलाहल और भीड़ न होने पर हिंस्र पशु दिन में भी पानी पीने या शिकार तलाशने निकल पड़ते हैं। इन सभी परिस्थितियों का सामना हमें अपनी यात्रा में बराबर करना पड़ा।

यात्रा में जहाँ भी रात्रि बितानी पड़ी, वहाँ काले साँप रेंगते और छोटे अजगर फुफकारते बराबर मिलते रहे। छोटी जाति का सिंह उस क्षेत्र में अधिक होता है। उसमें फुर्ती बबर शेर की तुलना में अधिक होती है। आकार के हिसाब से ताकत उसमें कम होती है। इसलिए छोटे जानवरों पर हाथ चलता है। शाकाहारियों में आक्रमणकारी पहाड़ी रीछ होता है। शिवालिक की पहाड़ियों एवं हिमालय के निचले इलाके में इर्द-गिर्द जङ्गली हाथी भी रहते हैं। इन सभी की प्रकृति यह होती है कि आँखों से आँखें न मिलें, उन्हें छेड़े जाने का भय न हो तो अपने रास्ते भी चले जाते हैं। अन्यथा तनिक भी भय या क्रोध का भाव मन में आने पर वे आक्रमण कर बैठते हैं।

अजगर, सर्प, बड़ी छिपकली (गोह), रीछ, तेन्दुए, चीते, हाथी, इनसे आये दिन यात्रियों को कई-कईबार पाला पड़ता है। समूह को देखकर वे रास्ता बचाकर निकल जाते हैं, पर जब कोई मनुष्य या पशु अकेला सामने आता है तो वे बचते नहीं। सीधे रास्ते चलते जाते हैं। ऐसी दशा में मनुष्य को ही उनके लिए रास्ता छोड़ना पड़ता है। अन्यथा मुठभेड़ होने पर आक्रमण एक प्रकार से निश्चित ही समझना चाहिए।

ऐसा आमना-सामना-मुकाबला दिन और रात में मिलाकर दस से बीस

बार हो जाता था। अकेला आदमी देखकर वे निर्भय होकर चलते थे और रास्ता नहीं छोड़ते थे। उनके लिए हमें ही बचना पड़ता था। यह घटनाक्रम लिखने और पढ़ने में तो सरल है पर व्यवहार में ऐसा वास्ता पड़ना अति कठिन है। कारण कि वे साक्षात मृत्यु के रूप में सामने आते थे, कभी-कभी साथ चलते या पीछे-पीछे चलते थे। शरीर को मौत सबसे डरावनी लगती है। हिंस्र पशु अथवा जिनकी आक्रमणकारी प्रकृति होती है ऐसे जङ्गली नर—नील गाय भी आक्रमणकारी होते हैं। भले ही वे आक्रमण न करें पर डर इतना ही लगता कि साक्षात् मौत की घड़ी आ गई। जब तब कोई वास्ता पड़ तो एक बात भी है। पर प्रायः हर घण्टे एक बार मौत से भेंट होना और हर बार प्राण जाने का डर लगना, अत्यधिक कठिन परिस्थितियों का सामना करने की बात थी। दिल धड़कना आरम्भ होता। जब तक वह धड़कन बन्द न हो पाती, तब तक दूसरी नई मुसीबत सामने आ जाती और फिर नये सिरे से दिल धड़कने लगता। वे लोग एकाकी नहीं होते थे। कई-कई के झुण्ड सामने आ जाते। यदि हमला करते तो एक–एक बोटी नोंच ले जाते एवं कुछ ही क्षणों में अपना अस्तित्व समाप्त हो जाता।

किन्तु यहाँ भी विवेक समेटना पड़ा, साहस संजोना पड़ा। मौत बड़ी होती है पर जीवन से बड़ी नहीं होती। अभय और मैत्री भीतर हो तो हिंसकों की हिंसा भी ठण्डी पड़ जाती है और अपना स्वभाव बदल जाती है। पूरी यात्रा में प्रायः तीन चार सौ की संख्या में ऐसे डरावने मुकाबिले हुए। पर गड़बड़ाने वाले साहस को हर बार सम्भालना पड़ा। मैत्री और निश्चिन्तता की मुद्रा बनानी पड़ी। मृत्यु के सम्बन्ध में सोचना पड़ा कि उसका भी एक समय होता है। यदि यहीं—इसी प्रकार जीवन की इति–श्री होनी है तो फिर उसका डरते हुए क्यों? हँसते हुए ही सामना क्यों न किया जाय? यही विचार उठे तो नहीं पर बल पूर्वक उठाने पड़े। पूरा रास्ता डरावना था। एकाकीपन—अन्धेरे और मृत्यु के दूत मिल-जुलकर डराने

का प्रयत्न करते रहे और वापस लौट चलने की सलाह देते रहे। पर सङ्कल्प शक्ति साथ देती रही और यात्रा आगे बढ़ती रही।

परीक्षा का एक प्रश्न पत्र यह था कि सुनसान का—अकेलेपन का डर लगता है क्या ? कुछ ही दिनों में दिल मजबूत हो गया और उस क्षेत्र में रहने वाले प्राणी अपने लगने लगे। डर न जाने कहाँ चला गया। सूनापन सुहाने लगा मन ने कहा प्रथम प्रश्न पत्र में उत्तीर्ण होने का सिलसिला चल पड़ा। आगे बढ़ने पर असमंजस होता है वह भी अब न रहेगा।

दूसरा प्रश्न पत्र था, शीत ऋतु का। सोचा कि जब मुँह, नाक, आँखें, सिर, कान, हाथ खुले रहते हैं, अभ्यास से इन्हें शीत नहीं लगता तो तुम्हें ही क्यों लगना चाहिए। उत्तरी ध्रुव, नार्वे, फिनलैण्ड में हमेशा शून्य से नीचे तापमान रहता है। वहाँ एस्किमो तथा दूसरी जाति के लोग रहते हैं, तो इधर तो दस बारह फुट की ही ऊँचाई है। यहाँ ठण्ड से बचने के उपाय ढूँढ़े जा सकते हैं। वे उधर के एक निवासी से मालूम भी हो गये। पहाड़ ऊपर ठण्डे रहते हैं पर उनमें जो गुफाएँ पाई जाती हैं वे अपेक्षाकृत गरम होती हैं। कुछ खास किस्म की झाड़ियाँ ऐसी होती हैं जो हरी होने पर भी जल जाती हैं। लांगडा, मार्चा आदि शाकों की पत्तियाँ जङ्गलों में उगी होती हैं, वे कच्ची खाई जा सकती हैं। भोजपत्र के तने पर उठी हुई गाँठों को उबाल लिया जाय तो ऐसी चाय बन जाती है, जिनसे ठण्डक दूर हो सके। पेट में घुटने और सिर लगाकर उकड़ूँ बैठ जाने पर भी ठण्डक कम लगती है। मानने पर ठण्डक अधिक लगती है। बच्चे थोड़े से कपड़ों में कहीं भी भागे-भागे फिरते हैं। उन्हें कोई हैरानी नहीं होती। ठण्ड मानने भर की है। उसमें अनभ्यस्त बूढ़े बीमारों की तो नहीं कहते, अन्यथा जवान आदमी ठण्डक से नहीं मर सकता। बात यह भी समझ में आ गई और इन सब उपायों को अपना लेने पर ठण्डक भी सहन होने लगी। फिर एक और बात है कि—ठण्डक-ठण्डक रटने की अपेक्षा मन में कोई और उत्साह भरा चिन्तन बिठा लिया जाय, तो भी काम चल जाता है। इतनी महत्वपूर्ण

शिक्षाएँ उस क्षेत्र की समस्याओं का सामना करने के हल निकल आये।

बात वन्य पशुओं की—हिंस्र जन्तुओं की फिर रह गई। वे प्रायः रात को ही निकलते हैं, उनकी आँखें चमकती हैं। फिर मनुष्य से सभी डरते हैं, शेर भी। यदि स्वयं उनसे डरा न जाय उन्हें छेड़ा न जाय तो मनुष्य पर आक्रमण नहीं करते, उनके मित्र ही बनकर रहते हैं।

प्रारम्भ में हमें इस प्रकार का डर लगता था। फिर सरकस के सिखाने वालों की बात याद आई। वे उन्हें कितने करतब सिखा लेते हैं। तंजानिया की एक यूरोपियन महिला का वृत्तान्त पढ़ा था "बॉर्न फ्री", जिसका पति वन विभाग का कर्मचारी था। उसकी स्त्री ने पति द्वारा माँ-बाप से बिछुड़े दो शेर के बच्चे पाल रखे थे। और वे जवान हो जाने पर भी गोद में सोते रहते थे। अपने मन में वजनदार निर्भयता या प्रेम भावना हो तो घने जङ्गलों में आनन्द से रहा जा सकता है। वनवासी भील लोग अक्सर उसी क्षेत्र में रहते हैं। उन्हें न डर लगता है और न जोखिम दीखता है। ऐसे-ऐसे उदाहरणों को स्मृति में रखते-रखते निर्भयता आ गई और विचारा कि एक दिन वह आवेगा, जब हम वन में कुटी बनाकर रहेंगे और गाय शेर एक घाट पर पानी पिया करेंगे।

मन कमजोर भी है और मना लिए जाने पर समर्थ भी। हमने उस क्षेत्र में पहुँचकर यात्रा जारी रखी और मन में से भय निकाल दिया। अनुकूल परिस्थिति की अपेक्षा करने के स्थान पर मनःस्थिति को मजबूत बनाने की बात सोची। इस दिशा में मन को ढालते चले गए और प्रतिकूलताएँ जो आरम्भ में बड़ी डरावनी लगती थीं, अब बिल्कुल सरल और स्वाभाविक सी लगने लगीं।

मन की कुटाई पिटाई और ढलाई करते-करते वह बीस दिन की यात्रा में काबू में आ गया। वह क्षेत्र ऐसा लगने लगा मानों हम यहीं पैदा हुए हैं और यहीं मरना है।

गङ्गोत्री तक राहगीरों का बना हुआ भयङ्कर रास्ता है। गोमुख तक के लिए उन दिनों एक पगडण्डी थी। इसके बाद कठिनाई थी। तपोवन काफी

ऊँचाई पर है। रास्ता भी नहीं है। अन्तःप्रेरणा या भाग्य भरोसे चलना पड़ता है। तपोवन पठार चौरस है। फिर पहाड़ियों की एक ऊँची शृंखला है। इसके बाद नन्दन वन आता है। हमें यहीं बुलाया गया था। समय पर पहुँच गये। देखा तो गुरुदेव खड़े थे। प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। हमारी का भी—और उनका भी। वे पहली बार हमारे घर गए थे, इस बार हम उनके यहाँ आए। यह सिलसिला जीवन भर चलता रहे तो ही इस बँधे सूत्र की सार्थकता है।

तीन परीक्षाएँ इस बार होनी थी बिना साथी के काम चलाना-ऋतुओं के प्रकोप की तितीक्षा सहना—हिंस्र पशुओं के साथ रहते हुए विचलित न होना। तीनों में ही अपने को उत्तीर्ण समझा और परीक्षक ने वैसा ही माना।

बात-चीत का सिलसिला तो थोड़ ही समय में पूरा हो गया। "अध्यात्म शक्ति प्राप्त करने के लिए प्रचण्ड मनोबल सम्पादित करना—प्रतिकूलताओं को दबोच कर अनुकूलता में ढाल देना—सिंह व्याघ्र तो क्या मौत से भी न डरना, ऋषि कल्प आत्माओं के लिए तो यह स्थिति नितान्त आवश्यक है। तुम्हें ऐसी ही परिस्थितियों के बीच अपने जीवन का बहुत-सा भाग गुजारना है।"

उस समय की बात समाप्त हो गई। जिस गुफा में उनका निवास था, वहाँ तक ले गए। इशारे में बताये हुए स्थान पर सोने का उपक्रम किया तो वैसा ही किया। इतनी गहरी नींद आई कि नियत क्रम की अपेक्षा दूना तीन गुना समय लग गया हो तो कोई आश्चर्य नहीं। रास्ते की सारी थकान इस प्रकार दूर हो गई, मानों कहीं चलना ही नहीं पड़ा था।

वहीं बहते निर्झर में स्नान किया। सन्ध्या वन्दन भी। जीवन में पहली बार ब्रह्म कमल और देवकन्द देखा। ब्रह्म कमल ऐसा जिसकी सुगन्ध थोड़ी देर में ही नींद कहें या योग निद्रा ला देती है। देवकन्द वह जो जमीन में शकरकन्द की तरह निकलता है। सिंघाड़ जैसे स्वाद का। पका होने पर लगभग पाँच सेर का, जिससे एक सप्ताह तक क्षुधा निवारण का क्रम चल

सकता है। गुरुदेव के यही दो प्रथम प्रत्यक्ष उपहार थे। एक शारीरिक थकान मिटाने के लिए और दूसरा मन में उमङ्ग भरने के लिए।

इसके बाद तपोवन पर दृष्टि दौड़ाई। पूरे पठार पर मखमली फूलदार गलीचा-सा बिछा हुआ था। तब तक भारी बर्फ नहीं पड़ी थी। जब पड़ती है तब यह फूल सभी पककर जमीन पर फैल जाते हैं, अगले वर्ष उगने के लिए।

ऋषि तन्त्र से दुर्गम हिमालय में साक्षात्कार :

नन्दन वन में पहला दिन वहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य को निहारने, उसी में परम सत्ता की झाँकी देखने में निकल गया। पता ही नहीं चला कि कब सूरज ढला और रात्रि आ पहुँची। परोक्ष रूप से निर्देश मिला—समीपस्थ एक निर्धारित गुफा में जाकर सोने की व्यवस्था बनाने का। लग रहा था कि प्रयोजन सोने का नहीं, सुरक्षित स्थान पर पहुँचाने का है ताकि स्थूल शरीर पर शीत का प्रकोप न हो सके। सम्भावना थी कि पुनः रात्रि को गुरुदेव के दर्शन होंगे। ऐसा हुआ भी।

उस रात्रि को गुफा में गुरुदेव सहसा आ पहुँचे। पूर्णिमा थी। चन्द्रमा का सुनहरा प्रकाश समूचे हिमालय पर फैल रहा था। उस दिन ऐसा लगा कि हिमालय सोने का है। दूर-दूर बरफ के टुकड़े तथा बिन्दु बरस रहे थे वे ऐसा अनुभव कराते थे, मानो सोना बरस रहा है। मार्गदर्शक के आ जाने से गर्मी का एक घेरा चारों ओर बन गया। अन्यथा रात्रि के समय इस विकट ठण्ड और हवा के झोंकों में साधारणतया निकलना सम्भव न होता। दुस्साहस करने पर इस वातावरण में शरीर जकड़ या इठ सकता था।

किसी विशेष प्रयोजन के लिए ही यह अहैतुकी कृपा हुई है, यह मैंने पहले ही समझ लिया, इसलिए इस काल में आने का कारण पूछने की आवश्यकता न पड़ी। पीछे-पीछे चल दिया। पैर जमीन से ऊपर उठते हुए चल रहे थे। आज यह जाना कि सिद्धियों में से ऊपर हवा में उड़ने की—अन्तरिक्ष में चलने की क्यों आवश्यकता पड़ती है। उन बर्फीले ऊबड़-खाबड़ हिम खण्डों पर चलना उससे कहीं अधिक कठिन था जितना कि पानी की सतह

पर चलना। आज उन सिद्धियों की अच्छी परिस्थिततों में आवश्यकता भले ही न पड़े। पर उन दिनों हिमालय जैसे विकट क्षेत्रों में आवागमन की कठिनाई को समझने वालों के लिए आवश्यकता निश्चय ही पड़ती होगी।

मैं गुफा में से निकलकर शीत से काँपते हुए स्वर्णिम हिमालय पर अधर ही अधर गुरुदेव के पीछे-पीछे उनकी पूँछ की तरह सटा हुआ चल रहा था। आज की यात्रा का उद्देश्य पुरातन ऋषियों की तपस्थलियों का दिग्दर्शन करना था। स्थूल शरीर सभी ने त्याग दिए थे। पर सूक्ष्म शरीर उनमें से अधिकांश के बने हुए थे। उन्हें भेदकर किन्हीं-किन्हीं के कारण शरीर भी झलक रहे थे। नत-मस्तक और करबद्ध नमन की मुद्रा अनायास ही बन गयी। आज मुझे हिमालय पर सूक्ष्म और कारण शरीरों से निवास करने वाले ऋषियों का दर्शन और परिचय कराया जाना था। मेरे लिए आज की रात्रि जीवन भर के सौभाग्यशाली क्षणों में सबसे अधिक महत्व की बेला थी।

उत्तराखण्ड क्षेत्र की कुछ गुफायें तो जब तब आते समय यात्रा के दौरान देखी थीं, पर देखी वही थीं जो यातायात की दृष्टि में सुलभ थीं। आज जाना कि जितना देखा है, उससे अनदेखा कहीं अधिक है। इनमें जो छोटी थीं, वे तो वन्य-पशुओं के काम आती थीं, पर जो बड़ी थीं, साफ-सुथरी और व्यवस्थित थीं, वे ऋषियों के सूक्ष्म शरीरों के निमित्त थीं। पूर्व अभ्यास के कारण वे अभी भी उनमें यदा-कदा निवास करते हैं।

वे सभी उस दिन ध्यान मुद्रा में थे। गुरुदेव ने बताया कि वे प्रायः सदा इसी स्थिति में रहते हैं। अकारण ध्यान तोड़ते नहीं। मुझे एक-एक का नाम बताया और सूक्ष्म शरीर का दर्शन कराया गया। यही है सम्पदा, विशिष्ठता और विभूति सम्पदा, इस क्षेत्र की।

गुरुदेव के साथ मेरे आगमन की बात उन सभी को पूर्व से ही विदित थी। सो हम दोनों जहाँ भी जिस-जिस समय पहुँचे, उनके नेत्र खुल गये। चेहरों पर हल्की मुस्कान झलकी और सिर उतना ही झुका, मानो वे अभिवादन का प्रत्युत्तर दे रहे हों। वार्तालाप किसी से कुछ नहीं हुआ। सूक्ष्म

शरीर को कुछ कहना होता है, तो वे बैखरी मध्यमा से नहीं, परा और पश्यन्ति वाणी से, कर्ण छिद्रों के माध्यम से नहीं, अन्तःकरण में उठी प्रेरणा के रूप में कहते हैं, पर आज दर्शन मात्र प्रयोजन था। कुछ कहना और सुनना नहीं था। उनकी बिरादरी में एक नया विद्यार्थी भर्ती होने आया, सो उसे जान लेने और जब जैसी सहायता करने की आवश्यकता समझे तब वैसी उपलब्ध करा देने का सूत्र जोड़ना ही उद्देश्य था। सम्भवतः यह उन्हें पहले ही बताया जा चुका होगा कि उनके अधूरे कामों को समय की अनुकूलता के अनुसार पूरा करने के लिए यह स्थूल शरीरधारी बालक अपने ढंग से क्या क्या कुछ करने वाला है एवं अगले दिनों इसकी भूमिका क्या होगी ?

सूक्ष्म शरीर से अन्तःप्रेरणायें उमंगाने और शक्ति धारा प्रदान करने का काम हो सकता है। पर जन साधारण को प्रत्यक्ष परामर्श देना और घटनाक्रमों को घटित करना स्थूल शरीरों का ही काम है। इसलिए दिव्य शक्तियाँ किन्हीं स्थूल शरीरधारियों को भी अपने प्रयोजनों के लिए वाहन बनाती हैं। अभी तक में एक ही मार्गदर्शक का वाहन था, पर अब वे हिमालयवासी अन्य दिव्य आत्मायें भी अपने वाहन का काम ले सकती थीं और तदनुसार प्रेरणा, योजना एवं क्षमता प्रदान करती रह सकती थीं। गुरुदेव इसी भाव वाणी में मेरा परिचय उन सबसे करा रहे थे। वे सभी बिना लोकाचार, शिष्टाचार निबाहे, बिना समय-क्षेप किये एक संकेत में उस अनुरोध की स्वीकृति दे रहे थे। आज रात्रि की दिव्य यात्रा इसी रूप में चलती रही। प्रभात होने से पूर्व ही वे मेरी स्थूल काया को निर्धारित गुफा में छोड़कर अपने स्थान को वापस चले गये।

आज ऋषि लोक का पहली बार दर्शन हुआ। हिमालय के विभिन्न क्षेत्रों—देवालय, सरोवरों, सरिताओं का दर्शन तो यात्रा काल में पहले से भी होता रहा। उस प्रदेश को ऋषि निवास का देवात्मा भी मानते रहे हैं, पर इससे पहले यह विदित न था कि किस ऋषि का किस भूमि से लगाव है। यह आज पहली बार देखा और अन्तिम बार भी। वापस छोड़ते समय मार्गदर्शक ने कह दिया कि इनके साथ अपनी ओर से सम्पर्क साधने का प्रयत्न मत करना। उनके कार्य में बाधा मत डालना। यदि किसी को कुछ

निर्देशन करना होगा तो वैसा स्वयं ही करेंगे। हमारे साथ भी तो तुम्हारा यही अनुबन्ध है कि अपनी ओर से द्वार नहीं खटखटाओगे। जब हमें जिस प्रयोजन के लिए जरूरत पड़ा करेगी, स्वयं ही पहुँचा करेंगे और उसकी पूर्ति के लिए आवश्यक साधन जुटा दिया करेंगे। यही बात आगे से तुम उन ऋषियों के सम्बन्ध में भी समझ सकते हो जिनके कि दर्शन प्रयोजनवश तुम्हें आज कराये गए हैं। इस दर्शन को कौतूहल भर मत मानना वरन् समझना कि हमारा अकेला ही निर्देश तुम्हारे लिए सीमित नहीं रहा। यह महाभाग भी उसी प्रकार अपने सभी प्रयोजन पूरा कराते रहेंगे जो स्थूल शरीर के अभाव में स्वयं नहीं कर सकते। जन सम्पर्क प्रायः तुम्हारे जैसे सत्पात्रों—वाहनों के माध्यम से कराने की ही परम्परा रही है। आगे से तुम इनके निर्देशनों को भी हमारे आदेश की तरह ही शिरोधार्य करना और जो कहा जाय सो करने के लिए जुट पड़ना। मैं स्वीकृति सूचक संकेत के अतिरिक्त और कहता ही क्या ? वे अन्तर्ध्यान हो गए।

भावी रूपरेखा का स्पष्टीकरण :

नन्दन वन प्रवास का अगला दिन और भी विस्मयकारी था। पूर्व रात्रि में गुरुदेव के साथ ऋषिगणों के साक्षात्कार के दृश्य फिल्म की तरह आँखों के समक्ष घूम रहे थे। पुनः गुरुदेव की प्रतीक्षा थी—भावी निर्देशों के लिए। धूप जैसे ही नन्दन वन के मखमली कालीन पर फैलने लगी, ऐसा लगा जैसे स्वर्ग धरती पर उतर आया हो। भाँति-भाँति के रंगीन फूल ठसा-ठस थे और चौरस पठार पर बिखरे हुए थे। दूर से देखने पर लगता था मानो एक गलीचा बिछा हो।

सहसा गुरुदेव का स्थूल शरीर रूप में आगमन हुआ। उन्होंने आवश्यकतानुसार पूर्व रात्रि के प्रतिकूल अब वैसा ही स्थूल शरीर बना लिया था जैसा कि प्रथमबार प्रकाश पुञ्ज के रूप में पूजा घर में अवतरित होकर हमें दर्शन दिया था।

वार्त्तालाप का आरम्भ करते हुए उन्होंने कहा—"हमें तुम्हारे पिछले सभी जन्मों की श्रद्धा और साहसिकता का पता था। अबकी बार यहाँ बुला-

कर तीन परीक्षायें लीं और जाँचा कि बड़े कामों का वजन उठाने लायक मनोभूमि तुम्हारी बनी या नहीं। इस पूरी यात्रा में तुम्हारे साथ रहे हैं और घटनाक्रम तथा उसके साथ उठती प्रतिक्रिया को देखते रहे हैं और भी अधिक निश्चिन्तता हो गयी। यदि स्थिति सुदृढ़ और विश्वस्त न रही होती तो इस क्षेत्र के निवासी सूक्ष्म शरीरधारी ऋषिगण तुम्हारे समक्ष प्रकट न होते और मन की व्यथा न कहते। उनके कथन का प्रयोजन यही था कि जो काम छूटा हुआ है उसे पूरा किया जाय। समर्थ देखकर ही उनने अपने मनोभाव प्रकट किए, अन्यथा दीन, दुर्बल, असमर्थों के सामने इतने बड़े लोग अपना मन खोलते ही कहाँ हैं?"

तुम्हारा समर्पण यदि सच्चा है तो शेष जीवन की कार्य पद्धति बनाये देते हैं। इसे परिपूर्ण निष्ठा के साथ पूरी करना। प्रथम कार्यक्रम तो यही है कि २४ लक्ष्य गायत्री महामन्त्र के २४ पुरश्चरण चौबीस वर्ष में पूरे करो। इससे मजबूती में जो कमी रही होगी सो पूरी हो जायगी। बड़े और भारी काम करने के लिए बड़ी समर्थता चाहिए। उसी के निमित्त यह प्रथम कार्यक्रम सोंपा गया है। इसी के साथ-साथ दो कार्य और भी चलते रहेंगे। एक यह कि अपना अध्ययन जारी रखो। तुम्हें कलम उठानी है। आर्ष ग्रन्थों के अनुवाद प्रकाशन की व्यवस्था करके उसे सर्व साधारण तक पहुँचाना है। इससे देव संस्कृति की लुप्तप्राय कड़ियाँ जुड़ेंगी और भविष्य में विश्व-संस्कृति का ढाँचा खड़ा करने में सहायता मिलेगी। इसके साथ ही जब तक स्थूल शरीर विद्यमान है तब तक मनुष्य में देवत्व का उदय और धरती पर स्वर्ग का अवतरण करने वाला—सर्वसुलभ साहित्य विश्व वसुधा की सभी सम्भव भाषाओं में लिखा जाना है। यह कार्य तुम्हारी प्रथम साधना की शक्ति से सम्बद्ध है। इसमें समय आने पर तुम्हारी सहायता के लिए सुपात्र मनीषी आ जुटेंगे जो तुम्हारा छोड़ा काम पूरा करेंगे।

तीसरा कार्य स्वतन्त्रता संग्राम में एक सिपाही की तरह प्रत्यक्ष एवं पृष्ठभूमि में रहकर लड़ते रहने का है। यह सन् १९४७ तक चलेगा। तब तक तुम्हारा पुरश्चरण भी बहुत कुछ पूरा हो लेगा। यह प्रथम चरण है।

इसकी सिद्धियाँ जन साधारण के सम्मुख प्रकट होंगी। इस समय के लक्षण ऐसे नहीं हैं, जिनसे यह प्रतीत हो कि अँग्रेज भारत को स्वतन्त्रता देकर सहज ही चले जायेंगे। किन्तु यह सफलता तुम्हारा अनुष्ठान पूरा होने के पूर्व ही मिलकर रहेगी। तब तक तुम्हारा ज्ञान इतना हो जायेगा जितना कि युग परिवर्तन और नव-निर्माण के लिए किसी तत्ववेत्ता के पास होना चाहिए।

पुरश्चरणों की समग्र सम्पन्नता तब होती है, जब उसका पूर्णाहुति यज्ञ भी किया जाय। चौबीस लाख पुरश्चरण का गायत्री महायज्ञ इतना बड़ा होना चाहिए, जिसमें २४ लाख मन्त्रों की आहुतियाँ हो सकें एवं तुम्हारा संगठन इस माध्यम से खड़ा हो जाय। यह भी तुम्हें ही करना है। इसमें लाखों रुपये की राशि और लाखों की सहायक जनसंख्या चाहिए। तुम यह मत सोचना कि हम अकेले हैं। पास में धन नहीं है। हम तुम्हारे साथ हैं। साथ ही तुम्हारी उपासना का प्रतिफल भी। इसलिए सन्देह करने की गुन्जायश नहीं है। समय आने पर सब हो जायगा। साथ ही सर्वसाधारण को यह भी विदित हो जायगा कि सच्चे साधक की सच्ची साधना का कितना चमत्कारी प्रतिफल होता है। यह तुम्हारे कार्यक्रम का प्रथम चरण है। अपना कर्तव्य पालन करते रहना। यह मत सोचना कि हमारी शक्ति नगण्य है। तुम्हारी कम सही। पर जब हम दो मिल जाते हैं तब एक और एक मिल-ग्यारह होते हैं और फिर यह तो दैवी सत्ता द्वारा संचालित कार्यक्रम है। इसमें सन्देह कैसा? समय आने पर सारी विधि व्यवस्था सामने आती जायगी। अभी से योजना बनाने और चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। अध्ययन जारी रखो। पुरश्चरण भी करते रहो। स्वतन्त्रता सैनिक का काम करो। अधिक आगे की बात सोचने में, व्यर्थ में मन में उद्विग्नता बढ़ेगी। अभी अपनी मातृभूमि में रहो और वहीं से प्रथम चरण के यह तीनों काम करो।

आगे की बात संकेत रूप में कहे देते हैं। साहित्य प्रकाशन द्वारा स्वाध्याय का और विशाल धर्म संगठन द्वारा सत्संग का—यह दो कार्य मथुरा

रहकर करना पड़ेगा। पुरश्चरण की पूर्णाहुति भी वहीं होगी। प्रेस प्रकाशन भी वहीं से चलेगा। मनुष्य में देवत्व के उदय और धरती पर स्वर्ग के अवतरण की प्रक्रिया सुनियोजित ढंग से वहीं से चलेगी। वह प्रयास एक ऐतिहासिक आन्दोलन होगा जैसा कि अब तक कहीं भी नहीं हुआ।

तीसरा चरण इन सूक्ष्म शरीरधारी ऋषियों की इच्छा पूरी करने का है। ऋषि परम्परा का बीजारोपण तुम्हें करना है। इसका विश्वव्यापी विस्तार अपने ढंग से होता रहेगा। यह कार्य सप्त ऋषियों की तपोभूमि सप्त सरोवर हरिद्वार में रहते हुए करना पड़ेगा। तीनों कार्य तीनों जगह उपयुक्त ढंग से चलते रहेंगे।

अभी संकेत किया है। आगे चलकर समयानुसार इन कार्यों की विस्तृत रूपरेखा हम यहाँ बुलाकर बताते रहेंगे। तीन बार बुलाने के तीन प्रयोजन होंगे।

चौथी बार तुम्हें भी चौथी भूमिका में जाना है और हमारे प्रयोजन का बोझ इस सदी के अन्तिम दशकों में अपने कन्धों पर लेना है। तब सारे विश्व में उलझी हुई विषम समस्याओं के अत्यन्त कठिन और अत्यन्त व्यापक कार्य अपने कन्धे पर लेने होंगे। पूर्व घोषणा करने से कुछ लाभ नहीं। समयानुसार जो आवश्यक होगा, सो विदित भी होता चलेगा और सम्पन्न भी।

इस बार की हमारी हिमालय यात्रा में मन में वह असमंजस बना हुआ था कि हिमालय की गुफाओं में सिद्ध पुरुष रहने और उनके दर्शन मात्र से विभूतियाँ मिलने की जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं। हमें उनका कोई आधार नहीं मिला। वह बात ऐसे ही किम्बदन्ती मालूम पड़ती है।" था तो मन का भीतरी असमंजस। पर गुरुदेव ने उसे बिना कहे ही समझ लिया और कन्धे पर हाथ रखकर पूछा? "तुझे क्या जरूरत पड़ गयी सिद्ध पुरुषों की? ऋषियों के सूक्ष्म शरीरों के दर्शन एवं हमसे मन नहीं भरा।"

अपने मन में अविश्वास जैसी बात! कोई दूसरा खोजने जैसी बात स्वप्न में भी नहीं उठी थी। मात्र बाल कौतूहल मन में था। गुरुदेव ने इसे

अविश्वास मान लिया होगा तो श्रद्धा क्षेत्र में हमारी कुपात्रता मानेंगे। यह विचार मन में आते ही स्तब्ध रह गया।

मन को पढ़ लेने वाले देवात्मा ने हँसते हुए कहा। वे हैं तो सही। पर दो बातें नई हो गई हैं। एक तो सड़कों की–वाहनों की सुविधा होने से यात्री अधिक आने लगे हैं। इससे उनकी साधना में विघ्न पड़ता है। दूसरे यह कि अन्यत्र जाने पर शरीर निर्वाह में असुविधा होती है। इसलिए उनने स्थूल शरीरों का परित्याग कर दिया है और सूक्ष्म शरीर धारण करके रहते हैं। जो किसी को दृष्टिगोचर भी न हो और उसके लिए निर्वाह साधनों की आवश्यकता भी न पड़े। इस कारण उन सभी ने शरीर ही नहीं स्थान भी बदल लिये हैं। स्थान ही नहीं साधना के साथ जुड़े हुए कार्यक्रम भी बदल लिये हैं। जब सब कुछ परिवर्तन हो गया तो दृष्टिगोचर कैसे हों? फिर सत्पात्र साधकों का अभाव हो जाने के कारण वे कुपात्रों को दर्शन देने या उन पर की हुई अनु–कम्पा में अपनी शक्ति गँवाना भी नहीं चाहते। ऐसी दशा में अन्य लोग जो तलाश करते हैं वह मिलना सम्भव नहीं। किसी के लिए भी सम्भव नहीं। तुम्हें अगली बार पुनः हिमालय के सिद्ध पुरुषों की दर्शन झाँकी करा देंगे।"

परब्रह्म के अंशधर देवात्मा सूक्ष्म शरीर में किस प्रकार रहते हैं,इसका प्रथम परिचय हमने अपने मार्गदर्शक के रूप में घर पर ही प्राप्त कर लिया था। उनके हाथों में विधिवत् मेरी नाव सुपुर्द हो गयी थी। फिर भी बाल–बुद्धि अपना काम कर रही थी। हिमालय में अनेकों सिद्ध पुरुषों के निवास की जो बात सुन रखी थी, उस कौतूहल को देखने का जो मन था वह ऋषियों के दर्शन एवं मार्गदर्शक की सान्त्वना से पूरा हो गया था। इस लालसा को पहले अपने अन्दर ही मन के किसी कोने में छिपाए फिरते थे। आज उसके पूरे होने व आगे भी दर्शन होते रहने का आश्वासन मिल गया था। सन्तोष तो पहले भी कम न था, पर अब वह प्रसन्नता और प्रफुल्लता के रूप में और भी अधिक बढ़ गया।

गुरुदेव ने आगे कहा कि आगे हम जब भी बुलावें तब समझना कि

हमने ६ माह या एक वर्ष के लिए बुलाया है। तुम्हारा शरीर इस लायक बन गया है कि इधर की परिस्थितियों में निर्वाह कर सको। इस नये अभ्यास को परिपक्व करने के लिए इस निर्धारित अवधि में एक-एक करके तीन बार और इधर हिमालय में ही रहना चाहिए। तुम्हारे स्थूल शरीर के लिए जिन वस्तुओं की आवश्यकता समझेंगे,हम प्रबन्ध करवा दिया करेंगे। फिर इसकी आवश्यकता इसलिए भी है कि स्थूल से सूक्ष्म में और सूक्ष्म से कारण शरीर में प्रवेश करने के लिए जो तितीक्षा करनी पड़ती है, सो होती चलेगी। शरीर को क्षुधा, पिपासा, शीत, ग्रीष्म, निद्रा, थकान व्यथित करती हैं। इन छह को घर पर रहकर जीतना कठिन है क्योंकि सारी सुविधाएँ वहाँ उपलब्ध रहने से यह प्रयोजन आसानी से पूरे होते हैं और तप-तितीक्षाओं के लिए अवसर ही नहीं मिलता। इसी प्रकार मन पर छाये रहने वाले छँ कषाय-कल्मष भी किसी न किसी घटनाक्रम के साथ घटित होते रहते हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर इन छँ रिपुओं से जूझने के लिए आरण्यकों में रहकर इनसे निपटने का अभ्यास करना पड़ता है। तुम्हें घर रहकर यह अवसर भी न मिल सकेगा। इसलिए अभ्यास के लिए जन संकुल स्थान से अलग रहने से उस आन्तरिक मल्ल युद्ध में भी सरलता होती है। हिमालय में रहकर तुम शारीरिक तितीक्षा और मानसिक तपस्या करना। इस प्रकार तीन बार तीन वर्ष यहाँ आते रहने और शेष वर्षों में जन सम्पर्क में रहने से परीक्षा भी होती चलेगी कि जो अभ्यास हिमालय में रहकर किया था, वह परिपक्व हुआ या नहीं ?

यह कार्यक्रम देवात्मा गुरुदेव ने ही बनाया, पर था मेरा इच्छित। इसे मनोकामना की पूर्ति कहना चाहिए। स्वाध्याय सत्संग और मनन-चिंतन से यह तथ्य भली प्रकार हृदयंगम हो गया था कि दसों इन्द्रिय प्रत्यक्ष और ग्यारहवीं अदृश्य मन इन सबका निग्रह कर लेने पर बिखराव से छुटकारा मिल जाता है और आत्म-संयम का पराक्रम बन पड़ने पर मनुष्य की दुर्बलताएँ समाप्त हो जाती हैं और विभूतियाँ जग पड़ती हैं। सशरीर सिद्ध पुरुष होने का यही राजमार्ग है। इन्द्रिय निग्रह, अर्थ निग्रह, समय निग्रह और विचार निग्रह यह चार संयम हैं। इन्हें साधने वाले महामानव बन जाते हैं और काम, क्रोध,

लोभ, मोह इन चारों में मन को उबार लेने पर लौकिक सिद्धियाँ हस्तगत हो जाती हैं।

मैं तपश्चर्या करना चाहता था। पर करता कैसे? समर्पित को स्वेच्छा आचरण की सुविधा कहाँ? जो मैं चाहता था, वह गुरुदेव के मुख से आदर्श रूप में कहे जाने पर मैं फूला न समाया और उस क्रिया-कृत्य के लिए समय निर्धारित होने की प्रतीक्षा करने लगा।

गुरुदेव बोले—"अब वार्त्ता समाप्त हुई। तुम अब गंगोत्री चले जाओ। वहाँ तुम्हारे निवास, आहार आदि की व्यवस्था हमने कर दी है। भागीरथ शिला—गौरी कुण्ड पर बैठकर अपना साधना क्रम आरम्भ कर दो। एक साल पूरा हो जाय तब अपने घर लौट जाना। हम तुम्हारी देखभाल नियमित रूप से करते रहेंगे।"

गुरुदेव अदृश्य हो गये। हमें उनका दूत गोमुख तक पहुँचा गया। इसके बाद उनके बताये हुए स्थान पर वर्ष के शेष दिन पूरे किये।

समय पूरा होने पर हम वापस लौट पड़े। अबकी बार इधर से लौटते हुए उन कठिनाइयों में से एक भी सामने नहीं आई, जो जाते समय पग-पग पर हैरान कर रही थीं। वे परीक्षाएँ थीं, सो पूरी हो जाने पर लौटते समय कठिनाइयों का सामना करना भी क्यों पड़ता।

हम एक वर्ष बाद घर लौट आए। वजन १८ पौण्ड बढ़ गया। चेहरा लाल और गोल हो गया था। शरीरगति शक्ति काफी बढ़ी हुई थी। हर समय प्रसन्नता छाई रहती थी। लौटने पर लोगों ने गंगा जी का प्रसाद माँगा। सभी को गंगोत्री की रेती में से एक-एक चुटकी दे दी व गोमुख के जल का प्रसाद दे दिया। यही वहाँ से साथ लेकर भी लौटे थे। दीख सकने वाला प्रत्यक्ष प्रसाद यही एक ही था, जो दिया जा सकता था। वस्तुतः यह हमारे जीवन का एक महत्वपूर्ण मोड़ था। यद्यपि इसके बाद भी हिमालय जाने का क्रम बराबर बना रहा एवं गन्तव्य भी वही है, फिर भी गुरुदेव के साथ विश्व व्यवस्था का संचालन करने वाली परोक्ष ऋषि सत्ता का प्रथम दर्शन अन्तःस्थल पर अमिट छाप छोड़ गया। हमें अपने लक्ष्य, भावी जीवन क्रम, जीवन यात्रा

में सहयोगी बनने वाली जागृत प्राणवान आत्माओं का आभास भी इसी यात्रा में हुआ। हिमालय की हमारी पहली यात्रा अनेकों ऐसे अनुभवों की कथा गाथा है जो अन्य अनेकों के लिए प्रेरणाप्रद सिद्ध हो सकती है।

अनगढ़ मन हारा, हम जीते :

अपनी पहली यात्रा में ही सिद्ध पुरुषों—सन्तों के विषय में वस्तु स्थिति का पता चल गया। हम स्वयं जिस भ्रम में थे वह दूर हो गया और दूसरे जो लोग हमारी ही तरह सोचते रहे होंगे उनके भ्रम का भी निराकरण करते रहे अपने साक्षात्कार प्रसंग को याद रखते हुए दुहराया कि अपनी पात्रता पहले से ही अर्जित न करली हो तो उनसे भेंट हो जाना अशक्य है क्योंकि वे सूक्ष्म शरीर में होते हैं और उचित अधिकारी के सामने ही प्रकट होते हैं। यह जानकारियाँ हमें पहले न थीं।

हमारी हिमालय यात्रा का विवरण पूर्व में "सुनसान के सहचर" पुस्तक में प्रकाशित किया गया है। वह विवरण तो लम्बा है पर साराँश थोड़ा ही है। अभावों और आशंकाओं के बीच प्रतिकूलताओं को किस तरह मनोबल के सहारे पार किया जा सकता है, इसका आभास उनमें मिल सकेगा। मन साथ दे तो सर्वसाधारण को संकट दीखने वाले प्रसंग किस प्रकार हँसी मजाक जैसे बन जाते हैं कुछ इसी प्रकार के विवरण उन छपे प्रसंगों में पाठकों को मिल सकते हैं। अध्यात्म मार्ग पर चलने वाले को मन इतना मजबूत तो बनाना ही पड़ता है।

पुस्तक बड़ी है, विवरण भी सुविस्तृत है। पर उसमें बातें थोड़ी सी हैं, साहित्यिक विवेचना ज्यादा है। हिमालय और गंगा तट क्यों साधना के लिए अधिक उपयुक्त हैं इसका कारण हमने उसमें दिया है। एकान्त में सूनेपन का जो भय लगता है, उसमें चिन्तन की दुर्बलता ही कारण है। मन मजबूत हो तो साथियों की तलाश क्यों करनी पड़े? उनके न मिलने पर एकाकीपन का डर क्यों लगे। जंगली पशु पक्षी अकेले रहते हैं। उनके लिए तो हिंस्र पशु-पक्षी भी आक्रमण करने को बैठे रहते हैं। फिर मनुष्य से तो सभी डरते हैं। साथ ही

उसमें इतनी सूझ-बूझ भी होती है कि आत्म-रक्षा कर सके। चिन्तन भय की ओर मुड़े तो इस संसार में सब कुछ डरावना है। यदि साहस साथ दे तो हाथ पैर, आँख मुख और मन, बुद्धि इतनों का निरन्तर साथ रहने पर डरने का क्या कारण हो सकता है? वन्य पशुओं में कुछ ही हिंसक होते हैं। फिर मनुष्य निर्भय रहे, उनके प्रति अन्तः से प्रेम भावना रखें तो खतरे का अवसर आने की कम ही सम्भावना रहती है। राजा हरिश्चन्द्र श्मशान की जलती चिताओं के बीच रहने की मेहतर की नौकरी करते थे। केन्या के मसाई शेरों के बीच ही झोंपड़े बनाकर रहते हैं। वनवासी आदिवासी सर्पों और व्याघ्रों के बीच ही रहते हैं। फिर कोई कारण नहीं कि सूझ-बूझ वाला आदमी वहाँ न रह सके, जहाँ खतरा समझा जा सकता है।

आत्मा परमात्मा के घर में एकाकी आता है। खाना, सोना, चलना भी अकेले ही होता है। भगवान के घर भी अकेले ही जाना पड़ता है। फिर अन्य अवसरों पर भी आपको परिष्कृत और भावुक मन के सहारे उल्लास अनुभव कराता रहे तो इसमें क्या आश्चर्य की बात है। अध्यात्म के प्रतिफल रूप में मन में इतना परिवर्तन तो दृष्टिगोचर होना ही चाहिए। शरीर को जैसे अभ्यास में ढालने का प्रयास किया जाता है, वह वैसा ही ढल जाता है। उत्तरी ध्रुव के ऐस्किमो केवल मछलियों के सहारे जिन्दगी गुजार देते हैं। दुर्गम हिमालय एवं आल्पस् पर्वत के ऊँचे क्षेत्रों में रहने वाले अभावों के बावजूद स्वस्थ लम्बी जिन्दगी जीते हैं। पशु भी घास के सहारे गुजारा कर लेते हैं। मनुष्य भी यदि उपयोगी पत्तियाँ चुनकर अपना आहार निर्धारित कर ले तो अभ्यास न पड़ने पर ही थोड़ी गड़बड़ रहती है। बाद में गाड़ी ढर्रे पर चलने लगती है। ऐसे-ऐसे अनेकों अनुभव हमें उस प्रथम हिमालय यात्रा में हुए और जो मन सर्वसाधारण को कहीं से कहीं खींचे-खींचे फिरता है, वह काबू में आ गया और कुकल्पनाएँ देने के स्थान पर आनन्द एवं उल्लास भरी अनुभूतियाँ अनायास ही देने लगा। संक्षेप में यही है हमारी "सुनसान के सहचर" पुस्तक का सार-संक्षेप। ऋतुओं की प्रतिकूलता से निपटने के लिए भगवान ने उपयुक्त माध्यम रखे हैं। जब इर्द-गिर्द बर्फ पड़ती है तब भी

गुफाओं के भीतर समुचित गर्मी रहती है। गोमुख क्षेत्र की कुछ हरी झाड़ियाँ जलाने से जलने लगती हैं। रात्रि को प्रकाश दिखाने के लिए ऐसी ही एक वनौषधि झिलमिल जगमगाती रहती है। तपोवन और नन्दन वन में एक शकरकंद जैसा अत्यधिक मधुर स्वाद वाला 'देवकन्द' जमीन में पकता है। ऊपर तो वह घास जैसा दिखाई देता है पर भीतर से उसे उखाड़ने पर आकार में इतना बड़ा निकलता है कि कच्चा या भूनकर एक सप्ताह तक का गुजारा चल सकता है। भोज पत्र के तने की मोटी गाँठें होती हैं। उन्हें कूटकर चाय की तरह क्वाथ बना लिया जाय तो पीने पर ठण्ड में भी अच्छा-खासा पसीना आ जाता है। नमक डाल लिया जाय तो ठीक, अन्यथा बिना नमक के भी वह क्वाथ बड़ा स्वादिष्ट लगने लगता है। भोजपत्र का छिलका ऐसा होता है कि उसे बिछाने, ओढ़ने और पहनने के काम में आच्छादन रूप में लिया जा सकता है। यह बातें यहाँ इसलिए लिखनी पड़ रही हैं कि भगवान ने हर ऋतु की असह्यता से निपटने के लिए सारी व्यवस्था रखी है। परेशान तो मनुष्य अपने मन की दुर्बलता से अथवा अभ्यस्त वस्तुओं की निर्भरता से होता है। यदि मनुष्य आत्म-निर्भर रहे तो तीन चौथाई समस्याएं हल हो जाती हैं। एक चौथाई के लिए अन्य विकल्प ढूँढ़े जा सकते हैं और उनके सहारे समय काटने के अभ्यास किये जा सकते हैं। मनुष्य हर स्थिति में अपने को फिट कर सकता है। उसे तब हैरानी होती है, जब, वह यह चाहता है कि अन्य सब लोग उसकी मर्जी के अनुरूप बन जायें, परिस्थितियाँ अपने अनुकूल ढल जायें। यदि अपने को बदल लें तो हर स्थिति से गुजरा और उल्लास युक्त बना रहा जा सकता है।

यह बातें पढ़ी और सुनीं तो पहले भी थीं पर अनुभव में इस वर्ष के अन्तर्गत ही आई जो प्रथम हिमालय यात्रा में व्यवहार में लानी पड़ीं। यह अभ्यास एक अच्छी-खासी तपश्चर्या थी, जिसने अपने ऊपर नियन्त्रण करने का भली प्रकार अभ्यास करा दिया। अब हमें विपरीत परिस्थितियों में भी गुजारा करने से परेशानी का अनुभव नहीं होता था। हर प्रतिकूलता को अनुकूलता की तरह अभ्यास में उतारते देर नहीं लगती।

एकाकी जीवन में काम, क्रोध, लोभ, मोह का कोई अवसर नहीं था। इसलिए उनसे निपटने का कोई झंझट सामने नहीं आया। परीक्षा के रूप में जो भय और प्रलोभन सामने आये उन्हें हँसी में उड़ा दिया गया। यहाँ स्वाभिमान भी काम न कर पाया। सोचा "हम आत्मा हैं। प्रकाश पुंज और समर्थ। गिराने वाले भय और प्रलोभन हमें न तो गिरा सकते हैं न उलटा घसीट सकते हैं।" मन का निश्चय सुदृढ़ देखकर पतन और पराभव के जो भी अवसर आए, वे परास्त होकर वापस लौट गये। एक वर्ष के उस हिमालय निवास में जो ऐसे अवसर आये, उनका उल्लेख करना यहाँ इसलिए उपयुक्त नहीं समझा कि अभी हम जीवित हैं और अपनी चरित्र निष्ठा की ऊँचाई का वर्णन करने में कोई आत्म-श्लाघा की गन्ध सूँघ सकता है। यहाँ तो हमें मात्र इतना ही कहना है कि अध्यात्म पथ के पथिक को आये दिन भय और प्रलोभनों का दबाव सहना पड़ता है। इनसे जूझने के लिए हर पथिक को कमर कसकर तैयार रहना चाहिए। जो इतनी तैयारी न करेगा उसे उसी तरह पछताना पड़ेगा जिस प्रकार सरकस के संचालक और 'रिंग मास्टर' का पद बिना तैयारी किये कोई ऐसे ही सम्भाल ले और पीछे हाथ-पैर तोड़ लेने अथवा जान जोखिम में डालने का उपहास कराये।

उपासना, साधना और आराधना में—"साधना" ही प्रमुख है। उपासना का कर्मकाण्ड कोई नौकरी की तरह भी कर सकता है। आराधना—पुण्य परमार्थ को कहते हैं। जिसने अपने को साध लिया है, उसके लिए और कोई काम करने के लिए बचता ही नहीं। उत्कृष्टता सम्पन्न मन अपने लिए सबसे लाभदायक व्यवसाय-पुण्य परमार्थ ही देखता है। इसी में उसकी अभिरुचि और प्रवीणता बन जाती है। हिमालय के प्रथम वर्ष में हमें आत्म-संयम की—मनो निग्रह की साधना करनी पड़ी। जो कुछ चमत्कार हाथ लगे हैं, उसी के प्रतिफल है। उपासना तो समय काटने का एक व्यवसाय बन गया।

घर चार घण्टे नींद लिया करते थे। यहाँ उसे बढ़ाकर छः घण्टे कर दिया। कारण कि घर पर अनेकों स्तर के अनेक काम रहते थे। पर

यहाँ तो दिन का प्रकाश हुए बिना मानसिक जप के अतिरिक्त और कुछ कर सकना ही सम्भव न था। पहाड़ों की ऊँचाई में प्रकाश देर से आता है और अन्धेरा जल्दी हो जाता है। इसलिए १२ घण्टे के अँधेरे में छः घण्टे सोने के लिए और छः घण्टे उपासना के लिए पर्याप्त होने चाहिए। स्नान का बन्धन वहाँ नहीं रहा। मध्याह्न को ही नहाना और और कपड़े सुखाना सम्भव होता था। इसलिए परिस्थिति के अनुरूप दिनचर्या बनानी पड़ी। दिनचर्या के अनुरूप परिस्थितियाँ तो बन नहीं सकती थीं।

"प्रथम हिमालय यात्रा कैसी सम्पन्न हुई ?" इसके उत्तर में कहा जा सकता है कि परिस्थितियों के अनुरूप मन को ढाल लेने का अभ्यास भली प्रकार कर लिया। इसे यों भी कह सकते हैं कि आधी मंजिल पार कर ली। इस प्रकार प्रथम वर्ष में दबाव तो अत्यधिक सहने पड़े तो भी कच्चा लोहा तेज आग की भट्टी में ऐसा लोहा बन गया जो आगे चलकर किसी भी काम आ सकने के योग्य बन गया।

पिछला जीवन बिल्कुल दूसरे ही ढर्रे में ढला था। सुविधाओं और साधनों के सहारे गाड़ी लुढ़क रही थी। सबकुछ सीधा और सरल लग रहा था। पर हिमालय पहुँचते ही सब कुछ उलट गया। वहाँ की परिस्थितियाँ ऐसी थीं, जिनमें निभ सकना केवल उन्हीं के लिए सम्भव था जो छिड़ी लड़ाई के दिनों में कुछ ही समय की ट्रेनिंग लेकर सीधे मोर्चे पर चले जाते हैं और उस प्रकार के साहस का परिचय देते हैं जिसका इससे पूर्व कभी पाला नहीं पड़ा था।

प्रथम हिमालय यात्रा का प्रत्यक्ष प्रतिफल एक ही रहा कि अनगढ़ मन हार गया और हम जीत गये। प्रत्येक नई असुविधा को देखकर उसने नए बछड़े की तरह हल में चलने से कम आना-कानी नहीं की। किन्तु उसे कहीं भी समर्थन न मिला। असुविधाओं को उसने अनख तो माना और लौट चलने की इच्छा प्रकट की, किन्तु पाला ऐसे किसान से पड़ा था जो मरने-मारने पर उतारू था। आखिर मन को झक मारनी पड़ी और हल में चलने का अपना भाग्य अंगीकार करना पड़ा। यदि जी कच्चा पड़ा होता तो स्थिति वह नहीं

बन पड़ती जो अब बन गयी है । पूरे एक वर्ष नयी-नयी प्रतिकूलतायें अनुभव होती रहीं, बार-बार ऐसे विकल्प उठते रहे जिसका अर्थ होता था कि इतनी कड़ी परीक्षा में पड़ने पर हमारा स्वास्थ्य बिगड़ जायेगा । भविष्य की साँसारिक प्रगति का द्वार बन्द हो जायेगा । इसलिए समूची स्थिति पर पुनर्विचार करना चाहिए ।

एक बार तो मन में ऐसा ही तमोगुणी विचार भी आया, जिसे छिपाना उचित नहीं होगा । वह यह कि जैसा बीसियों ढोंगियों ने हिमालय का नाम लेकर अपनी धर्म ध्वजा फहरा दी है, वैसा ही कुछ करके सिद्ध पुरुष बन जाना चाहिए और उस घोषणा के आधार पर जन्म भर गुलछर्रे उड़ाने चाहिए । ऐसे बीसियों आदमियों की चरित्र गाथा और ऐशो-आराम भरी विडम्बना का हमें आद्योपान्त परिचय है । यह विचार उठा वैसे ही उसे तत्क्षण जूते के नीचे दबा दिया । समझ में आ गया कि मन की परीक्षा ली जा रही है । सोचा कि जब अपनी सामान्य प्रतिभा के बलबूते ऐशो-आराम के आडम्बर खड़े किए जा सकते हैं तो हिमालय को—सिद्ध पुरुषों को—सिद्धियों को—भगवान को—तपश्चर्या को बदनाम करके आडम्बर रचने से क्या फायदा ?

उस प्रथम वर्ष में मार्गदर्शक ऋषि सत्ता के साक्षात्कार ने हमें आमूलचूल बदल दिया अनगढ़ मन के साथ नये परिष्कृत मन का मल्ल-युद्ध होता रहा और यह कहा जा सकता है कि परिणाम स्वरूप हम पूरी विजयश्री लेकर वापस लौटे ।

प्रवास का दूसरा चरण एवं कार्य क्षेत्र का निर्धारण

प्रथम परीक्षा देने के लिए हिमालय बुलाए जाने के आमन्त्रण को प्रायः दस वर्ष बीत गए। फिर बुलाये जाने की आवश्यकता नहीं समझी गयी। उनके दर्शन उसी मुद्रा में होते रहे जैसे कि पहली बार हुए थे। "सब ठीक है" इतने ही शब्द कहकर प्रत्यक्ष सम्पर्क पूरा होता रहा। अन्तरात्मा में उनका समावेश निरन्तर होता रहा। कभी ऐसा अनुभव नहीं हुआ कि हम अकेले हैं। सदा दो साथ रहने जैसी अनुभूति होती रही। इस प्रकार दस वर्ष बीत गए।

स्वतन्त्रता संग्राम चल ही रहा था। इसी बीच ऋतु अनुकूल पाकर पुनः आदेश आया हिमालय पहुँचने का। दूसरे ही दिन चलने की तैयारी कर दी। आदेश की उपेक्षा करना, विलम्ब लगाना हमारे लिए सम्भव न था। जाने की जानकारी घर के सदस्यों को देकर प्रातःकाल ब्राह्म मुहूर्त में चल पड़ने की तैयारी कर दी। सड़क तब भी उत्तर काशी तक ही बनी थी। आगे के लिए निर्माण कार्य आरम्भ हो रहा था।

रास्ता अपना देखा हुआ था। ऋतु उतनी ठण्डी नहीं थी जितनी कि पिछली बार थी। रास्ते पर आने-जाने वाले मिलते रहे। चिट्टियाँ (ठहरने की छोटी धर्मशालाएँ) भी सर्वथा खाली नहीं थीं। इस बार कोई कठिनाई नहीं हुई। सामान भी अपेक्षाकृत साथ में ज्यादा नहीं था। घर जैसी सुविधा तो कहाँ, किन्तु जिन परिस्थितियों में यात्रा करनी पड़ी, वह असह्य नहीं अनभ्यस्थ भर थीं। क्रम यथावत् चलता रहा।

पिछली बार जो तीन परीक्षाएँ ली थीं इस बार इनमें से एक से भी

पाला नहीं पड़ा। जो परीक्षा ली जा चुकी है, उसी को बार-बार लेने की आवश्यकता भी नहीं समझी गई। गंगोत्री तक का रास्ता ऐसा था जिसके लिए किसी से पूछताछ नहीं करनी थी। गंगोत्री से गोमुख के १४ मील ही ऐसे हैं जिसका रास्ता बर्फ पिघलने के बाद हर साल बदल जाता है चट्टानें टूट जाती हैं और इधर से उधर गिर पड़ती हैं। छोटे नाले भी चट्टानों से रास्ता रुक जाने के कारण अपना रास्ता इधर से उधर बदलते रहते हैं। नये वर्ष का रास्ता यों तो उस क्षेत्र से परिचित किसी जानकार को लेकर पूरा करना पड़ता था या फिर अपनी विशेष बुद्धि का सहारा लेकर अनुमान के आधार बढ़ते और रुकावट आ जाने पर लौट कर दूसरा रास्ता खोजने का क्रम चलता रहा। इस प्रकार गोमुख जा पहुँचे।

आगे के लिए गुरुदेव का सन्देशवाहक साथ जाना था। वह भी सूक्ष्म शरीरधारी था। छाया पुरुष यों वीरभद्र स्तर का था। समय-समय पर वे उसी से अनेकों काम लिया करते थे। जितनी बार हमें हिमालय जाना पड़ा तब नन्दन वन एवं और ऊँचाई तक तथा वापस गोमुख पहुँचाने का काम उसी के जिम्मे था। सो उस सहायक की सहायता से हम अपेक्षाकृत कम समय में और अधिक सरलता पूर्वक पहुँच गए। रास्ते भर दोनों ही मौन रहे।

नन्दन वन पहुँचते ही गुरुदेव का सूक्ष्म शरीर—प्रत्यक्ष रूप में सामने विद्यमान था। उसके प्रकट होते ही हमारी भावनाएँ उमड़ पड़ीं। होठ काँपते रहे। नाक गीली होती रही। ऐसा लगता रहा मानों अपने ही शरीर का कोई खोया अंग फिर मिल गया हो और उसके अभाव में जो अपूर्णता रहती हो सो पूर्ण हो गयी हो। उनका सिर पर हाथ रख देना हमारे प्रति अगाध प्रेम के प्रगटीकरण का प्रतीक था। अभिवादन आशीर्वाद का शिष्टाचार इतने से ही पूर्ण हो गया। गुरुदेव ने हमें संकेत किया, ऋषि सत्ता से पुनः मार्गदर्शन लिए जाने के विषय में। हृदय में रोमाँच हो उठा।

सतयुग के प्रायः सभी ऋषि सूक्ष्म शरीरों से उसी दुर्गम हिमालय क्षेत्र में निवास करते आए हैं। जहाँ हमारा प्रथम साक्षात्कार हुआ था। स्थान

नियत करने की दृष्टि से सभी ने अपने-अपने लिए एक-एक गुफा निर्धारित कर ली है। वैसे शरीर चर्चा के लिए उन्हें स्थान नियत करने या साधन सामिग्री जुटाने की कोई आवश्यकता नहीं है। तो भी अपने-अपने निर्धारित क्रिया-कलाप पूरे करने तथा आवश्यकतानुसार परस्पर मिलते-जुलते रहने के लिए सभी ने एक-एक स्थान नियत कर लिए हैं।

पहली यात्रा में हम उन्हें प्रणाम भर कर पाए थे। अब दूसरी यात्रा में गुरुदेव हमें एक-एक करके उनसे अलग-अलग भेंट कराने ले गये। परोक्ष रूप में आशीर्वाद मिला था, अब उनका सन्देश सुनने की बारी थी। दीखने को वे हलके से प्रकाश पुञ्ज की तरह दीखते थे। पर जब अपना सूक्ष्म शरीर सही हो गया तो उन ऋषियों का सतयुग वाला शरीर भी यथावत् दीखने लगा। ऋषियों के शरीर की जैसी संसारी लोग कल्पना किया करते हैं वे लगभग वैसे ही थे। शिष्टाचार पाला गया। उनके चरणों पर अपना मस्तक रख दिया। उन्होंने हाथ का स्पर्श जैसा सिर पर रखा और उतने भर से ही रोमाञ्च हो उठा। आनन्द और उल्लास की उमँगें फूटने लगीं।

बात काम की चली। हर एक ने परा वाणी में कहा कि हम स्थूल शरीर से जो गतिविधियाँ चलाते थे, वे अब पूरी तरह समाप्त हो गई हैं। फूटे हुए खण्डहरों के अवशेष हैं। जब हम लोग दिव्य दृष्टि से उन क्षेत्रों की वर्त्तमान स्थिति देखते हैं। गङ्गोत्री से लेकर हरिद्वार तक का पूरा क्षेत्र ऋषि क्षेत्र था। उस एकान्त में मात्र तपश्चर्या की बिधा पूरी होती थी।

उत्तर काशी में जैसा जमदग्नि का गुरुकुल आरण्यक था जहाँ-तहाँ वैसे अनेकों ऋषि आश्रम संव्याप्त थे। शेष ऋषि अपने-अपने हिस्से की शोध तपश्चर्याएँ करने में संलग्न रहते थे। देवताओं के स्थान यहाँ थे, जहाँ आज-कल हम लोग अब रहते हैं। हिमयुग के उपरान्त न केवल स्थान ही बदल गये वरन् गतिविधियाँ बदलीं तो क्या, पूरी तरह समाप्त ही हो गई, उनके चिह्न भर शेष रह गए हैं।

उत्तराखण्ड में जहाँ-तहाँ देवी देवताओं के मन्दिर तो बन गये हैं ताकि

उन पर धनराशि चढ़ती रहे और पुजारियों का गुजारा होता चले। पर इस बात को न कोई पूछने वाला है न बताने वाला कि ऋषि कौन थे? कहाँ थे? क्या करते थे? उसका कोई चिह्न भी अब बाकी नहीं रहा। हम लोगों की दृष्टि में ऋषि परम्परा की तो अब एक प्रकार से प्रलय ही हो गई।

लगभग यही बात उन बीसियों ऋषिओं की ओर से कही गई जिनसे हमारी भेंट कराई गई। विदाई देते समय सभी आँखें डबडबाई सी दीखीं। लगा कि सभी व्यथित हैं। सभी का मन उदास और भारी है। पर हम क्या कहते? इतने ऋषि मिलकर जितना भार उठाते थे, उसे उठाने की अपनी सामर्थ्य भी तो नहीं है। उन सबका मन भारी देखकर अपना चित्त भी द्रवित हो गया। सोचते रहे। भगवान ने किसी लायक हमें बनाया होता तो इन देव पुरुषों को इतना व्यथित देखते हुए चुप्पी साधकर ऐसे ही वापस न लौट जाते। स्तब्धता अपने ऊपर भी छा गई और आँखें डबडबाने लगीं—प्रवाहित होने लगीं। इतने समर्थ ऋषि—इतने असहाय—इतने दुःखी–यह उनकी वेदना हमें बिच्छू के डंक की तरह पीड़ा देने लगी।

गुरुदेव की आत्मा और हमारी आत्मा साथ-साथ चल रही थी। दोनों एक दूसरे को देख रहे थे। साथ में उनके चेहरे पर भी उदासी छाई हुई थी। हे भगवान, कैसा विषम समय आया कि किसी ऋषि का कोई उत्तराधिकारी नहीं उपजा। सबका वंश नाश हो गया। ऋषि प्रवृत्तियों में से एक भी सजीव नहीं दीखती। करोड़ों की संख्या में ब्राह्मण हैं और लाखों की संख्या में सन्त। पर उनमें से दस-बीस भी जीवित रहे होते तो गाँधी और बुद्ध की तरह गजब दिखाकर रख देते। पर अब क्या हो? कौन करें? किस बलबूते पर करें।

राजकुमारी की आँखों से आँसू टपकने पर और इतना कहने पर कि "को वेदान् उद्धरस्मसि ?" अर्थात्—"वेदों का उद्धार कौन करेगा ?" इसके उत्तर में कुमारिल भट्ट ने कहा था कि—"अभी यह कुमारिल भूतल पर है। इस प्रकार विलाप न करो।" तब एक कुमारिल भट्ट जीवित था। उसने जो कहा था सो कर दिखाया। पर आज तो कोई कहीं न ब्राह्मण है, न

सन्त। ऋषियों की बात तो बहुत आगे की है। आज तो छद्म वेश धारी ही चित्र-विचित्र रूप बनाये रंगे सियारों की तरह पूरे वन प्रदेश में हुँआ-हुँआ-करते फिर रहे हैं।

दूसरे दिन लौटने पर हमारे मन में इस प्रकार के विचार दिन भर उठते रहे। जिस गुफा में निवास था, दिन भर यही चिन्तन चलता रहा। लेकिन गुरुदेव उन्हें पूरी तरह पढ़ रहे थे, मेरी कसक उन्हें भी दुःख दे रही थी।

उनने कहा—"फिर ऐसा करो ! अब की बार उन सबसे मिलने फिर से चलते हैं। कहना—आप लोग कहें तो उसका बीजारोपण तो मैं कर सकता हूँ। खाद पानी आप देंगे तो फसल उग पड़ेगी। अन्यथा प्रयास करने से अपना मन तो हलका होगा ही।"

"साथ में यह भी पूछना कि शुभारम्भ किस प्रकार किया जाय इसकी रूपरेखा बतावें। मैं कुछ न कुछ अवश्य करूँगा। आप लोगों का अनुग्रह बरसेगा तो इस सूखे श्मशान में हरीतिमा उगेगी।"

गुरुदेव के आदेश पर तो मैं यह भी कह सकता था कि जलती आग में जल मरूँगा। जो होना होगा, सो होता रहेगा। प्रतिज्ञा करने और उसे निभाने में प्राण की साक्षी देकर प्रण तो किया ही जा सकता है" यह विचार मन में उठ रहे थे। गुरुदेव उन्हें पढ़ रहे थे। अब की बार मैंने देखा उनका चेहरा ब्रह्म कमल जैसा खिल गया।

दोनों स्तब्ध थे और प्रसन्न भी। पीछे लौट चलने और उन सभी ऋषियों से दुबारा मिलने का निश्चय हुआ जिनसे कि अभी-अभी विगत रात्रि ही मिलकर आये थे। दुबारा हम लोगों को वापस आया हुआ देखकर उनमें से प्रत्येक बारी-बारी से प्रसन्न होता गया और आश्चर्यान्वित भी।

मैं तो हाथ जोड़े सिर नवाये मन्त्र-मुग्ध की तरह खड़ा रहा। गुरुदेव ने मेरी कामना, इच्छा और उमङ्ग उन्हें परोक्षतः परावाणी में कह सुनाई। और कहा—"यह निर्जीव नहीं है। जो कहता है उसे करेगा भी। आप यह

बताइए कि आपका जो कार्य छूटा हुआ है, उसका नये सिरे से बीजारोपण किस तरह हो। खाद पानी आप—हम लोग लगाते रहेंगे तो इसका उठाया हुआ कदम खाली नहीं जायेगा।

इसके बाद उनने गायत्री पुरश्चरण की पूर्ति पर मथुरा में होने वाले सहस्रकुण्डी पूर्णाहुति यज्ञ में इसी छाया रूप में पधारने का आमन्त्रण दिया और कहा यह बन्दर तो है, पर है हनुमान। यह रीछ तो है, पर है जामबन्त। यह गिद्ध तो है, पर है जटायु। आप इसे निर्देश दीजिए और आशा कीजिए कि जो छूट गया है, जो टूट गया है, वह फिर से विनिर्मित होगा और अंकुर वृक्ष बनेगा। हम लोग निराश क्यों हों ? इससे आशा क्यों न बाँधें, जब कि यह गत तीन जन्मों में दिये गए दायित्वों को निष्ठापूर्वक निभाता रहा है ?

चर्चा एक से चल रही थी पर निमन्त्रण पहुँचते एक क्षण लगा और वे सभी एक-एक करके एकत्रित हो गये। निराशा गई, आशा बँधी और आगे का कार्यक्रम बना कि जो हम सब करते रहे हैं, उसका बीज एक खेत में बोया जाय और पौधशाला में एक पौध तैयार की जाय उसके पौधे सर्वत्र लगेंगे और उद्यान लहलहाने लगेगा।

यह शान्ति—कुन्ज बनाने की योजना थी, जो हमें मथुरा के निर्धारित निवास के बाद पूरी करनी थी। गायत्री नगर बसने और ब्रह्मवर्चस् शोध संस्थान का ढाँचा खड़ा किये जाने की योजना भी विस्तार से समझाई गयी। पूरे ध्यान से उसका एक-एक अक्षर हृदय पटल पर लिख लिया और निश्चय किया कि २४ लक्ष्य का पुरश्चरण पूरा होते ही इस कार्यक्रम की रूपरेखा बनेगी और चलेगी। निश्चय ही—अवश्य ही और जिसे गुरुदेव का संरक्षण प्राप्त हो वह असफल रहे ऐसा हो ही नहीं सकता।

एक दिन और रुका। उसमें गुरुदेव ने पुरश्चरण की पूर्णाहुति का स्वरूप विस्तार से समझाया एवं कहा कि "पिछले वर्षों की स्थिति और घटनाक्रम को हम बारीकी से देखते रहे हैं और उसमें जहाँ कुछ अनुपयुक्त जँचा है, उसे ठीक करते रहे हैं। अब आगे क्या करना है उसी का स्वरूप समझाने के लिए

इस बार बुलाया गया है। पुरश्चरण पूरा होने में अब बहुत समय नहीं रहा है। जो रहा है उसे मथुरा जाकर पूरा करना चाहिए। अब तुम्हारे जीवन का दूसरा चरण मथुरा से आरम्भ होगा।

प्रयाग के बाद मथुरा ही देश का मध्य केन्द्र है। आवागमन की दृष्टि से वही सुविधाजनक भी है। स्वराज्य हो जाने के बाद तुम्हारा राजनैतिक उत्तरदायित्व तो पूरा हो जायगा, पर वह कार्य अभी पूरा नहीं होगा। राजनैतिक क्रान्ति तो होगी, आर्थिक क्रान्ति तथा उससे सम्बन्धित कार्य भी सरकार करेगी। किन्तु इसके बाद तीन क्रान्तियाँ और शेष हैं—जिन्हें धर्म तन्त्र के माध्यम से ही पूरा किया जाना है। उनके बिना पूर्णता न हो सकेगी। देश इसलिए पराधीन या जर्जर नहीं हुआ था कि यहाँ शूरवीर नहीं थे। आक्रमणकारियों को परास्त नहीं कर सकते थे। भीतरी दुर्बलताओंने पतन-पराभव के गर्त में धकेला। दूसरों ने तो उस दुर्बलता का लाभ भर उठाया।

नैतिक क्रान्ति—बौद्धिक क्रान्ति और सामाजिक क्रान्ति सम्पन्न की जानी है। इसके लिए उपयुक्त व्यक्तियों का संग्रह करना और जो करना है उससे सम्बन्धित विचारों को व्यक्त करना अभी से आवश्यक है। इसलिए तुम अपना घर-गाँव छोड़कर मथुरा जाने की तैयारी करो। वहाँ एक छोटा घर लेकर एक मासिक पत्रिका आरम्भ करो। साथ ही तीनों क्रान्तियों के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी देने का प्रकाशन भी। अभी तुम से इतना ही काम बन पड़ेगा। थोड़े ही दिन उपरान्त तुम्हें दुर्वासा ऋषि की तपःस्थली में मथुरा के समीप एक भव्य गायत्री मन्दिर बनाना है। सह कर्मियों के आवागमन, निवास, ठहरने आदि के लिये। इसके उपरान्त २४ महापुरश्चरण के पूरे हो जाने की पूर्णाहुति स्वरूप एक महायज्ञ करना है। अनुष्ठानों की परम्परा जप के साथ यज्ञ करने की है। तुम्हारे २४ लक्ष्य के २४ अनुष्ठान पूरे होने जा रहे हैं। इसके लिए एक सहस्र कुण्डों की यज्ञशाला में—एक हजार मन्त्रिकों द्वारा २४ लाख आहुतियों का यज्ञ आयोजन किया जाना है। उसी अवसर पर ऐसा विशालकाय संगठन खड़ा हो जायगा। जिसके

द्वारा तत्काल धर्मतन्त्र से जन जागृति का कार्य प्रारम्भ किया जा सके। यह अनुष्ठान की पूर्ति का प्रथम चरण है। लगभग २५ वर्षों में इस दायित्व की पूर्ति के उपरान्त तुम्हें सप्त सरोवर हरिद्वार जाना है। वहाँ रहकर वह कार्य पूरा करना है जिसके लिए ऋषियों की विस्मृत परम्पराओं को पुनर्जागृत करने हेतु तुमने स्वीकृति सूचक सम्मति दी थी।"

मथुरा की कार्य शैली, आदि से अन्त तक किस प्रकार सम्पन्न की जानी है, इसकी एक सुविस्तृत रूपरेखा उन्होंने आदि से अन्त तक समझायी। इसी बीच आर्ष साहित्य के अनुवाद, प्रकाशन, प्रचार की तथा गायत्री परिवार के संगठन और उसके सदस्यों को काम सौंपने की रूप रेखा उन्होंने बतादी।

जो आदेश हो रहा है, उसमें किसी प्रकार की त्रुटि नहीं रहने दी जायगी। यह मैंने प्रथम मिलन की तरह उन्हें आश्वासन दे दिया। पर एक ही सन्देह रहा कि इतने विशालकाय कार्य के लिए जो धन शक्ति और जन शक्ति की आवश्यकता पड़ेगी, उसकी पूर्ति कहाँ से होगी?

मन को पढ़ रहे गुरुदेव हँस पड़े। "इन साधनों के लिए चिन्ता की आवश्यकता नहीं है। जो तुम्हारे पास है, उसे बोना आरम्भ करो। इसकी फसल सौ गुनी होकर पक जायेगी और जो काम सौंपे गये हैं, उन सभी के पूरा हो जाने का सुयोग बन जायेगा। क्या हमारे पास है, उसे कैसे, कहाँ—बोया जाना है और उसकी फसल कब, किस प्रकार पकेगी, यह जानकारी भी उनने दे दी।

जो उन्होंने कहा—उसकी हर बात गाँठ बाँध ली। भूलने का तो प्रश्न ही नहीं था। भूला तब जाता है, जब उपेक्षा होती है। सेनापति का आदेश सैनिक कहाँ भूलता है? हमारे लिए भी अवज्ञा एवं उपेक्षा करने का कोई प्रश्न नहीं।

वार्त्ता समाप्त हो गई। इस बार छै महीने ही हिमालय रुकने का आदेश हुआ। जहाँ रुकना था, वहाँ की सारी व्यवस्था बना दी गयी थी।

गुरुदेव के वीरभद्र ने हमें गोमुख पहुँचा दिया। वहाँ से हम निर्देशित स्थान पर जा पहुँचे और छै महीने पूरे कर लिए। लौटकर घर आये थे तो स्वास्थ्य पहले से भी अच्छा था। प्रसन्नता और गम्भीरता बढ़ गई थी, जो प्रतिभा के रूप में चेहरे के इर्द-गिर्द छाई हुई थी। लौटने पर जिनने भी देखा, उन सभी ने कहा—"लगता है, हिमालय में कहीं बड़ी सुख सुविधा का स्थान है। तुम वहीं जाते हो और स्वास्थ्य सम्वर्धन करके लौटते हो।" हमने हँसने के अतिरिक्त और कोई भी उत्तर नहीं दिया।

अब मथुरा जाने की तैयारी थी। एक बार दर्शन की दृष्टि से मथुरा देखा तो था पर वहाँ किसी से परिचय न था। चलकर पहुँचा गया और अखण्ड-ज्योति" प्रकाशन के लायक एक छोटा मकान किराये पर लेने का निश्चय किया।

मकानों की उन दिनों भी किल्लत थी। बहुत ढूँढ़ने के बाद भी आवश्यकता के अनुरूप मिल नहीं रहा था। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते घीया मण्डी जा निकले। एक मकान खाली मिला। बहुत दिन से खाली पड़ा था। मालकिन एक बुढ़िया थी। किराया पूछा तो उसने पन्द्रह रुपया बताया और चाबी हाथ में थमादी। भीतर घुसकर देखा तो उसमें छोटे-बड़े कुल पन्द्रह कमरे थे। था तो जीर्ण-शीर्ण, पर एक रुपया कमरे के हिसाब से वह मँहगा किसी दृष्टि से न था। हमारे लिए काम चलाऊ भी था। पसन्द आ गया और एक महीने का किराया पेशगी पन्द्रह रुपया हाथ पर रख दिये। बुढ़िया बहुत प्रसन्न थी।

घर जाकर सभी सामान ले आये और पत्नी बच्चों समेत उसमें रहने लगे। सारे मुहल्ले में काना-फूसी होते सुनी। मानों हमारा वहाँ आना कोई आश्चर्य का विषय हो। पूछा तो लोगों ने बताया कि—"यह भुतहा मकान है। इसमें जो भी आया, जान गँवाकर गया। कोई टिका नहीं। हमने तो कितनों को ही आते और धन जन की भारी हानि उठाकर भागते हुए देखा। आप बाहर के नये आदमी हैं इसलिए धोखे में आ गए। अब बात आपके कान में डाल दी। यदि ऐसा न होता तो तीन मंजिला १५ कमरों का मकान

वर्षों से क्या खाली पड़ा रहता। आप समझ-बूझकर भी उसमें रह रहे हैं। नुकसान उठाएँगे।"

इतना सस्ता और इतना उपयोगी मकान अन्यत्र मिल नहीं रहा था। हमने तो उसी में रहने का निश्चय किया। भुतहा होने की बात सच थी। रात भर छत के ऊपर धमा-चौकड़ी मचती रहती। ठठाने की, रोने की, लड़ने की आवाजें आतीं। उस मकान में बिजली तो थी नहीं। लालटेन जलाकर ऊपर गये तो कुछ स्त्री-पुरुष आकृतियाँ आगे कुछ पीछे भागते दीखे। पर साक्षात भेंट नहीं हुई। न उन्होंने हमें कोई नुकसान ही पहूँचाया। ऐसा घटना क्रम कोई दस दिन तक लगातार चलता रहा।

एक दिन हम रात को १ बजे के करीब ऊपर गये। लालटेन हाथ में थी। भागने वालों से रुकने के लिए कहा। वे रुक गये। हमने कहा—"आप बहुत दिन से इस घर में रहते आए हैं। ऐसा करें कि ऊपर की मंजिल के सात कमरों में आप लोग गुजारा करें। नीचे के आठ कमरों में हमारा काम चल जाएगा। इस प्रकार हम सब राजी-नामा करके रहें। न आप लोग परेशान हों ओर न हमें हैरान होना पड़े।" किसी ने उत्तर नहीं दिया। खड़े जरूर रहे। दूसरे दिन से पूरा घटनाक्रम बदल गया। हमने अपनी ओर से समझौते का पालन किया और वे सभी उस बात पर सहमत हो गये। छत पर कभी-कभी चलने-फिरने जैसी आवाज तो सुनी गई, पर ऐसा उपद्रव न हुआ जिससे हमारी नींद हराम होती, बच्चे डरते या काम में विघ्न पड़ता। घर में जो टूट-फूट थी, अपने पैसों से संभलवा ली। "अखण्ड-ज्योति" पत्रिका पुनः इसी घर से प्रकाशित होने लगी। परिजनों से पत्र व्यवहार यहीं आरम्भ किया। पहले वर्ष में ही दो हजार के करीब ग्राहक बन गये। ग्राहकों से पत्र व्यवहार करते और वार्त्तालाप के लिए बुलाते रहे। अध्ययन का क्रम तो रास्ता चलने के समय में चलता रहा। रोज टहलने जाते थे उसी समय में दो घण्टा नित्य पढ़ लेते। अनुष्ठान भी अपनी छोटी-सी पूजा की कोठरी में चलता रहता। काँग्रेस के काम के स्थान पर लेखन कार्य को अब गति दे

दी। अखण्ड ज्योति पत्रिका, आर्ष साहित्य का अनुवाद, धर्म तन्त्र से लोक-शिक्षण की रूपरेखा, इन्हीं बिषयों पर लेखनी चल पड़ी - पत्रिका अपनी ही हैण्डप्रेस से छापते, शेष साहित्य दूसरी प्रेसों से छपा लेते। इस प्रकार ढर्रा तो चला। पर वह चिन्ता बराबर बनी रही कि अगले दिनों मथुरा में रहकर जो प्रकाशन का बड़ा काम करना है, प्रेस लगाना है, गायत्री तपोभूमि का भव्य भवन बनाना है, यज्ञ इतने विशाल रूप में करना है जितना महाभारत के उपरान्त दूसरा नहीं हुआ इन सबके लिए धन शक्ति और जन शक्ति कैसे जुटे ? उसके लिए गुरुदेव का वही सन्देश आँखों के सामने आ खड़ा होता था कि "बोओ और काटो"। उसे अब समाज रूपी खेत में कार्यान्वित करना था। सच्चे अर्थों में अपरिग्रही ब्राह्मण बनना था। इसी कार्यक्रम की रूपरेखा मस्तिष्क में घूमने लगी।

विचार क्रांति का बीजारोपण, पुनः हिमालय आमंत्रण

मथुरा से ही उस विचार क्रान्ति अभियान ने जन्म लिया जिसके माध्यम से आज करोड़ों व्यक्तियों के मन-मस्तिष्कों को उलटने का संकल्प पूरा कर दिखाने का हमारा दावा आज सत्य होता दिखाई देता है। सहस्र कुण्डीय यज्ञ तो पूर्वजन्म से जुड़े उन परिजनों के समागम का एक माध्यम था, जिन्हें भावी जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी थी। इस यज्ञ में एक लाख से भी अधिक लोगों ने समाज से, परिवार से एवं अपने अन्दर से बुराइयों को निकाल फेंकने की प्रतिज्ञाएँ लीं। यह यज्ञ नरमेध यज्ञ था। इनमें हमने समाज के लिए समर्पित लोकसेवियों की माँग की एवं समयानुसार हमें वे सभी सहायक उपलब्ध होते चले गए। यह सारा खेल उस अदृश्य बाजीगर द्वारा सम्पन्न होता ही हम मानते आये हैं, जिसने हमें माध्यम बनाकर समग्र परिवर्तन का ढाँचा खड़ा कर दिखाया।

मथुरा में ही नैतिक, बौद्धिक एवं सामाजिक क्रान्ति के लिए गाँव-गाँव आलोक वितरण करने एवं घर-घर अलख जगाने के लिए सर्वत्र गायत्री यज्ञ समेत युग निर्माण सम्मेलन के आयोजनों की एक व्यापक योजना बनाई गई। मथुरा के सहस्र कुण्डी यज्ञ के अवसर पर जो प्राणवान व्यक्ति आए थे उन्होंने अपने यहाँ एक शाखा संगठन खड़ा करने और एक ऐसा ही यज्ञ आयोजन का दायित्व अपने कन्धों पर लिया ये कहें कि उस दिव्य वातावरण में अन्तः-प्रेरणा ने उन्हें वह दायित्व सौंपा ताकि हर व्यक्ति न्यूनतम एक हजार विचारशील व्यक्तियों को अपने समीपवर्ती क्षेत्र में से ढूँढ़कर अपना सहयोगी बनाए। आयोजन चार-चार दिन के रखे गए। इनमें तीन दिन तीन क्रान्तियों की

विस्तृत रूपरेखा और कार्य पद्धति समझाने वाले संगीत और प्रवचन रखे गये। अन्तिम चौथे दिन यज्ञाग्नि के सम्मुख उन लोगों से व्रत धारण करने को कहा गया जो अवांछनीयता को छोड़ने और उचित परम्पराओं को अपनाने के लिए तैयार थे।

ऐसे आयोजन जहाँ-जहाँ भी हुए, बहुत ही सफल रहे इनके माध्यम से प्रायः एक करोड़ व्यक्तियों ने मिशन की विचारधारा को सुना एवं लाखों व्यक्ति ऐसे थे जिनने अनैतिकताओं, अन्ध-विश्वासों एवं कुरीतियों के परित्याग की प्रतिज्ञायें लीं। इन आयोजनों में से अधिकांश के बिना दहेज और धूमधाम के साथ विवाह हुए। मथुरा में एक और सौ कुण्डी यज्ञ में १०० आदर्श विवाह कराये गए। तब से ये प्रचलन बराबर चलते आ रहे हैं और हर वर्ष इस प्रकार आन्दोलन से अनेकों व्यक्ति लाभ उठाते रहे हैं।

सहस्र कुण्डीय यज्ञ से सम्बन्धित महत्वपूर्ण प्रसंगों से जुड़े अनेकानेक रहस्यमय घटनाक्रमों का विवरण बताना अभी जनहित में उपयुक्त न होगा। इस काया को छोड़ने के बाद ही वह रहस्योद्‌घाटन हो, ऐसा प्रतिबन्ध हमारे मार्गदर्शक का है, सो हमने उसे दबी कलम से ही लिखा है। इस महान यज्ञ से हमें प्रत्यक्ष रूप से काफी कुछ मिला। एक बहुत बड़ा संगठन रातों रात गायत्री परिवार के रूप में खड़ा हो गया। युग निर्माण योजना के विचार क्रान्ति अभियान एवं धर्मतन्त्र से लोक शिक्षण के रूप में उसकी भावी भूमिका भी बन गयी। जिन-जिन स्थानों से आये व्यक्तियों ने अपने यहाँ शाखा स्थापित करने के संकल्प लिए, लगभग वहीं दो दशक बाद हमारे प्रज्ञा संस्थान एवं स्वाध्याय मण्डल विनिर्मित हुए। जिन स्थायी कार्यकर्त्ताओं ने हमारे मथुरा से आने के बाद प्रेस प्रकाशन, संगठन-प्रचार का दायित्व अपने कन्धों पर लिया, वे इसी महायज्ञ से उभरकर आये थे। सम्प्रति शान्ति कुन्ज में स्थायी रूप से कार्यरत बहुसंख्य स्वयं सेवकों की पृष्ठभूमि में इस महायज्ञ अथवा इसके बाद देश भर में हुए आयोजनों की प्रमुख भूमिका रही है।

इससे हमारी स्वयं की संगठन सामर्थ्य विकसित हुई। हमने गायत्री तपोभूमि के सीमित परिकर में ही एक सप्ताह, नौ दिन एवं एक-एक माह के

कई शिविर आयोजित किए। आत्मोन्नति के लिए पंचकोशी साधना शिविर, स्वास्थ्य सम्वर्धन हेतु कायाकल्प सत्र एवं संगठन विस्तार हेतु परामर्श एवं जीवन साधना सत्र उन कुछ प्रमुख आयोजनों में से हैं, जो हमने सहस्र एवं शतकुण्डी यज्ञ के बाद मथुरा में मार्गदर्शक के निर्देशानुसार सम्पन्न किए। गायत्री तपोभूमि में आने वाले परिजनों से जो हमें प्यार मिला, परस्पर आत्मीयता की भावना जो विकसित हुई, उसी ने एक विशाल गायत्री परिवार को जन्म दिया। यह वही गायत्री परिवार है जिसका हर सदस्य हमें पिता के रूप में—उँगली पकड़ कर चलाने वाले मार्गदर्शक के रूप में, घर-परिवार-मन की समस्याओं को सुलझाने वाले चिकित्सक के रूप में देखता आया है।

इसी स्नेह, सद्भाव के नाते हमें भी उनके यहाँ जाना पड़ा, जो हमारे यहाँ आये थे। कई स्थानों पर छोटे-छोटे यज्ञायोजन थे, कहीं सम्मेलन तो कहीं प्रबुद्ध समुदाय के बीच तर्क, तथ्य, प्रतिपादनों के आधार पर गोष्ठी आयोजन। हमने जब मथुरा छोड़कर हरिद्वार आने का निश्चय किया तो लगभग दो वर्ष तक पूरे भारत का दौरा करना पड़ा। पाँच स्थानों पर तो उतने ही बड़े सहस्र कुण्डी यज्ञों का आयोजन था, जितना बड़ा मथुरा का सहस्र कुण्डी यज्ञ था। ये थे टाटानगर, महासमुन्द, बहराइच, भीलवाड़ा एवं पोरबन्दर। एक दिन में तीन-तीन स्थान पर रुकते हुए हजारों मील का दौरा अपने अज्ञातवास पर जाने के पूर्व कर डाला। इस दौरे से हमारे हाथ लगे समर्पित समयदानी कार्यकर्त्ता। ऐसे अगणित व्यक्ति हमारे सम्पर्क में आये, जो पूर्व जन्म में ऋषि जीवन जी चुके थे। उनकी समस्त सामर्थ्य को पहचानकर हमने उन्हें परिवार से जोड़ा और इस प्रकार पारिवारिक सूत्रों से बँधा एक विशाल संगठन बनकर खड़ा हो गया।

मार्गदर्शक का आदेश वर्षों पूर्व मिल चुका था कि हमें छः माह के प्रवास के लिए पुनः हिमालय जाना होगा पर पुनः मथुरा न लौटकर हमेशा के लिए वहाँ से मोह तोड़ते हुए हरिद्वार सप्त सरोवर में विश्वविद्यालय की तपस्थली में ऋषि परम्परा की स्थापना करनी होगी। अपना सारा दायित्व

हमने क्रमशः धर्मपत्नी के कन्धों पर सौंपना काफी पूर्व से आरम्भ कर दिया था। वे पिछले तीन में से दो जन्मों में हमारी जीगन संगिनी बनकर रही ही थीं। इस जन्म में भी उन्होंने अभिन्न साथी—सहयोगी की भूमिका निभाई थी। वस्तुतः हमारी सफलता के मूल में उनके समर्पण—एक निष्ठ सेवा भाव को देखा जाना चाहिए। जो कुछ भी हमने चाहा, जिन प्रतिकूलताओं में जीवन जीने हेतु कहा, उन्होंने सहर्ष अपने को उस क्रम में ढाल लिया। हमारी पारिवारिक पृष्ठभूमि ग्रामीण जमींदार के घराने की थी तो उनकी एक धनी शहरी खानदान की। परन्तु जब घुलने का प्रश्न आया तो दोनों मिलकर एक हो गए। हमने अपने गाँव की भूमि विद्यालय हेतु दे दी एवं जमींदारी के बॉण्ड से मिली राशि गायत्री तपोभूमि के लिए जमीन खरीदने हेतु। तो उन्होंने अपने सभी जेवर तपोभूमि का भवन विनिर्मित होने के लिए दे दिए। यह त्याग-समर्पण उनका है, जिसने हमें इतनी बड़ी ऊँचा-ईयों तक पहुँचाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

अपनी दूसरी हिमालय यात्रा में उन्होंने हमारी अनुपस्थिति में सम्पादन—संगठन की जिम्मेदारी सँभाली ही थी। अब हम १० वर्ष बाद १९७१ में एक बहुत बड़ा परिवार अपने पीछे छोड़कर हिमालय जा रहे थे। गायत्री परिवार को दृश्य रूप में एक संरक्षक चाहिए था, जो उन्हें स्नेह—ममत्व दे सके। उनकी दुःख भरी वेदना में आँसू पोंछने का कार्य माता ही कर सकती थी। माताजी ने यह जिम्मेदारी भलीभाँति सम्भाली। प्रवास पर जाने के ३ वर्ष पूर्व से ही हम लम्बे दौरे पर रहा करते थे। ऐसे में मथुरा आने वाले परिजनों से मिलकर उन्हें दिलासा देने का कार्य वे अपने कन्धों पर ले चुके थीं। हमारे सामाजिक जीवन जीने में हमें उनका सतत् सहयोग ही मिला। २०० रुपये में पाँच व्यक्तियों का गुजारा परिवार का भरण-पोषण किया, आने वालों का समुचित आतिथ्य सत्कार भी वे करती रहीं। किसी को निराश नहीं लौटने दिया।

मथुरा में जिया हमारा जीवन एक अमूल्य धरोहर के रूप में है। इससे न केवल हमारे भावी क्रान्तिकारी जीवन की नींव ढली अपितु क्रमशःप्रत्यक्ष पीछे

हटने की स्थिति में दायित्व सँभाल सकने वाले मजबूत कन्धों वाले नर तत्व भी हाथ लगे।

मथुरा के कुछ रहस्यमय प्रसङ्ग :

प्रारम्भ में मथुरा में रहकर जिन गतिविधियों को चलाने के लिए हिमालय से आदेश हुआ था, उन्हें अपनी जानकारी की क्षमता द्वारा कर सकना कठिन था। न साधन, न साथी, न अनुभव, न कौशल। फिर इतने विशाल काम किस प्रकार बन पड़े ? हिम्मत टूटती सी देखकर मार्गदर्शक ने परोक्षतः लगाम हाथ में सम्भाली। हमारे शरीर भर का उपयोग हुआ। बाकी सब काम कठपुतली नचाने वाला बाजीगर स्वयं कराता रहा लकड़ी के टुकड़े का श्रेय इतना ही है कि उसने तार मजबूती से जकड़ कर रखे और जिस प्रकार नाचने का संकेत हुआ—वैसा करने से इन्कार नहीं किया।

चार घण्टे नित्य लिखने के लिए निर्धारण किया। लगता रहा कि व्यास और गणेश का उदाहरण चल पड़ा। पुराण लेखन में व्यास बोलते गये थे। ठीक वही यहाँ हुआ। आर्ष ग्रन्थों का अनुवाद कार्य अति कठिन है। चारों वेद, १०८ उपनिषदें, छहों दर्शन, चौबीसों स्मृतियाँ आदि-आदि सभी ग्रन्थों में हमारी कलम और उङ्गलियों का उपयोग हुआ। बोलती-लिखाती कोई और अदृश्य शक्ति रही। अन्यथा इतना कठिन काम इतनी जल्दी बन पड़ना सम्भव न था। फिर धर्म तन्त्र से लोक शिक्षण का प्रयोजन पूरा करने वाली सैकड़ों की संख्या में लिखी गई पुस्तकें मात्र एक व्यक्ति के बलबूते किस प्रकार होती रह सकती थीं। यह लेखन कार्य जिस दिन से आरम्भ हुआ, उस दिन से लेकर आज तक बन्द ही नहीं हुआ। वह बढ़ते-बढ़ते इतना हो गया जितना हमारे शरीर का वजन है।

प्रकाशन के लिए प्रेस की जरूरत हुई। अपने बलबूते एक हैण्ड प्रेस का जुगाड़ किसी तरह जुटाया गया। जिसे काम कराना था, वह इतनी सी बाल क्रीड़ा को देखकर हँस पड़ा। प्रेस का विकास हुआ। ट्रेडिलें, सिलेण्डर, ओटोमैटिक, आफसेटें एक के बाद एक आती चली गईं। उन सबकी कीमतें व प्रकाशित साहित्य की लागत लाखों को पार कर गई।

"अखण्ड-ज्योति" पत्रिका के अपने पुरुषार्थ से दो हजार तक ग्राहक बनने पर बात समाप्त हो गई थी। फिर मार्गदर्शक ने धक्का लगाया तो अब वह बढ़ते-बढ़ते डेढ़ लाख के करीब छपती है जो एक कीर्तिमान है। उसके और भी दस गुने बढ़ने की ही सम्भावना है। युग निर्माण योजना हिन्दी, युग शक्ति गायत्री गुजराती, युग शक्ति उड़िया आदि सब मिलाकर भी डेढ़ लाख के करीब हो जाती हैं। एक व्यक्ति द्वारा रचित इतनी उच्च-कोटि की, इतनी अधिक संख्या में बिना किसी का विज्ञापन स्वीकार किये, इतनी संख्या में पत्रिका छपती है और घाटा जेब में से न देना पड़ता हो, यह एक कीर्तिमान है, जैसा अपने देश में अन्यत्र उदाहरण नहीं ढूँढ़ा जा सकता।

गायत्री परिवार का सङ्गठन करने के निमित्त—महापुरश्चरण की पूर्णाहुति के बहाने हजार कुण्डीय यज्ञ मथुरा में हुआ था उसके सम्बन्ध में यह कथन अत्युक्ति पूर्ण नहीं है कि इतना बड़ा आयोजन महाभारत के उपरान्त आज तक नहीं हुआ।

उसकी कुछ रहस्यमयी विशेषताएँ ऐसी थीं, जिनके सम्बन्ध में सही बात कदाचित ही किसी को मालूम हो। एक लाख नैष्ठिक गायत्री उपासक देश के कोने-कोने में से आमन्त्रित किये गये। वे सभी ऐसे थे जिनने धर्मतन्त्र में लोक शिक्षण का काम हाथों-हाथ सम्भाल लिया और इतना बड़ा हो गया जितने कि भारत के समस्त धार्मिक सङ्गठन मिलकर भी पूरे नहीं होते। इन व्यक्तियों से हमारा परिचय बिलकुल न था। पर उन सबके पास निमन्त्रण पत्र पहुँचे और वे अपना मार्ग व्यय खर्च करके भागते चले आये। यह एक पहेली है जिसका समाधान ढूँढ़ पाना कठिन है।

दर्शकों की संख्या मिलाकर दसलाख तक प्रतिदिन पहुँचती रही। इन्हें सात मील के घेरे में ठहराया गया था। किसी को भूखा नहीं जाने दिया। किसी से भोजन का मूल्य नहीं माँगा गया। अपने पास खाद्य सामग्री मुट्ठी भर थी। इतनी, जो एक बार में बीस हजार

के लिए भी पर्याप्त न होती। पर भण्डार अक्षय हो गया। पाँच दिन के आयोजन में प्रायः पाँच लाख से अधिक खा गये। पीछे खाद्य सामग्री बच गई जो उपयुक्त व्यक्तियों को बिना मूल्य बाँटी गई व्यवस्था ऐसी अद्‌भुत रही, जैसी हजार कर्मचारी नौकर रखने पर भी नहीं कर सकते थे।

यह रहस्यमयी बातें हैं। आयोजन का प्रत्यक्ष विवरण तो हम दे चुके हैं। पर जो रहस्मय था सो अपने तक सीमित रहा है। कोई यह अनुमान न यगा सका कि इतनी व्यवस्था, इतनी सामग्री कहाँ से जुट सकी यह सब अदृश्य सत्ता का खेल था। सूक्ष्म शरीर से वे ऋषि भी उपस्थित हुए थे जिनके दर्शन हमने प्रथम हिमालय यात्रा में किये थे। इन सब कार्यों के पीछे जो शक्ति काम कर रही थी उसके सम्बन्ध में कोई तथ्य किसी को विदित नहीं। लोग इसे हमारी करामात चमत्कार कहते रहे, भगवान साथी है कि हम जड़ भरत की तरह, मात्र दर्शक की तरह यह सारा खेल देखते रहे। जो शक्ति इस व्यवस्था को बना रही थी उसके सम्बन्ध में कदाचित ही किसी को कुछ आभास हुआ हो।

तीसरा काम जो हमें मथुरा में करना था, वह था-गायत्री तपोभूमि का निर्माण। इतने बड़े कार्यक्रम के लिए छोटी इमारत से काम नहीं चल सकता था। वह बनना आरम्भ हुई। निर्माण कार्य आरम्भ हुआ और हमारे आने के बाद भी अब तक बराबर चलता ही रहा है। प्रज्ञा नगर के रूप में विकसित विस्तृत हो गया है। जो मथुरा गये हैं, गायत्री तपोभूमि की इमारत और उसका प्रेस, अतिथि व्यवस्था कार्यकर्त्ताओं का समर्पण भाव आदि देख कर आये हैं, वे आश्चर्यचकित होकर रहे हैं। इतना सामान्य दीखने वाला आदमी किस प्रकार इतनी भव्य इमारत की व्यवस्था कर सकता है। इस रहस्य को जिन्हें जानना हो, उन्हें हमारी पींठ पर काम करने वाली शक्ति को ही इसका श्रेय देना होगा, व्यक्ति को नहीं। अर्जुन का रथ भगवान सारथी बनकर चला रहे थे। उन्हीं ने जिताया था। पर जीत का श्रेय अर्जुन को मिला और राज्याधिकारी पाण्डव बने। इसे कोई चाहे तो पाण्डवों का

पुरुषार्थ—पराक्रम कह सकता है पर वस्तुतः बात वैसी थी नहीं। यदि होती तो द्रोपदी का चीर उनकी आँखों के सामने कैसे खींचा जाता। वनवास काल में जहाँ–तहाँ छिपे रहकर जिस–तिस की नगण्य–सी नौकरियाँ क्यों करते फिरते ?

हमारी क्षमता नगण्य है, पर मथुरा जितने दिन रहे, वहाँ रहकर इतने सारे प्रकट और अप्रकट कथा जो हम करते रहे, उसकी कथा आश्चर्य-जनक है। उसका कोई लेखा-जोखा लेना चाहे तो हमारी जीवन साधना के तथ्यों को ध्यान में रखे और हमें नाचने वाली लकड़ी के टुकड़े से बनी कठपुतली के अतिरिक्त और कुछ न माने यही समर्पण भाव हमारी जीवन गाथा का केन्द्र रहा है। यही हमने सम्पर्क में आने वालों को भी सिखाया व सत्ता द्वारा परोक्ष संचालन हेतु स्वयं को एक निमित्त मात्र मानकर उपासना, साधना, आराधना के त्रिविध प्रसङ्गों का समय–समय पर रहस्योद्घाटन किया है। जो चाहें, उन्हीं प्रसङ्गों में हमारी आत्मकथा का तत्त्व दर्शन समझते रह सकते हैं।

महामानव बनने की विधा, जो हमने सीखी-अपनायी

उचित होगा कि आगे का प्रसङ्ग प्रारम्भ करने के पूर्व हम अपनी जीवन साधना के, स्वयं की आत्मिक प्रगति से जुड़ तीन महत्त्वपूर्ण चरणों की व्याख्या कर दें। हमारी सफल जीवन यात्रा का यही केन्द्र बिन्दु रहा है। आत्म—गाथा पढ़ने वालों को इस मार्ग पर चलने की इच्छा जागे, प्रेरणा मिले तो वे उस तत्त्व दर्शन को हृदयङ्गम करें जो हमने जीवन में उतारा। अलौकिक रहस्य प्रसङ्ग पढ़ने-सुनने में अच्छे लग सकते हैं, पर रहते वे व्यक्ति विशेष तक ही सीमित हैं। उनसे "हिप्नोटाइज" होकर कोई उसी कर्मकाण्ड की पुनरावृत्ति कर हिमालय जाना चाहे तो उसे कुछ हाथ न लगेगा। सबसे प्रमुख पाठ जो इस काया रूपी चोले में रहकर हमारी आत्म-सत्ता ने सीखा है, वह है सच्ची उपासना, सही जीवन साधना एवं समष्टि की आराधना। यही वह मार्ग है जो व्यक्ति को नरमानव से देवमानव, ऋषि, देवदूत स्तर तक पहुँचाता है।

जीवन धारण के लिए अन्न, वस्त्र और निवास की आवश्यकता पड़ती है। साहित्य सृजन के लिए कलम, स्याही और कागज चाहिए। फसल उगाने के लिए बीज और खाद-पानी का प्रबन्ध करना है। यह तीनों ही अपने-अपने स्थान पर महत्वपूर्ण हैं। उनमें एक की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। आत्मिक प्रगति के लिए उपासना, साधना और आराधना इन दोनों के समान समन्वय की आवश्यकता पड़ती है। इनमें से किसी अकेले

के सहारे लक्ष्य तक नहीं पहुँचा जा सकता। कोई एक भी ऐसा नहीं है जिसे छोड़ा जा सके।

उपासना का सही स्वरूप :

भूल यह होती रही है कि जो पक्ष इनमें सबसे गौण है उसे "पूजा–पाठ" की उपासना मान लिया गया और उतने पर ही आदि अन्त कर लिया गया। पूजा का अर्थ है हाथों तथा वस्तुओं द्वारा की गई मनुहार, दिये गये छुटपुट उपचार उपहार। पाठ का अर्थ है—प्रशंसा परक ऐसे गुणगान जिसमें अत्युक्तियाँ ही भरी पड़ी हैं। समझा जाता है कि ईश्वर या देवता कोई बहुत छोटे स्तर के हैं, उन्हें प्रसाद, नैवेद्य, नारियल, इलायची जैसी वस्तुएँ कभी मिलती नहीं। पावेंगे तो फूलकर कुप्पा हो जायेंगे। जागीरदारों की तरह प्रशंसा सुनकर चरणों को निहालकर देने की उनकी आदत है। ऐसी मान्यता बनाने वाले देवताओं के स्तर एवं बड़प्पन के सम्बन्ध में सर्वथा बे-खबर होते और बच्चों जैसा नासमझ समझते हैं, जिन्हें-इन्हीं खिलवाड़ों में फुसलाया, बरगलाया जा सकता है। मनोकामना पूरी करने के लिए उन्हें लुभाया जा सकता है। भले ही वे उचित हों अथवा अनुचित। न्याय सङ्गत हो या अन्याय पूर्ण। आम आदमी इसी भ्रान्ति का शिकार है। तथाकथित भक्त-जनों में से कुछ सम्पदा पाना या सफलता माँगते हैं कुछ स्वर्ग, मुक्ति और सिद्धि की फिराक में रहते हैं। कइयों पर ईश्वर दर्शन का भूत चढ़ा रहता है। माला घुमाने और अगरबत्ती जलाने वालों में से अधिकतर संख्या ऐसे ही लोगों की है। मोटे अर्थों में उपासना उतने तक ही सीमित समझी जाती है। जो इस बिडम्बना में से जितना अंश पूरा कर लेते हैं। वे अपने को भक्तजन समझने का नखरा करते हैं और बदले में भगवान ने उनकी मनो-कामनाओं की पूर्त्ति नहीं की तो हजार गालियाँ सुनाते हैं। कई इससे भी सस्ता नुस्खा ढूँढ़ते हैं। वे प्रतिमाओं की सन्तों की दर्शन झाँकी करने भर से ही यह मानने लगते हैं कि अहसान के बदले यह लोग झकमार कर अपना मनोरथ पूरा करेंगे।

बुद्धिहीन स्तर की कितनी ही मान्यताएँ समाज में प्रचलित हैं। लोग उन पर विश्वास भी करते और अपनाते भी हैं। उन्हीं में से एक यह भी है कि आत्मिक क्षेत्र की उपलब्धियों के लिए दर्शन-झाँकी या पूजा पाठ जैसा नुस्खा अपना लेने भर से काम चल जाना चाहिए। पर वस्तुतः ऐसा है नहीं। यदि होता तो मन्दिरों वाली भीड़ और पूजापाठ वाली मण्डली अब तक कब की आसमान के तारे तोड़ लाने में सफल हो गई होती।

समझा जाना चाहिए कि जो वस्तु जितनी महत्वपूर्ण है, उसका मूल्य भी उतना ही अधिक होना चाहिए। प्रधानमन्त्री के दरबार का सदस्य बनने के लिए पार्लियामेंन्ट का चुनाव जीतना चाहिए। उपासना का अर्थ है पास बैठना। यह वैसा नहीं है जैसा कि रेलगाड़ी के मुसाफिर एक-दूसरे पर चढ़ बैठते हैं। वरन् वैसा है जैसा कि दो घनिष्ठ मित्रों को दो शरीर एक प्राण होकर रहना पड़ता है। सही समीपता ऐसे ही गम्भीर अर्थों में ली जानी चाहिए। समझा जाना चाहिए कि इसमें किसी को किसी के लिए समर्पण करना होगा। चाहे तो भगवान अपने नियम, विधान, मर्यादा, अनुशासन छोड़कर किसी भजनानन्दी के पीछे-पीछे नाक में नकेल डालकर फिरें और जो कुछ भला-बुरा वह निर्देश करे उसकी पूर्ति करता रहे। अन्यथा दूसरा उपाय यही है कि भक्त को अपना जीवन भगवान की मर्जी के अनुरूप बनाने के लिये आत्म समर्पण करना होगा। अपना जीवन भगवान की मर्जी के अनुरूप बनाने के लिए आत्म समर्पण करना होगा।

हमें हमारे मार्गदर्शक ने जीवनचर्या को आत्मोत्कर्ष के त्रिविधि कार्यक्रमों में नियोजित करने के लिए सर्वप्रथम उपासना का तत्वदर्शन और स्वरूप समझाया। कहा—'भगवान तुम्हारी मर्जी पर नहीं नाचेगा। तुम्हें भी भगवान का भक्त बनना और उसके संकेतों पर चलना पड़ेगा। ऐसा कर सकोगे तो तद्रूप होने का लाभ प्राप्त करोगे।''

उदाहरण देते हुए उनने समझाया कि ''ईंधन की हस्ती दो कौड़ी की होती है। पर जब वह अग्नि के साथ जुड़ जाता है तो उसमें सारे गुण अग्नि के आ जाते हैं। आग ईंधन नहीं बनती ईंधन को आग बनना पड़ता है।

नाला नदी में मिलकर वैसा ही पवित्र और महान बन जाता है, पर ऐसा नहीं होता कि नदी उलट कर नाले में मिले और वैसी ही गन्दी बन जाय। पारस को छूकर लोहा सोना होता है। लोहा पारस नहीं बनता। किसी भक्त का यह आशा करना कि भगवान उसके इशारों पर नाचने के लिए सहमत हो जाएगा। आत्म प्रवंचना भर है। भक्त को ही भगवान के संकेतों पर कठपुतली की तरह नाचना पड़ता है। भक्त की इच्छायें भगवान पूरी नहीं करते। वरन् भगवान की इच्छा पूरी करने के लिए भक्त को आत्म-समर्पण करना पड़ता है। बूँद को समुद्र में घुलना पड़ता है। समुद्र बूँद नहीं बनता। यही है उपासना का एकमात्र तत्वदर्शन। जो भगवान के समीप बैठना चाहे, वह उसी का निर्देशन अनुशासन स्वीकार करे। उसी का अनुयायी सहयोगी बने।"

हमें ऐसा ही करना पड़ा है। भगवान की उपासना गायत्री माता का जप और सविता पिता का ध्यान करते हुए करते रहे। भावना एक ही रखी है कि श्रवण कुमार की तरह आप दोनों को तीर्थयात्रा कराने के आदर्श का परिपालन करेंगे। आपसे कुछ माँगेंगे नहीं। आपके सच्चे पुत्र कहला सकें, ऐसा व्यक्तित्व ढालेंगे। आपकी निकृष्ट सन्तान जैसी बदनामी न होने देंगे।

ध्यान की सुविधा के लिए गायत्री को माता और सविता को पिता माना तो सही पर साथ ही यह भी अनुभव किया कि वे सर्वव्यापक और सूक्ष्म हैं। इसी मान्यता के कारण उनको अपने रोम में और अपनी उनकी हर तरंग में घुल सकना सम्भव हो सका। मिलन का आनन्द इससे कम में आता ही नहीं। यदि उन्हें व्यक्ति विशेष माना होता तो दोनों के मध्य अन्तर बना ही रहता और घुलकर आत्मसात होने की अनुभूति होने में बाधा ही बनी रहती।

अभ्यास के लिए आरम्भिक चरणों में अपने को बेल, भगवान को वृक्ष मानकर उनके साथ लिपटते हुए उतनी ही ऊँचाई तक जा पहुँचने की मान्यता ठीक है। इसी प्रकार अपने को वंशी और भगवान को वादक मानकर उनके द्वारा अनुशासित अनुप्राणित किये जाने का ध्यान भी सुविधाजनक पड़ता है।

बच्चे के हाथ में डोरी और उसके इशारे पर पतंग के आकाश तक उड़ते जाने का ध्यान भी उत्साहवर्धक है। यह तीनों ही ध्यान हमने समय-समय पर किये हैं और उनसे उत्साहवर्धक अनुभूतियाँ प्राप्त की हैं पर सबसे सुखद और प्राणवान अनुभूति, एकाकार अनुभव में हुई है। पतंगे का दीपक पर आत्म—समर्पण करना—पत्नी का पति के हाथों अपना शरीर, मन और धन वैभव सौंप देना भक्त को भगवान के साथ तादात्म्य मिलाने का एक अच्छा अनुभव है। उपासना काल में इन्हीं कृत्यों को अपनाते हुए जप और ध्यान की प्रक्रिया पूरी करते रहा गया है।

हमारी उपासना क्रिया प्रधान नहीं, श्रद्धा प्रधान रही है। निर्धारित जप संख्या को पूरा करने का अनुशासन कठोरतापूर्वक पाला गया है। प्रातः एक बजे उठ बैठने और निर्धारित संकल्प को पूरा करने में कभी कदाचित ही आपत्तिकाल में भूल हुई हो। जो कमी पड़ी है उसकी अगले दिनों पूर्ति करली गई। उपेक्षा में नहीं डाला गया। इतने पर भी उस अवधि में भावनाओं से ओत—प्रोत रहने की मनःस्थिति बनाये रहने का अभ्यास किया गया है और वह सफल भी होता रहा है, समर्पण एकता, एकात्मता,, अद्वैत की भावनाओं का अभ्यास आरम्भ में कल्पना के रूप में किया गया था। पीछे वह मान्यता बन गई और अन्त में अनुभूति प्रतीत होने लगी।

गायत्री माता की सत्ता कारण शरीर में श्रद्धा—सूक्ष्म शरीर में प्रज्ञा और स्थूल शरीर में निष्ठा बनकर प्रकट होने लगी। यह मात्र कल्पना ही तो नहीं है। इसके लिए बार—बार कठोर आत्म—परीक्षण किया जाता रहा। देखा कि आदर्श जीवन के प्रति—समष्टि के प्रति अपनी श्रद्धा बढ़ रही है या नहीं। इनके लिये प्रलोभनों और दबावों से इन्कार कर सकने की स्थिति है या नहीं। समय—समय पर घटनाओं के साथ जोड़कर भी परख की गई और पाया गया कि भावना परिपक्व हो गई है। उसने अपना स्वस्थ साधन श्रद्धा का वैसा ही बना लिया है जैसा कि ऋषि—कल्प साधक बनाया करते थे।

गायत्री माता मात्र स्त्री शक्ति के रूप में छवि दिखाती हैं। अब प्रज्ञा बनकर विचार संस्थान पर आच्छादित हो चलीं। इसका जितना बन पड़ा

विश्लेषण किया जाता रहा। अनेक प्रसंगों पर हमने परखा भी है कि समझदारी, जिम्मेदारी, बहादुरी के रूप में प्रज्ञा का समन्वय आत्म चेतना की गहराई तक हुआ या नहीं। यदि पक्षपात की चूक न हुई हो तो प्रतीत होता रहा है कि भाव चेतना में प्रज्ञा के रूप में गायत्री माता का अवतरण हुआ है और उनकी उपासना, ध्यान धारणा फलवती हो चली है। मान्यता का गुण, कर्म, स्वभाव में परिवर्तित होना यही तो उपासनात्मक धारणा की परख है।

त्रिपदा गायत्री का तीसरा स्वरूप है—निष्ठा। निष्ठा अर्थात् संकल्प, धैर्य, साहस, पराक्रम, तप, कष्ट सहन। जिस प्रकार आँवे से निकले बर्तन को उँगली से ठोंक-ठोंक कर देखा जाता है कि यह फूटा तो नहीं है, उसी प्रकार प्रलोभन और भय के प्रसंगों पर दृढ़ता डगमगाई तो नहीं, यह क्रिया और भावना की दृष्टि से जाँच-पड़ताल की जाती रही। पाया कि प्रगति रुकी नहीं है। हर कदम क्रमशः आगे ही बढ़ता रहा है।

सविता का तेजस्—ब्रह्मवर्चस् कहलाता है। उसी को ओजस्, तेजस्, मनस्, वर्चस् कहते हैं। पवित्रता, प्रखरता, और प्रतिभा के रूप में इसका प्रत्यक्ष परिचय मिलता है। सविता के आलोक के स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर प्रवेश की विधि पहले ही ऐसा अनुभव कराती रही कि शरीर में बल, मस्तिष्क में ज्ञान और हृदय में भाव साहस भर रही है। पीछे अनुभव होने लगा कि अपनी समूची सत्ता ही अग्नि पिण्ड के—ज्योति पिण्ड के समान बन गई है। नस-नस में कण-कण में अमृत संव्याप्त हो रहा है। सोमरस पान जैसी तृप्ति, तुष्टि, शान्ति का आनन्द मिल रहा है।

संक्षेप में यही है—हमारी चार घण्टा नित्य की नियमित उपासना का उपक्रम। यह समय ऐसी अच्छी तरह कटता रहा है, मानों आधे घण्टे में ही समाप्त हो गया, कभी न ऊब आई, न थकान न जमुहाई। हर घड़ी नसों में आनन्द का संचार होता रहा और ब्रह्म सान्निध्य का अनुभव होता रहा। यह सहज सरल स्वाभाविक प्रक्रिया चलती रही है। न कभी गणना करनी पड़ी, न कभी गर्व हुआ, न प्रणाम की अपेक्षा मन में उठी। जिस प्रकार दिनचर्या

के अन्य कार्य सहज सरल हो जाते हैं, उसी प्रकार भगवान के पास बैठना भी एक ऐसा कार्य है, जिसे किये बिना अब हमारे लिए एक दिन बिताना तक सम्भव नहीं है। नियत घन्टे तो उपासना के ऐसे हैं जैसे नशा पीने, ताड़ी खाने में जाने का जो पिया है, उसकी खुमारी तो चौबीस घन्टे बनी रहती है। अपने को भगवान में और भगवान को अपने में अनुभव करते हुए क्षण गुजरते रहते हैं।

इस मनःस्थिति में उतार-चढ़ाव की परिस्थितियाँ भी सरल स्वाभाविक लगती हैं। न हर्ष होता है—न शोक। चारों ओर आनन्द का समुद्र जैसा लहराता दीखता है।

जिधर भी देखते हैं—भगवान दीखता है। आगे भी पीछे भी—जिधर चलते हैं, वह साथ ही चलता है। बाडीगार्ड की तरह—पायलट की तरह उसकी उपस्थिति हर घड़ी परिलक्षित होती रहती हैं। समुद्र तो बूँद नहीं बन सकता पर बूँद के समुद्र बन जाने की अनुभूति में अब कोई सन्देह भी नहीं रह गया है। उसकी उपस्थिति में न निश्चितता की कमी है न निर्भयता की।

आत्मा को परमात्मा से मिला देने वाली जिस श्रद्धा को लम्बे जीवन काल में सँजोया गया है, वह अब साक्षात भगवती की तरह अपनी उपस्थिति और अनुभूति का परिचय देती रहती है।

जीवन साधना जो कभी असफल नहीं हुई :

बालक की तरह मनुष्य सीमित है। उसे असीम क्षमता उसके सुसम्पन्न सृजेता भगवान् से उपलब्ध होती है। पर यह सशर्त्त है। छोटे बच्चे वस्तुओं का सही उपयोग नहीं जानते, न उनकी सम्भाल रख सकते हैं इस लिए उन्हें दुलार में जो मिलता है, हलके दर्जे का होता है। गुब्बारे झुनझुने सीटी लेमनचूस स्तर की विनोद वाली वस्तुएँ ही माँगी और पाई जाती है। प्रौढ़ होने पर लड़का घर की जिम्मेदारियाँ समझता और निबाहता है। फलतः बिना माँगे उत्तराधिकार का हस्तान्तरण होता जाता है। इसके लिए प्रार्थना

याचना नहीं करनी पड़ती। न दाँत निपोरने पड़ते हैं और न नाक रगड़नी पड़ती है। जितना हमें माँगने में उत्साह है, उससे हजार गुना देने में उत्साह भगवान को और महामानवों को होता है। कठिनाई एक पड़ती है "सदुपयोग कर सकने की पात्रता विकसित हुई या नहीं ?"

इस सन्दर्भ में भविष्य के लिए झूठे वायदे करने से कुछ काम नहीं चलता। प्रमाण यह देना पड़ता है कि अब तक जो हाथ में था उसका उपयोग वैसा होता रहा है। "हिस्ट्री शीट" इसी से बनती है" और प्रमोशन में यह पिछला विवरण ही काम आता है। हमें पिछले कई जन्मों तक अपनी पात्रता और प्रामाणिकता सिद्ध करनी पड़ी है। जब बात पक्की हो गई तो ऊँचे क्षेत्र से अनुग्रह का सिलसिला अपने आप ही चल पड़ा।

सुग्रीव, विभीषण, सुदामा, अर्जुन आदि ने जो पाया—जो कर दिखाया वह उनके अपने पराक्रम का फल नहीं था, उसमें ईश्वर की सत्ता और महत्ता काम करती रही है। बड़ी नदी के साथ जुड़ी रहने पर नहरें और नहरों के साथ जुड़े हुए रजवाहे खेतों को पानी देते रहते हैं। यदि एक सूत्र में कहीं गड़बड़ी उत्पन्न होगी तो अवरोध खड़ा होगा और सिलसिला टूटेगा। भगवान के साथ मनुष्य अपने सुदृढ़ सम्बन्ध सुनिश्चित आधारों पर ही बनाये रह सकता है। उसमें चापलूसी जैसी कोई गुंजायश नहीं है। भगवान की किसी से न निजी मित्रता है न शत्रुता। वे नियमों से बँधे हैं। समदर्शी हैं।

हमारी व्यक्तिगत क्षमता सर्वथा नगण्य है। प्रायः जन साधारण के समान ही उसे समझा जा सकता है। जो कुछ अतिरिक्त दीखता है या बन पड़ा है, उसे विशुद्ध दैवी अनुग्रह समझा जाना चाहिए। वह सीधा कम और मार्ग दर्शक के माध्यम से अधिक आता रहा है। पर इससे कुछ अन्तर नहीं आता। धन बैंक का है। भले ही वह नकदी के रूप में, चैक, ड्राफ्ट आदि के माध्यम से मिला हो।

यह दैवी उपलब्धि किस प्रकार सम्भव हुई। इसका एक ही उत्तर है पात्रता का अभिवर्धन। उसी का नाम जीवन साधना है। उपासना के साथ उसका अनन्य एवं घनिष्ठ सम्बन्ध है। बिजली धातु में दौड़ती है,

लकड़ी में नहीं। आग सूखे को जलाती है गीले को नहीं। माता बच्चे को गोदी तब लेती है जब वह साफ सुथरा हो। मल, मूत्र से सना हो तो पहले उसे धोयेगी, पोंछेगी। इसके बाद ही गोदी में लेने और दूध पिलाने की बात करेगी। भगवान की समीपता के लिए शुद्ध चरित्र आवश्यक है। कई व्यक्ति पिछले जीवन में तो मलीन रहे हैं, पर जिस दिन से भक्ति की साधना अपनाई, उस दिन से अपना कायाकल्प कर लिया। वाल्मीकि, अंगुलिमाल, बिल्व मंगल अजामिल आदि पिछले जीवन में कैसे ही क्यों न रहे हों जिस दिन से भगवान की शरण में आये, उस दिन से सच्चे अर्थों में सन्त बन गये। हम लोग "राम-नाम जपना पराया माल अपना" की नीति अपनाते हैं। कुकर्म भी करते रहते हैं, पर साथ ही भजन-पूजन के सहारे उनके दण्ड से छूट मिल जायेगी, ऐसा भी सोचते रहते हैं। यह कैसी विडम्बना है।

कपड़े को रंगने से पूर्व धोना पड़ता है। बीज बोने से पूर्व जमीन जोतनी पड़ती है। भगवान का अनुग्रह अर्जित करने के लिए भी शुद्ध जीवन की आवश्यकता है। साधक ही सच्चे अर्थों में उपासक हो सकता है। जिससे जीवन साधना नहीं बन पड़ी, उसका चिन्तन, चरित्र, आहार, बिहार मस्तिष्क अवांछनीयताओं से भरा रहेगा। फलतः मन लगेगा ही नहीं। लिप्साएँ और तृष्णाएँ जिनके मन को हर घड़ी उद्विग्न किये रहती हैं, उससे न एकाग्रता सधेगी और न चित्त की तन्मयता आयेगी। कर्मकाण्ड की चिन्ह पूजा भर से कुछ बात बनती नहीं। भजन का भावनाओं से सीधा सम्बन्ध है। जहाँ भावनाओं से सीधा सम्बन्ध है। जहाँ भावनाएँ होंगी, वहाँ मनुष्य अपने गुण, कर्म, स्वभाव में सात्विकता का समावेश अवश्य करेगा।

सम्भ्रान्त मेहमान घर में आते हैं, कोई उत्सव होते हैं तो घर की सफाई पुताई करनी पड़ती है। जिस हृदय में भगवान को स्थान देना है, उसे कषाय-कल्मषों से स्वच्छ किया जाना चाहिए। इसके लिये आत्म-निरीक्षण आत्म-सुधार, आत्म-निर्माण और आत्म विकास की चारों ही दिशा धाराओं में बढ़ना आवश्यक है। इन तथ्यों को हमें भली प्रकार समझाया गया। सच्चे मन से उसे हृदयंगम भी किया गया। सोचा गया कि आखिर गर्हित

जीवन बनता क्यों है ? निष्कर्ष निकाला कि इन सभी के उद्‌गम केन्द्र तीन हैं—लोभ, मोह और अहंकार। जिसमें इनकी जितनी ज्यादा मात्रा होगी, वह उतना ही अवगति की ओर घिसटता चला जाएगा।

कियाएँ वृत्तियों से उत्पन्न होती हैं। शरीर मन के द्वारा संचालित होता है। मन में जैसी उमंगें उठती हैं, शरीर वैसी ही गतिविधियाँ अपनाने लगता है। इसलिए अवांछनीय कृत्यों—दुष्कृत्यों के लिए शरीर को नहीं मन को उत्तरदायी समझा जाना चाहिए। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए विष वृक्ष की जड़ काटना उपयुक्त समझा गया और जीवन साधना को आधार भूत क्षेत्र मन से ही आरम्भ किया गया।

देखा गया है कि अपराध प्रायः आर्थिक प्रलोभनों या आवश्यकताओं के कारण होते हैं। इसलिए उनकी जड़ें काटने के लिए औसत भारतीय स्तर का जीवन-यापन अपनाने का व्रत लिया गया। अपनी निज की कमाई कितनी ही क्यों न हो, भले ही वह ईमानदारी या परिश्रम की क्यों न हो पर उसमें से अपने लिए परिवार के लिए खर्च देशी हिसाब से किया जाय. जिससे कि औसत भारतीय गुजारा करना सम्भव हो। यह सादा जीवन उच्चविचार का व्यावहारिक निर्धारण है। सिद्धान्ततः कई लोग इसे पसन्द करते हैं और उसका समर्थन भी। पर जब अपने निज के जीवन में इसका प्रयोग करने का प्रश्न आता है तो उसे असम्भव कहने लगते हैं। ऐसा निर्वाह व्रतशील होकर ही निबाहा जा सकता है। साथ ही परिवार वालों को इसके लिए सिद्धान्ततः और व्यवहारतः तैयार करना पड़ता है। इस सन्दर्भ में सबसे बड़ी कठिनाई लोक प्रचलन की आती है। जब सभी लोग ईमानदारी-बेईमानी की कमाई से गुलछर्रे उड़ाते हैं तो हम लोग ही अपने ऊपर ऐसा अंकुश क्यों लगायें ? इस प्रश्न पर परिजनों और उनके पक्षधर रिश्तेदारी को सहमत करना बहुत कठिन पड़ता है। फिर भी यदि अपनी बात तर्क, तथ्य और परिणामों के सबूत देते हुए ठीक तरह प्रस्तुत की जा सके, और अपने निज का मन दृढ़ हो तो फिर अपने समीपवर्ती लोगों पर कुछ भी असर न पड़े, ऐसा नहीं हो सकता। आर्थिक अनाचारों की जड़ काटनी है तो यह कार्य

इसी स्तर के लोक शिक्षण एवं प्रचलन से सम्भव होगा। उस विश्वास के साथ अपनी बात पर दृढ़ रहा गया। घीया मण्डी मथुरा में अपना परिवार पाँच सदस्यों का था। तब उसका औसत खर्च १६७१ में हरिद्वार जाने तक २०० मासिक नियमित रूप से बनाये रखा गया। मिल-जुलकर, मितव्ययता-पूर्वक लोगों से भिन्न अपना अलग स्तर बना लेने के कारण यह सब मजे में चलता रहा। यों आजीविका अधिक थी। पैतृक सम्पत्ति से पैसा आता था। पर उसका व्यय घर में अन्य सम्बन्धी परिजनों के बच्चे बुलाकर उन्हें पढ़ाते रहने का नया दायित्व ओढ़कर पूरा किया जाता रहा। दुर्गुणों-दुर्व्यसनों के पनपने लायक पैसा बचने ही नहीं दिया गया और जीवन साधना का एक महत्वपूर्ण पक्ष सरलतापूर्वक निभता रहा।

मोह परिवार को सजाने, सुसम्पन्न बनाने, उत्तराधिकार में सम्पदा छोड़ मरने का होता है। लोग स्वयं विलासी जीवन जीते हैं और वैसी ही आदतें बच्चों को भी डालते हैं। फलतः अपव्यय का सिलसिला चल पड़ता है और अनीति की कमाई के लिए अनाचारों के विषय में सोचना और प्रयास करना होता है। दूसरों के पतन अनुभव से लाभ उठाया गया और उस चिन्तन तथा प्रचलन का घर में प्रवेश नहीं होने दिया गया। इस प्रकार अपव्यय भी नहीं हुआ, दुर्गुण भी नहीं बढ़े—कुप्रचलन भी नहीं चला, सुसंस्कारी परिवार विकसित होता चला गया।

तीसरा पक्ष अहंता का है। शेखीखोरी, बड़प्पन, ठाट-बाट, सजधज फैशन आदि में लोग ढेरों समय और धन खर्च करते हैं। निजी जीवन तथा परिवार में नम्रता और सादगी का ऐसा ब्राह्मणोचित माहौल बनाये रखा गया कि अहंकार के प्रदर्शन की कोई गुंजायश नहीं थी। हाथ से घरेलू काम करने की आदत अपनाई गई। माताजी ने मुद्दतों हाथ से चक्की पीसी है। घर का तथा अतिथियों का भोजन तो वे मुद्दतों बनाती रही हैं। घरेलू नौकर की आवश्यकता तो तब पड़ी जब बाहरी कामों का असाधारण विस्तार होने लगा और उनमें व्यस्त रहने के कारण माताजी का उनमें समय दे सकना सम्भव नहीं रह गया।

यह अनुमान गलत निकला कि ठाट-बाट से रहने वालों को बड़ा आदमी समझा जाता है और गरीबी से गुजारा करने वाले उद्विग्न, अभागे, पिछड़े पाये जाते हैं। हमारे सम्बन्ध में यह बात कभी लागू नहीं हुई। आलस्य और अयोग्यतावश गरीबी अपनाई गई होती तो अवश्य वैसा होता पर स्तर उपार्जन योग्य होते हुए भी यदि सादगी का हर पक्ष स्वेच्छापूर्वक अपनाया गया है तो उसमें सिद्धान्तों का परिपालन ही लक्षित होता है। जो भी अतिथि आये—जिन भी मित्र सम्बन्धियों को रहन-सहन का पता चलता रहा उनमें से किसी ने भी इसे दरिद्रता नहीं कहा वरन् ब्राह्मण परम्परा का निर्वाह ही माना। मिर्च न खाने, खड़ाऊ पहनने जैसे एकाध उपकरण सादगी के नाम पर अपनाकर लोग सात्विकता का विज्ञापन भर करते हैं। वस्तुतः आध्यात्मिकता निभती है सर्वतोमुखी संयम और अनुशासन से। उसमें समग्र जीवन-चर्या को ब्राह्मण जैसी बनाना एवं अभ्यास में उतारने के लिए सहमत करना होता है। यह लम्बे समय की और क्रमिक साधना है। हमने इसके लिए अपने को साधा और जो भी अपने साथ जुड़े रहे उन्हें यथा सम्भव सधाया।

संचित कुसंस्कारों का दौर हर किसी पर चढ़ता रहता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर अपनी उपस्थिति का परिचय देते रहे पर उन्हें उभरते ही दबोच लिया गया। बेखबर रहने, देर-गुजर करने से ही वे पनपते और कब्जा जमाने में सफल होते हैं। वैसा अवसर जब-जब आया उन्हें खदेड़ दिया गया। गुण, कर्म, स्वभाव तीनों पर ध्यान रखा गया कि इनमें साधक के अनुसार सात्विकता का समावेश है या नहीं। सन्तोष की बात है कि इस आन्तरिक महाभारत को जीवन भर लड़ते रहने के कारण अब चलते समय अपने को विजयी घोषित कर सकें।

जन्मतः सभी अनगढ़ होते हैं। जन्म-जन्मान्तरों के कुसंस्कार सभी पर न्यूनाधिक मात्रा में लदे होते हैं। वे अनायास ही हट या भग नहीं जाते। गुरु-कृपा या पूजा-पाठ से भी वह प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। उनके समाधान का एक ही उपाय है—जूझना। जैसे ही कुविचार उठें, उनके प्रतिपक्षी सद्-

विचारों की सेना को पहले से ही प्रशिक्षित, कटिबद्ध रखी जाय। और विरोधियों से लड़ने को छोड़ दिया जाय। जड़ जमाने का अवसर न मिले तो कुविचार या कुसंस्कार बहुत समय तक ठहरते नहीं। उनकी सामर्थ्य स्वल्प होती है। वे आदतें और प्रचलनों पर निर्भर रहते हैं, जबकि सद्विचारों के पीछे तर्क, तथ्य, प्रमाण, विवेक आदि अनेकों का मजबूत समर्थन रहता है। इसलिए शास्त्रकार की उक्ति ऐसे अवसरों पर सर्वथा खरी उतरती है जिसमें कहा गया है कि "सत्य ही जीतता है असत्य नहीं।" इसी बात को यों भी कहा जाता है कि परिपक्व किये गए सुसंस्कार ही जीतते हैं, आधार रहित कुसंस्कार नहीं। जब सरकस के रीछ-वानरों को आश्चर्यजनक कौतुक, कौतूहल दिखाने के लिए प्रशिक्षित किया जा सकता है तो कोई कारण नहीं कि अनगढ़ मन और जीवन क्रम को संकल्पवान साधनों के हण्टर से सुसंस्कारी न बनाया जा सके।

आराधना जिसे निरन्तर अपनाये रहा गया :

गंगा, यमुना, सरस्वती के मिलने से त्रिवेणी संगम बनने और उसमें स्नान करने वाले का काया-कल्प होने की बात कही गयी है। बगुले का हंस और कौए का कोयल आकृति में बदल जाना तो सम्भव नहीं पर इस आधार पर विनिर्मित हुई अध्यात्म धारा का अवगाहन करने से मनुष्य का अन्तरंग और वहिरंग जीवन असाधारण रूप से बदल सकता है, यह निश्चित है। यह त्रिवेणी उपासना, साधना और आराधना के समन्वय से बनती है। यह तीनों कोई क्रियाकाण्ड नहीं हैं जिन्हें इतने समय में, इस विधि से, इस प्रकार बैठकर सम्पन्न करते रहा जा सके। यह चिन्तन, चरित्र और व्यवहार में होने वाले उच्चस्तरीय परिवर्तन हैं। जिनके लिए अपनी शारीरिक और मानसिक गतिविधियों पर निरन्तर ध्यान देना पड़ता है। दुरितों से संशोधन में प्रखरता का उपयोग करना पड़ता है और नयी विचारधारा में अपने गुण, कर्म, स्वभाव को इस प्रकार अभ्यस्त करना पड़ता है जैसे अनगढ़ पशु-पक्षियों को सरकस के करतब दिखाने के लिए जिस-तिस प्रकार प्रशिक्षित

किया जाता है। पूजा कुछ थोड़े समय की हो सकती है, पर साधना तो ऐसी है, जिसके लिए गोदी के बच्चे को पालने के लिए निरन्तर ध्यान रखना पड़ता है। फलवती भी वही होती है। जो लोग पूजा को बाजीगरी समझते हैं और जिस-तिस प्रकार के क्रिया-कृत्य करने भर के बदले ऋद्धि-सिद्धियों के दिवास्वप्न देखते हैं, वे भूल करते हैं।

हमारे मार्गदर्शक ने प्रथम दिन ही त्रिपदा गायत्री का व्यवहार, स्वरूप, उपासना, साधना, आराधना के रूप में भली प्रकार बता दिया था। नियमित जप-ध्यान करने का अनुबन्धों सहित पालन करने के निर्देशन के अतिरिक्त यह भी बताया था कि चिन्तन में उपासना—चरित्र में साधना और व्यवहार में आराधना का समावेश करने में पूरी-पूरी सतर्कता और तत्परता बरती जाय। उस निर्देशन का अद्यावधि यथासम्भव ठीक तरह ही परिपालन हुआ है। उसी के कारण अध्यात्म-अवलम्बन का प्रतिफल इस रूप में सामने आया कि उसका सहज उपहास नहीं उड़ाया जा सकता।

आराधना का अर्थ है—लोकमंगल में निरत रहना। जीवन साधना प्रकारान्तर से संयम साधना है। उसके द्वारा न्यूनतम में निर्वाह चलाया और अधिकतम बचाया जाता है। समय, श्रम, धन और मन मात्र इतनी ही मात्रा शरीर तथा परिवार के लिए खर्च करना पड़ता है जिसके बिना काम न चले। काम न चलने की कसौटी है—औसत देशवासियों का स्तर। इस कसौटी पर कसने के उपरान्त किसी भी श्रमशील और शिक्षित व्यक्ति का उपार्जन इतना हो जाता है कि काम चलाने के अतिरिक्त भी बहुत कुछ बच सके। इसी के सदुपयोग को आराधना कहते हैं। आमतौर से लोग इस बचत को विलास में—अपव्यय में अथवा कुटुम्बियों में बिखेर देते हैं। उन्हें सूझ नहीं पड़ता कि इस संसार में और भी कोई अपने हैं—औरों की भी कुछ जरूरतें हैं। यदि दृष्टि में इतनी विशालता आयी होती तो उस बचत को ऐसे कार्यों में खर्च किया गया होता जिससे अनेकों का वास्तविक हित साधन होता और समय की माँग पूरी होने में सहायता मिलती।

ईश्वर का एक रूप साकार है जो ध्यान धारणा के लिए अपनी-अपनी रुचि और मान्यता के अनुरूप गढ़ा जाता है। यह मनुष्य से मिलती-जुलती आकृति-प्रकृति का होता हैं। यह गठन उस प्रयोजन के लिए है तो उपयोगी, आवश्यक, किन्तु साथ ही यह ध्यान रखने योग्य भी है कि वास्तविक नहीं, काल्पनिक है। ईश्वर एक है उसकी इतनी आकृतियाँ नहीं हो सकतीं जितनी कि भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों में गढ़ी गई हैं। उपयोग मन की एकाग्रता का अभ्यास करने तक ही सीमित रखा जाना चाहिए। प्रतिमा पूजन के पीछे आद्योपान्त प्रतिपादन इतना ही है कि दृश्य प्रतीक के माध्यम से अदृश्य दर्शन और प्रतिपादन को समझने, हृदङ्गम करने का प्रयत्न किया जाय।

सर्वव्यापी ईश्वर निराकार ही हो सकता है। उसे परमात्मा कहा गया है। परमात्मा अर्थात् आत्माओं का परम समुच्चय। इसे आदर्शों का एकाकार कहने में भी हर्ज नहीं। यही विराट् ब्रह्म या विराट् विश्व है। कृष्ण ने अर्जुन और यशोदा को अपने इसी रूप का दर्शन कराया था। राम ने कौशल्या तथा काकभुशुण्डि को इसी रूप में झलक के रूप में देखते हैं और प्राणियों को उनका दृश्य स्वरूप। इस मान्यता के अनुसार यह लोक सेवा ही विराट् ब्रह्म की आरधना बन जाती है। विश्व उद्यान को सुखी समुन्नत बनाने के लिए ही परमात्मा ने यह बहुमूल्य जीवन देकर अपने युवराज की तरह यहाँ भेजा है। इसकी पूर्ति में ही जीवन की सार्थकता है। इसी मार्ग का अधिक श्रद्धा पूर्वक अवलम्बन करने से अध्यात्म उत्कर्ष का वह प्रयोजन सधता है जिसे आराधना कहा गया है।

हम करते रहे हैं। सामान्य दिनचर्या के अनुसार रात्रि में शयन, नित्य कर्म के अतिरिक्त दैनिक उपासना भी उन्हीं बारह घण्टों में भली प्रकार सम्पन्न होती रही है। बारह घण्टे इन तीनों कर्मों के लिए पर्याप्त रहे है। चार घण्टा प्रातःकाल का भजन इसी अवधि में होता रहा है। शेष आठ घण्टे में नित्य कर्म और शयन—इसमें समय की कोताही कहीं नहीं पड़ी। आलस्य-प्रमाद बरतने पर तो पूरा समय ही ऐंड-बेंड में चला जाता है पर

एक-एक मिनट पर घोड़े की तरह सवार रहा जाय तो प्रतीत होता है कि जागरूक व्यक्तियों ने इसी में तत्परता बरतते हुए वे कार्य कर लिये होते जितने के लिए साथियों को आश्चर्य चकित रहना पड़ता है।

यह रात्रि का प्रसङ्ग हुआ। अब दिन आता है। उसे भी मोटे रूप में बारह घण्टे का माना जा सकता है। इसमें से दो घण्टे भोजन, विश्राम के लिए कट जाने पर दस घण्टे विशुद्ध बचत के रह जाते हैं। इनका उपयोग परमार्थ प्रयोजनों को लोक-मङ्गल अराधना में नियमित रूप से होता रहा है। संक्षेप में इन्हें इस प्रकार कहा जा सकता है—(१)जनमानस के परिष्कार के लिए युग चेतना के अनुरूप विचारणा का निर्धारण-साहित्य सृजन (२) सङ्गठन प्राणवान जागृत आत्माओं को युग धर्म के अनुरूप गतिविधियाँ अपनाने के लिए उत्तेजना मार्गदर्शन (३) व्यक्तिगत कठिनाईयों में से निकलने तथा सुखी भविष्य विनिर्मित करने तथा परामर्श योगदान। हमारी सेवा साधना इन तीन विभागों में बँटी रही है। इनमें दूसरी और तीसरी धारा के लिए असंख्यों व्यक्तियों से सम्पर्क साधना और पाना चलता रहा है। इनमें से अधिकाँश को प्रकाश और परिवर्त्तन का अवसर मिला है।

इनके नामोल्लेख और घटनाक्रमों का विवरण सम्भव नहीं। क्योंकि एक तो जिनकी सहायता की जाय, इनका स्मरण भी रखा जाय। यह अपनी आदत नहीं, फिर उनकी संख्या और विनिर्मित उतनी है कि जितने स्मरण हैं उनके वर्णन से ही एक महापुराण लिखा जा सकता है। फिर इसमें उनको आपत्ति भी हो सकती है। इन दिनों कृतज्ञता व्यक्त करने का प्रचलन समाप्त हो गया। दूसरों की सहायता को महत्व कम दिया जाय। अपने भाग्य या पुरुषार्थ का ही बखान किया जाय। दूसरों की सहायता के उल्लेख में हेटी लगती है। ऐसी दशा में अपनी ओर से उन घटनाओं का उल्लेख करना जिसमें लोगों के कष्ट घटें या प्रगति के अवसर मिलें, उचित न होगा। फिर एक और बात भी है कि बखान करने के बाद पुण्य घट जाता है। इतने व्यवधानों के रहते उस प्रकार की घटनाओं के सम्बन्ध में मौन धारण करना

ही उपयुक्त समझा जा रहा है और कुछ न कह कर ही प्रसङ्ग समाप्त किया जा रहा है।

इतने पर भी वे सेवाएँ महत्वपूर्ण हैं। अब तक प्रज्ञा परिवार से प्रायः २४ लाख से भी अधिक व्यक्ति सम्बन्धित हैं। उनमें से जो मात्र सिद्धान्तों, आदर्शों से प्रभावित होकर इस ओर आकर्षित हुए हैं, वे कम हैं। संख्या उनकी ज्यादा है, जिनने व्यक्तिगत जीवन में प्रकाश, दुलार, सहयोग, परामर्श एवं अनुदान प्राप्त किया है। ऐसे प्रसङ्ग मनुष्य के अन्तराल में स्थान बनाते हैं। विशेषतया तब जब सहायता करने वाला अपनी प्रामाणिकता एवं निस्वार्थता की दृष्टि से हर कसौटी पर खरा उतरता हो। सम्पर्क परिकर में मुश्किल से आधे तिहाई ऐसे होंगे जिन्हें मिशन के आदर्शों और हमारे प्रतिपादनों का गम्भीरतापूर्वक बोध है। शेष तो हैरानियों में दौड़ते और जलती परिस्थितियों में शान्तिदायक अनुभूतियाँ लेकर वापस लौटते रहे हैं। यही कारण है जिससे इतना बड़ा परिवार बनकर खड़ा हो गया। अन्यथा मात्र सिद्धान्त परक हा सब कुछ रहा होता तो आर्यसमाज, सर्वोदय की तरह सीमित सदस्य होते और व्यक्तिगत आत्मीयता घनिष्ठता का जो वातावरण दीखता है, वह न दीखता। आगन्तुकों की संख्या अधिक, समय—कुसमय आगमन, ठहराने, भोजन कराने जैसी व्यवस्थाओं का अभाव जैसे कारणों से इस दबाव का सर्वाधिक भार माताजी को सहन करना पड़ा है पर उस असुविधा के बदले जितनों की जितनी आत्मीयता अर्जित की है उसे देखते हुए हम लोग धन्य हो गये हैं। लगता है जो किया गया वह ब्याज समेत वसूल होता रहा है। पैसे की दृष्टि से न सही भावना की दृष्टि से भी यदि कोई कुछ कम ले तो वह उसके लिए घाटे का सौदा नहीं समझा जाना चाहिए।

आराधना के लिए—लोक साधना के लिए—गिरह की पूँजी चाहिए। उसके बिना भूखा क्या खाये ? क्या बाँटे ? यह पूँजी कहाँ से आई ? कहाँ से जुटाई ? इसके लिए मार्गदर्शक ने पहले ही दिन कहा था—जो पास में

है, उसे बीज की तरह भगवान के खेत में बोना सीखा ? उसे जितनी बार बोया गया सौ गुना होता चला गया अभीष्ट प्रयोजन में कभी किसी बात की कमी न पड़ेगी। उनने बाबा जलाराम का उदाहरण दिया था, जो किसान थे अपनी पेट से बचने वाली सारी आमदनी जरूरत मंदों को खिलाते थे। भगवान इस सच्ची साधना से अतिशय प्रसन्न हुए और एक ऐसी अक्षय झोली दे गये, जिसका अन्न कभी निपटा ही नहीं और अभी भी वीरपुर (गुजरात) में उनका अन्न सत्र चलता रहता है, जिसमें हजारों भक्तजन प्रतिदिन भोजन करते हैं। जो अपना लगा देता है उसे बाहर का सहयोग बिना माँगें मिलता है। पर जो अपनी पूँजी सुरक्षित रखता है दूसरों से माँगता फिरता है, उस चन्दा उगाहने वाले पर लोग व्यंग्य ही करते रहते हैं और यत्किंचित देकर पल्ला छुड़ाते रहते हैं।

गुरुदेव के निर्देशन में अपनी चारों ही सम्पदाओं को भगवान के चरणों में अर्पित करने का निश्चय किया। (१) शारीरिक श्रम (२) मानसिक श्रम (३) भाव-सम्वेदनाएँ (४) पूर्वजों का उपार्जित धन। अपना कमाया तो कुछ था नहीं। चारों को अनन्य निष्ठा के साथ निर्धारित लक्ष्य के लिए लगाते चले आये हैं। फलतः सचमुच ही वे सौगुने होकर वापस लौटते रहे हैं। शरीर से बारह घण्टा नित्य श्रम किया है। इससे थकान नहीं आई। वरन् कार्य क्षमता बढ़ी ही है। इन दिनों इस बुढ़ापे में भी जवानों जैसी कार्य क्षमता है। मानसिक श्रम भी शारीरिक श्रम के साथ सँजोये रखा। उसकी परिणति यह है कि मनोबल में—मस्तिष्कीय क्षमता में कहीं कोई ऐसे लक्षण प्रकट नहीं हुए जैसे कि आमतौर से बुढ़ापे में प्रकट होते हैं। हमने खुलकर प्यार बाँटा और बिखेरा है। फलस्वरूप दूसरी ओर से भी कमी न रही है। व्यक्तिगत स्नेह, सम्मान, सद्भाव ही नहीं—मिशन के लिए जब-जब जो जो अपील अनुरोध प्रस्तुत किये जाते रहे हैं, उनमें कमी नहीं पड़ती रही है। २४०० प्रज्ञापीठों का दो वर्ष में बनकर खड़े हो जाना इसका एक जीवन्त उदाहरण है। आरम्भ में मात्र अपना ही धन था। पैतृक सम्पत्ति से ही

गायत्री तपोभूमि का निर्माण हुआ। जन्मभूमि में हाईस्कूल खड़ा किया गया बाद में एक और शक्ति पीठ वहाँ विनिर्मित हो गया। आशा कम ही थी कि लोग बिना माँगे भी देंगे और निर्माण का इतना बड़ा स्वरूप खड़ा हो जायेगा। आज गायत्री तपोभूमि, शान्ति कुञ्ज, गायत्री तीर्थ, ब्रह्मवर्चस् की इमारतों को देखकर भी यह अनुमान लगाया जा सकता है कि बोया हुआ बीज सौ गुना होकर फलता है या नहीं। यह श्रद्धा का अभाव ही है जिसमें लोग अपना संचय बगल में दबाये रहना चाहते हैं, भगवान से लाटरी अथवा लोगों से चन्दा माँगते हैं। यदि बात आत्मसमर्पण से प्रारम्भ की जा सके तो उसका आश्चर्यजनक परिणाम होगा। विनिर्मित गायत्री शक्ति पीठों में से जूनागढ़ के निर्माता ने अपने बर्तन बेचकर कार्य आरम्भ किया था और वही अब तक विनिर्मित, सभी इमारतों में मूर्धन्यों में से एक है।

बाजरे का—मक्का का एक दाना सौ दाने होकर पकता है। यह उदाहरण हमने अपनी संचित सम्पदा के उत्सर्ग करने जैसा दुस्साहस करने में देखा। जो था, वह परिवार के लिए उतनी ही मात्रा में—उतनी ही अवधि तक दिया जाय जब तक कि वे लोग हाथ पैरों से कमाने खाने लायक नहीं बन गये। उत्तराधिकार में समर्थ सन्तान हेतु सम्पदा छोड़ मरना—अपना श्रम मनोयोग उन्हीं के लिए खपाते रहना हमने सदा अनैतिक माना और विरोध किया है। फिर स्वयं वैसा करते भी कैसे ? मुफ्त की कमाई हराम की होती है, भले ही वह पूर्वजों की खड़ी की हुई हो। हराम की कमाई न पचती है न फलती है। इस आदर्श पर परिपूर्ण विश्वास रखते हुए हमने शारीरिक श्रम, मनोयोग, भाव सम्वेदन और संग्रहीत धन की चारों सम्पदाओं में से किसी को भी कुपात्रों के हाथ नहीं जाने दिया है। उसका एक-एक कण सज्जनता के सम्बर्धन में—भगवान के आराधन में लगाया है। परिणाम सामने है। जो पास में था उससे अगणित लाभ उठा चुके। यदि कृपणों की तरह उन उपलब्धियों को विलास में, लालच में, संग्रह में, परिवार वालों को धन-कुबेर बनाने में खर्च किया होता तो वह सब कुछ बेकार चला जाता। कोई महत्वपूर्ण काम न बनता वरन् जो भी

उस मुफ्त के श्रम साधन का उपयोग करते वे दुर्गुण, दुर्व्यसनी बनकर नफे में नहीं घाटे में ही रहते।

कितने पुण्य फल ऐसे हैं जिनके सत्परिणाम प्राप्त करने के लिए अगले जन्म की प्रतीक्षा करनी पड़ती है पर लोक साधना का परमार्थ ऐसा प जिसका प्रतिफल हाथों-हाथ मिलता है। किसी दुःखी के आँसू पोंछते समय असाधारण आत्म सन्तोष होता है। कोई बदला न चुका सके तो भी उपकारी का मन ही मन सम्मान करता है आशीर्वाद कहता है। इसके अतिरिक्त एक ऐसा दैवी विधान जिसके अनुसार उपकारी का भण्डार खाली नहीं होता उस पर ईश्वरीय अनुग्रह बरसता रहता है और जो खर्चा गया है उसकी भरपाई करता रहाता है।

भेड़ ऊन कटाती रहती है हर वर्ष उसे नई ऊन मिलती है। पेड़ फल देते हैं अगलीबार टहनियाँ फिर उसी तरह लद जाती हैं। बादल बरसते हैं पर खाली नहीं होते। अगले दिनों वे फिर उतनी ही जल सम्पदा बरसाने के लिए समुद्र से प्राप्त कर लेते हैं। उदारचेताओं के भण्डार कभी खाली नहीं हुए। किसी ने कुपात्रों को अपना श्रम-समय देकर भ्रमवश दुष्प्रवृत्तियों का पोषण किया हो और उसे भी पुण्य समझा हो तो फिर बात दूसरी है। अन्यथा लोक साधना के परमार्थ का प्रतिफल ऐसा है जो हाथों-हाथ मिलता है। आत्मसन्तोष, लोक सम्मान, दैवी अनुग्रह के रूप में तीन गुना सत्परिणाम प्रदान करने वाला व्यवसाय ऐसा है जिसमें जिसने भी हाथ डाला कृतकृत्य होकर रहा है। कृपण ही हैं जो चतुरता में दम भरते किन्तु हर दृष्टि से घाटा उठाते हैं।

लोक साधना का महत्व तब घटता है जब उसके बदले नामवरी लूटने की ललक होती है। यह तो अखबारों में इश्तहार छपा कर विज्ञापन बाजी करने जैसा व्यवसाय है। एहसान जताने और बदला चाहने से भी पुण्यफल नष्ट होता है। दोस्तों के दबाव से किसी भी काम के लिए चन्दा दे बैठने से भी दान की भावना पूर्ण नहीं होती। देखा यह जाना चाहिए कि इस प्रयास के फलस्वरूप सद्भावनाओं का सम्बर्धन होता है या नहीं, सत्प्रवृत्तियों को

अग्रगामी बनाने का सुयोग बनता है या नहीं। सङ्कटग्रस्तों को विपत्ति से निकालने और सत्प्रवृत्तियों को आगे बढ़ाने में जो कार्य सहायक हों उन्हीं की सार्थकता है। अन्यथा मुफ्तखोरी बढ़ाने और छल प्रपंच से भोले भाले लोगों को लूटते खाते रहने के लिए इन दिनों अगणित आडम्बर चल पड़े हैं। उनमें धन या समय देने से पूर्व हजार बार यह विचार करना चाहिए कि अपने प्रयत्नों की अन्तिम परिणति क्या होगी? इस दूरदर्शी विवेकशीलता का अपनाया जाना इन दिनों विशेष रूप से आवश्यक है। हमने ऐसे प्रसङ्गों में स्पष्ट इनकारी भी व्यक्त की है। औचित्य-सनी उदारता के साथ-साथ अनौचित्य की गन्ध अपनाने पर अनुदारता अपनाने और नाराजी का खतरा लेने का भी साहस किया हैं। आराधना में इन तथ्यों का समावेश भी नितान्त आवश्यक है।

उपरोक्त तीनों प्रसंगों में हमारे जीवन दर्शन की एक झलक मिलती हैं। यह वह मार्ग है, जिस पर सभी महामानव चले एवं लक्ष्य प्राप्ति में सफल हो यश के भागी बने हैं। किसी प्रकार के "शार्ट कट" का इसमें कोई स्थान नहीं है।

तीसरी हिमालय यात्रा—
ऋषि परम्परा का बीजारोपण

मथुरा का कार्य सुचारु रूप से चल पड़ने के उपरान्त हिमालय से तीसरा बुलावा आया, जिसमें अगले चौथे कदम को उठाये जाने का संकेत था। समय भी काफी हो गया था। इस बार कार्य का दबाव अत्यधिक रहा और सफलता के साथ-साथ थकान बढ़ती गयी थी। ऐसी परिस्थितियों में बैटरी चार्ज करने का यह निमन्त्रण हमारे लिए बहुत ही उत्साहवर्धक था।

निर्धारित दिन प्रयाण आरम्भ हो गया। देखे हुए रास्ते को पार करने में कोई कठिनाई नहीं हुई। फिर मौसम भी ऐसा रखा गया था जिसमें शीत के कड़े प्रकोप का सामना न करना पड़ता और एकाकीपन की की प्रथम बार जैसी कठिनाई न पड़ती। गोमुख पहुँचने पर गुरुदेव के छाया पुरुष का मिलना और अत्यन्त सरलतापूर्वक नन्दन वन पहुँचा देने का क्रम पिछली बार जैसा ही रहा। सच्चे आत्मीयजनों का पारस्परिक मिलन कितना आनन्द-उल्लास भरा होता है इसे भुक्त-भोगी ही जानते हैं। रास्ते भर जिस शुभ घड़ी की प्रतीक्षा करनी पड़ी वह आखिर आ ही गयी। अभिवादन आशीर्वाद का क्रम चला और पीछे बहुमूल्य मार्गदर्शन का सिलसिला चल पड़ा।

अब की बार मथुरा छोड़कर हरिद्वार डेरा डालने का निर्देश मिला और कहा गया कि "वहाँ रहकर ऋषि परम्परा को पुनर्जीवित करने का कार्य आरम्भ करना है। तुम्हें याद है न, जब यहाँ प्रथम बार आये थे और हमने सूक्ष्म शरीरधारी इस क्षेत्र के ऋषियों का दर्शन कराया था। हर एक ने उनकी परम्परा लुप्त हो जाने पर दुःख प्रकट किया था और तुमने

यह वचन दिया था कि इस कार्य को भी सम्पन्न करोगे। इस बार उसी निमित्त बुलाया गया है।

भगवान अशरीरी हैं। जब कभी उन्हें महत्वपूर्ण कार्य कराने होते हैं तो ऋषियों के द्वारा कराते हैं। महापुरुषों को वे बनाकर खड़े कर देते हैं। स्वयं तप करते हैं और अपनी शक्ति देवात्माओं को देकर बड़े काम करा लेते हैं। भगवान राम को विश्वामित्र अपने यहाँ रक्षा के बहाने ले गये और वहाँ बला—अतिबला विद्या—(गायत्री और सावित्री) की शिक्षा देकर उनके द्वारा असुरता का दुर्ग ढहाने तथा राम राज्य धर्मराज्य—की स्थापना का कार्य कराया था। कृष्ण भी संदीपन ऋषि के आश्रम में पढ़ने गये थे और वहाँ से गीता गायन, महाभारत निर्णय तथा सुदामा ऋषि की कार्य पद्धति को आगे बढ़ाने का निर्देशन लेकर वापस लौटे थे। समस्त पुराण इसी उल्लेख से भरे पड़े हैं कि ऋषियों के द्वारा महापुरुष उत्पन्न किए गये और उनकी सहायता से महान कार्य सम्पादित कराये गये। स्वयं तो वे शोध प्रयोजनों में और तप साधनाओं में संलग्न रहते ही थे। इसी कार्य को तुम्हें अब पूरा करना है।"

"गायत्री के मन्त्र दृष्टा विश्वामित्र थे। उनने सप्त सरोवर नामक स्थान पर रहकर गायत्री की पारंगतता, प्राप्त की थी वही स्थान तुम्हारे लिए भी नियत है। उपयोगी स्थान तुम्हें सरलतापूर्वक मिल जायगा। उसका नाम शान्ति-कुञ्ज गायत्री तीर्थ रखना और उन सब कार्यों का बीजारोपण करना जिन्हें पुरातन काल के ऋषिगण स्थूल शरीर से करते रहे हैं। अब वे सूक्ष्म शरीर में हैं। इसलिए अभीष्ट प्रयोजन के लिए किसी शरीरधारी को माध्यम बनाने की आवश्यकता पड़ ही रही है। हमें भी तो ऐसी आवश्यकता पड़ी और तुम्हारे स्थूल शरीर को इसके लिए सत्पात्र देखकर सम्पर्क बनाया और अभीष्ट कार्यक्रमों में लगाया। यही इच्छा इन सभी ऋषियों की है। तुम उनकी परम्पराओं का नये सिरे से बीजारोपण करना। उन कार्यों में अपेक्षाकृत भारीपन रहेगा और कठिनाई भी अधिक रहेगी। किन्तु साथ ही एक अतिरिक्त लाभ भी है कि हमारा ही नहीं, उन सबका भी संरक्षण और अनुदान तुम्हें मिलता रहेगा। इसलिए कोई कार्य रुकेगा नहीं।"

जिन ऋषियों के छोड़े कार्य को हमें आगे बढ़ाना था, उनका संक्षिप्त विवरण बताते हुए उन्होंने कहा—विश्वामित्र परम्परा में गायत्री महामन्त्र की शक्ति से जन-जन को अवगत कराना एवं एक सिद्ध पीठ—गायत्री तीर्थ का निर्माण करना है। व्यास परम्परा में—आर्ष साहित्य के अलावा अन्यान्य पक्षों पर साहित्य सृजन एवं प्रज्ञा पुराण के १८ खण्डों को लिखने का, पातञ्जलि परम्परा में—योग साधना के तत्वज्ञान के विस्तार का, परशुराम परम्परा में अनीति उन्मूलन हेतु जन-मानस के परिष्कार के वातावरण निर्माण का तथा भागीरथ परम्परा में ज्ञान गंगा को जन-जन तक पहुँचाने का दायित्व सौंपा गया। चरक परम्परा में वनौषधि पुनर्जीवन एवं वैज्ञानिक अनुसंधान, याज्ञवल्क्य परम्परा में यज्ञ से मनोविकारों के शमन द्वारा समग्र चिकित्सा पद्धति का निर्धारण, जमदग्नि परम्परा में साधना आरण्यक का निर्माण एवं संस्कारों का बीजारोपण, नारद परम्परा में सत्परामर्श—परिव्रजा के माध्यम से धर्म चेतना का विस्तार, आर्यभट्ट परम्परा में धर्मतन्त्र के माध्यम से राजतन्त्र का मार्गदर्शन, शंकराचार्य परम्परा में स्थान-स्थान पर प्रज्ञा संस्थानों के निर्माण का, पिप्पलाद परम्परा में आहार-कल्प के माध्यम से समग्र स्वास्थ्य सम्वर्धन एवं सूत-शौनिक परम्परा में स्थान-स्थान पर प्रज्ञा-योजनों द्वारा लोक शिक्षण की रूपरेखा के सूत्र हमें बताये गए। अथर्ववेदीय विज्ञान परम्परा में कणाद ऋषि प्रणीत वैज्ञानिक अनुसंधान पद्धति के आधार पर ब्रह्मवर्चस् शोध संस्थान की रूपरेखा बनी।

हरिद्वार रहकर हमें क्या करना है और मार्ग में आने वाली कठिनाइयों का समाधान कैसे करना है? यह हमें ऊपर बताए निर्देशों के अनुसार हम से विस्तारपूर्वक बता दिया गया। सभी बातें पहले की ही तरह गाँठ बाँधली। पिछली बार मात्र गुरुदेव अकेले की ही इच्छाओं की पूर्ति का कार्य भार था। अबकी बार इतनों का बोझ लादकर चलना पड़ेगा। गधे को अधिक सावधानी रखनी पड़ेगी और अधिक मेहनत भी करनी पड़ेगी।

साथ ही इतना सब कर लेने पर चौथी बार आने और उससे भी बड़ा उत्तरदायित्व सम्भालने तथा स्थूल शरीर अपनाने का कदम बढ़ाना पड़ेगा।

यह सब इस बार उनने स्पष्ट नहीं किया, मात्र संकेत ही दिया।

यह भी बताया कि हरिद्वार की कार्य पद्धति मथुरा के कार्यक्रम से बड़ी है। इसलिए उतार-चढ़ाव भी बहुत रहेंगे। असुरता के आक्रमण भी सहने पड़ेंगे, आदि-आदि बातें उन्होंने पूरी तरह समझा दीं। समय की विषमता को देखते हुए उस क्षेत्र में अधिक रुकना उन्हें उचित न लगा और एक वर्ष के स्थान पर छः महीने रहने का ही निर्देश दिया। कहाँ, किस प्रकार रहना और किस दिनचर्या का निर्वाह करना, यह उनने समझाकर बात समाप्त की और पिछली बार की भाँति ही अन्तर्ध्यान होते हुए चलते-चलते यह कह गये कि "इस कार्य को सभी ऋषियों का सम्मिलित कार्य समझना, मात्र हमारा नहीं।" हमने भी विदाई का प्रणाम करते हुए इतना ही कहा कि "हमारे लिए आप ही समस्त देवताओं के, समस्त ऋषियों के और परब्रह्म के प्रतिनिधि हैं। आपके आदेश को इस शरीर के रहते टाला न जायेगा।"

बात समाप्त हुई। हम विदाई लेकर चल पड़े। छाया पुरुष (वीरभद्र) ने गोमुख तक पहुँचा दिया। आगे अपने पैरों से बताये हुए स्थान के लिए चल पड़े।

जिन-जिन स्थानों पर इन यात्राओं में हमें ठहरना पड़ा, उनका उल्लेख यहाँ इसलिए नहीं किया गया कि वे सभी दुर्गम हिमालय में गुफाओं के निवासी थे। समय-समय पर स्थान बदलते रहते थे। अब तो उनके शरीर भी समाप्त हो गए। ऐसी दशा में उल्लेख की आवश्यकता न रही।

लौटते हुए हरिद्वार उसी स्थान पर रुके, सप्त ऋषियों की तपोभूमि में, जिस स्थान का संकेत गुरुदेव ने किया था। काफी हिस्सा सुनसान पड़ा था और बिकाऊ भी था। जमीन पानी उगलती थी। पहले यहाँ गंगा बहती थी। यह स्थान सुहाया भी। जमीन के मालिक से चर्चा हुई और शेष जमीन का सौदा आसानी से पट गया। उसे खरीदने में लिखा-पढ़ी कराने में विलम्ब न हुआ। जमीन मिल जाने के उपरान्त यह देखना था कि वहाँ कहाँ, क्या बनाना है। यह भी एकाकी ही निर्णय करना पड़ा। सलाहकारों का परामर्श काम न आया, क्योंकि उन्हें बहुत कोशिश करने पर भी यह नहीं समझाया

जा सका कि यहाँ किस प्रयोजन के लिए किस आकार-प्रकार का निर्माण होना है। वह कार्य भी हमने ही पूरा किया। इस प्रकार शान्ति-कुन्ज—गायत्री तीर्थ की स्थापना हुई।

शांति कुन्ज में गायत्री तीर्थ की स्थापना :

मथुरा से प्रयाण के बाद हिमालय से ६ माह बाद ही हम हरिद्वार उस स्थान पर लौट आए, जहाँ निर्धारित स्थान पर शान्ति-कुन्ज के एक छोटे से भवन में माताजी व उनके साथ रहने वाली कन्याओं के रहने योग्य निर्माण हम पूर्व में करा चुके थे। अब और जमीन लेने के उपरान्त पुनः निर्माण कार्य आरम्भ किया। इच्छा ऋषि आश्रम बनाने की थी। सर्वप्रथम अपने लिए, सहकर्मियों के लिए, अतिथियों के लिए निवास स्थान और भोजनालय बनाया गया।

यह आश्रय ऋषियों का—देवात्मा हिमालय का प्रतिनिधि करता है। इसलिए उत्तराखण्ड का गंगा का प्रतीक देवालय यहाँ बनाया गया। इसके अतिरिक्त सात प्रमुख तथा अन्यान्य वरिष्ठ ऋषियों की प्रतिमाओं की स्थापना का प्रबन्ध किया गया। आद्य शक्ति गायत्री का मन्दिर तथा जल कूपों का निर्माण कराया गया, प्रवचन कक्ष का भी। इस निर्माण में प्रायः दो वर्ष लग गये। अब निवास के योग्य आवश्यक व्यवस्था हो गई तब हम और माताजी ने नव निर्मित शांति-कुन्ज को अपनी तपःस्थली बनाया। साथ में अखण्ड-दीपक भी था। उसके लिए एक कोठरी और गायत्री प्रतिमा की स्थापना करने के लिए सुविधा पहले ही बन चुकी थी।

इस बंजर पड़ी भूमि के प्रसुप्त पड़े संस्कारों को जगाने के लिए २४ लक्ष्य के २४ अखण्ड पुरश्चरण कराये जाने थे। इसके लिए ९ कुमारियों का प्रबन्ध किया। प्रारम्भ में चार घण्टे दिन में, चार घण्टे रात्रि में इनकी ड्यूटी थी। बाद में इनकी संख्या २७ हो गयी। तब समय कम कर दिया गया। इन्हें दिन में माताजी पढ़ाती थीं। छै वर्ष उपरान्त इन सबको ग्रेजुएट—पोस्ट

ग्रेजुएट स्तर की पढ़ाई आरम्भ कर दी। बीस और पच्चीस बर्ष की आयु के मध्य इन सबके सुयोग्य घरों और वरों के साथ विवाह कर दिये गये।

इसके पूर्व संगीत और प्रवचन का अतिरिक्त प्रशिक्षण क्रम भी चलाया गया। देश व्यापी नारी जागरण के लिए इन्हें मोटर गाड़ियों में पाँच-पाँच के जत्थे बनाकर भेजा गया। तब तक पढ़ने वाली कन्याओं का संख्या १०० से ऊपर हो गई थी। इनके दौरे का देश के नारी समाज पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा।

हरिद्वार से ही तेजस्वी कार्यकर्ताओं को ढालने का कार्य हाथ में लिया गया। इसके लिए प्राण प्रत्यावर्तन सत्र, एक-एक मास के युग शिल्पी सत्र एवं वानप्रस्थ सत्र भी लगाये गए। सामान्य उपासकों के लिए छोटे-बड़े गायत्री पुरश्चरणों की शृंखला भी चल पड़ी। गंगा का तट, हिमालय की छाया, दिव्य वातावरण, प्राणवान मार्ग दर्शन जैसी सुविधाओं को देखकर पुरश्चरण कर्ता भी सैकड़ों की संख्या में निरन्तर आने लगे। पूरा समय देनें वाले वानप्रस्थों का प्रशिक्षण भी अलग से चलता रहा। दोनों प्रकार के साधकों के लिए भोजन का प्रबन्ध किया गया।

यह नई संख्या निरन्तर बढ़ती जाने लगी। ऋषि परम्परा को पुनर्जीवित करने के लिए इसकी आवश्यकता भी थी कि सुयोग्य आत्मदानी पूरा समय देकर हाथ में लिये हुए महान कार्य की पूर्ति के लिए आवश्यक आत्म बल संग्रह करें और उसके उपरान्त व्यापक कार्यक्रम में जुट पड़ें।

बढ़ते हुए कार्य को देखकर गायत्री नगर में २४० क्वार्टर बनाने पड़ें। एक हजार व्यक्तियों के प्रवचन में सम्मिलित हो सकने जितने बड़े आकार का प्रवचन हाल बनाना पड़ा। इस भूमि को अधिक संस्कारवान बनाना था। इसलिए नौ कुण्ड की यज्ञशाला में प्रातःकाल दो घन्टे यज्ञ किए जाने की व्यवस्था की, और आश्रम में स्थायी निवासियों तथा पुरश्चरण कर्त्ताओं का औसत जप इस अनुपात से निर्धारित किया गया कि हर दिन २४ लक्ष गायत्री महापुरश्चरण सम्पन्न होता रहे। आवश्यक कार्यों के लिए एक छोटा प्रेस भी लगाना पड़ा। इन सब कार्यों के लिए निर्माण कार्य अब तक एक

प्रकार से बराबर ही चलता रहा। इसी बीच ब्रह्म वर्चस शोध संस्थान के लिए भव्य भवन बनाना आरम्भ कर दिया था। इस सारे निर्माण में प्रायः चार वर्ष लग गए। इसी बीच वे कार्य आरम्भ कर दिये गए जिन्हें सम्पन्न करने से ऋषि परम्परा का पुनर्जीवन हो सकता था। जैसे-तैसे सुविधा बनती गई, वैसे-वसे नये कार्य हाथ में लिये गये और कहने योग्य प्रगति स्तर तक पहुँचाये गये।

भगवान बुद्ध ने नालन्दा, तक्षशिला जैसे विश्वविद्यालय स्तर के विहार बनाये थे और उनमें प्रशिक्षित करके कार्यकर्ता देश के कोने-कोने में तथा विदेशों में भेजे गये थे। धर्मचक्र प्रवर्त्तन की योजना तभी पूरी हो सकी थी।

भगवान आद्य शंकराचार्य ने देश के चार कोनों पर चार धाम बनाये थे और उनके माध्यम से देश में फैले हुए अनेक मत मतान्तरों को एक सूत्र में पिरोया था। दोनों ने अपने-अपने कार्य क्षेत्रों में एक कुम्भ स्तर के बड़े सम्मेलन समारोहों की व्यवस्था की थी ताकि जो ऋषियों के मुख्य-मुख्य सन्देश हों, वे आगन्तुकों द्वारा घर-घर पहुँचाये जा सकें।

इन दोनों के ही क्रिया-कलापों को हाथ में लिया गया। निश्चय किया गया कि गायत्री शक्ति पीठों, प्रज्ञा संस्थानों के नाम से देश के कोने-कोने में भव्य देवालय एवं कार्यालय बनाये जाँय, जहाँ केन्द्र बनाकर समीपवर्त्ती क्षेत्रों में वे काम किये जा सकें, जिनको प्रज्ञा मिशन का प्रण संकल्प कहा जा सके।

बात असम्भव लगती थी किन्तु प्राणवान परिजनों को शक्ति पीठ निर्माण के संकल्प दिये गये तो २४०० भवन दो वर्ष के भीतर बन गये। उस क्षेत्र के कार्यकर्त्ता उसे केन्द्र मानकर युग चेतना का आलोक वितरण करने और घर-घर अलख जगाने के काम में जुट पड़े। यह एक इतना बड़ा और इतना अद्‌भुत कार्य है जिसकी तुलना में ईसाई मिशनरियों के द्वारा किये गए निर्माण कार्य भी फीके पड़ जाते हैं। हमारे निर्माणों में जन-जन का अल्पांश लगता है अतः वह सबको अपना लगता है, जबकि चर्च, अन्यान्य बड़े मन्दिर बड़ी धनराशियों से बनाए जाते हैं।

इसके अतिरिक्त चल प्रज्ञापीठों की योजना बनी। एक कार्यकर्ता एक संस्था चला सकता है। यह चल गाड़ियाँ हैं। इन्हें कार्यकर्ता अपने नगर तथा समीपवर्ती क्षेत्रों में धकेल कर ले जाते हैं। पुस्तकों के अतिरिक्त आवश्यक सामान भी उसकी कोठी में भरा रहता है। यह चल पुस्तकालय अपेक्षाकृत अधिक सुविधाजनक रहे, इसलिए वे दो वर्ष में १२ हजार की संख्या में बन गये। स्थिर प्रज्ञा पीठों और चल प्रज्ञा संस्थानों के माध्यम से हर दिन प्रायः एक लाख व्यक्ति इनसे प्रेरणा प्राप्त करते हैं।

इसके अतिरिक्त उपरोक्त हर संस्था का वार्षिकोत्सव करने का निश्चय किया गया जिसमें उस क्षेत्र के न्यूनतम एक हजार कार्यकर्ता एकत्रित हों। चार दिन सम्मेलन चले। नये वर्ष का सन्देश सुनाने के लिए हरिद्वार से प्रचारक मण्डलियाँ कन्याओं की टोलियों के समान ही भेजने का प्रबन्ध किया गया, जिनमें ४ गायक और एक वक्ता भेजे गये। पाँच प्रचारकों की टोली के लिए जीप गाड़ियों का प्रबन्ध करना पड़ा ताकि कार्यकर्ताओं के बिस्तर, कपड़े संगीत, उपकरण, लाउडस्पीकर आदि सभी सामान भली प्रकार जा सके। ड्राइवर भी अपना ही कार्यकर्ता होता है ताकि वह भी छठे प्रकार का काम दे सके। अब हर प्रचारक को जीप व कार ड्राइविंग सिखाने की व्यवस्था की गई है, ताकि इस प्रयोजन के लिए बाहर के आदमी न तलाशने पड़े।

मथुरा रहकर महत्वपूर्ण साहित्य लिखा जा चुका था। हरिद्वार आकर प्रज्ञा पुराण का मूल उपनिषद पक्ष संस्कृत व कथा टीका सहित हिन्दी में १८ खण्डों का लिखने का निश्चय किया गया। पाँच खण्ड प्रकाशित भी हो चुके। इसके अतिरिक्त एक फोल्डर आठ पेज का नित्य लिखने का निश्चय किया गया जिनके माध्यम से सभी ऋषियों की कार्यपद्धति से सभी प्रज्ञा पुत्रों को अवगत कराया जा सके और उन्हें करने में संलग्न होने की प्रेरणा मिल सके। अब तक इस प्रकार के ४०० फोल्डर लिखे जा चुके हैं। उनको भारत की अन्य भाषाओं में अनुवाद कराने का प्रबन्ध चल पड़ा व देश के कोने-कोने में यह साहित्य पहुँचा है।

देश की सभी भाषाओं और सभी मत-मतान्तरों को पढ़ाने और उनके माध्यम से हर क्षेत्र में कार्यकर्त्ता तैयार करने के लिए एक अलग भाषा एवं धर्म विद्यालय शान्ति-कुन्ज में ही इसी वर्ष बनकर तैयार हुआ है और ठीक तरह चल पड़ा है।

उपरोक्त कार्यक्रमों को लेकर जो भी कार्यकर्त्ता देशव्यापी दौरा करते हैं, वे मिशन के प्रायः १० लाख कार्यकर्त्ताओं में उन क्षेत्रों में प्रेरणाएँ भरने का काम करते हैं, जहाँ वे जाते हैं। उत्तर प्रदेश, राजस्थान, बिहार, मध्य प्रदेश, हिमांचल प्रदेश, हरियाणा महाराष्ट्र, गुजरात एवं उड़ीसा इन क्षेत्रों में संगठन पूरी तरह सुव्यवस्थित हो गया है। अब देश का जो भाग प्रचार क्षेत्र में भाषा व्यवधान के कारण सम्मिलित करना नहीं बन पड़ा है उन्हें भी एकाध वर्ष में पूरी कर लेने की योजना है।

प्रवासी भारतीय प्रायः ७४ देशों में बिखरे हुए हैं। उनकी संख्या भी तीन करोड़ के करीब हैं। उन तक व अन्य देशवासियों तक मिशन के विचारों को फैलाने की योजना बड़ी सफलता पूर्वक आरम्भ हुई है। आगे चलकर कई सुयोग्य कार्यकर्ताओं के माध्यम से कई राष्ट्रों में प्रज्ञा आलोक पहुँचाना सम्भव बन पड़ेगा। कदाचित् ही कोई देश अब ऐसा शेष रहा हो जहाँ प्रवासी भारतीय रहते हों और मिशन का संगठन न बना हो।

ऊपर की पंक्तियों में ऋषियों की कार्य पद्धति को जहाँ जिस प्रकार व्यापक बनाना सम्भव हुआ है वहाँ उसके लिए प्रायः एक हजार आत्मदानी कार्यकर्त्ता निरन्तर कार्यरत रहकर काम कर रहे हैं। इसके लिए ऋषि जमदग्नि का गुरुकुल आरण्यक यहाँ नियमित रूप से चलता है।

चरक परम्परा का पुनरुद्धार किया गया है। दुर्लभ जड़ी-बूटियों का शान्ति-कुंज में उद्यान लगाया गया है। और उनमें हजारों वर्षों में क्या अन्तर आया है, यह बहु-मूल्य मशीनों से जाँच पड़ताल की जा रही है। एक औषधि का एक बार में प्रयोग करने की एक विशिष्ट पद्धति यहाँ क्रियान्वित की जा रही है, जो अत्यधिक सफल हुई है।

युग शिल्पी विद्यालय के माध्यम से सुगम संगीत की शिक्षा हजारों

व्यक्ति प्राप्त कर चुके हैं और अपने-अपने यहाँ ढपली जैसे छोटे से माध्यम द्वारा संगीत विद्यालय चलाकर युग गायक तैयार कर रहे हैं।

पृथ्वी अन्तर्ग्रही वातावरण से प्रभावित होती है। उसकी जानकारी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। हर पाँच हजार वर्ष पीछे ज्योतिष गणित को सुधारने की आवश्यकता होती है। आर्यभट्ट की इस विधा को नूतन जीवन प्रदान करने के लिए प्राचीन काल के उपकरणों वाली समग्र वेधशाला विनिर्मित की गई हैं। और नेपच्यून, प्लेटो, यूरेनस ग्रहों के वेध समेत हर वर्ष दृश्य गणित पंचाँग प्रकाशित होता है। यह अपने ढंग का एक अनोखा प्रयोग है।

अब प्रकाश चित्र विज्ञान का नया कार्य हाथ में लिया गया है। अब तक सभी संस्थानों में प्रोजेक्टर पहुँचाये गये थे। उन्हीं से काम चल रहा था। अब वीडियो क्षेत्र में प्रवेश किया गया है। उनके माध्यम से कविताओं के आधार पर प्रेरक फिल्में बनायी जा रही हैं। देश के विद्वानों, मनीषियों मूर्धन्यों नेताओं के दृश्य प्रवचन टेप कराकर उनकी छवि समेत सन्देश घर-घर पहुँचाये जा रहे हैं। भविष्य में मिशन के कार्यक्रमों का उद्देश्य, स्वरूप और प्रयोग समझाने वाली फिल्में बनाने की बड़ी योजना है जो जल्दी ही कार्यान्वित होने जा रही है।

शान्ति-कुञ्ज मिशन का सबसे महत्वपूर्ण सृजन है "ब्रह्मवर्चस् शोध संस्थान"। इस प्रयोगशाला द्वारा अध्यात्म और विज्ञान का समन्वय करने के लिए बहुमूल्य यन्त्र उपकरणों वाली प्रयोगशाला बनाई गई है। कार्यकर्त्ताओं में आधुनिक आयुर्विज्ञान एवं पुरातन आयुर्वेद विधा के ग्रेजुएट और पोस्ट ग्रेजुएट हैं। विज्ञान की अन्य विधाओं में निष्णात उत्साही कार्यकर्ता हैं, जिनकी रुचि अध्यात्म परक है। इसमें विशेष रूप से यज्ञ विज्ञान पर शोध की जा रही है। इस आधार पर यज्ञ विज्ञान की शारीरिक, मानसिक रोगों की निवृत्ति में–पशुओं और वनस्पतियों के लिए लाभदायक सिद्ध करने में, वायुमण्डल और वातावरण के संशोधन में इसकी उपयोगिता जाँची जा रहा है, जो अब तक बहुत ही उत्साह वर्धक सिद्ध हुई है।

यहाँ सभी सत्रों में आने वालों की स्वास्थ्य परीक्षा की जाती है। उसी के अनुरूप उन्हें साधना करने का निर्देश दिया जाता है। अध्यात्म और विज्ञान के समन्वय पर इस प्रकार शोध करने वाली विश्व की यह पहली एवं स्वयं में अनुपम प्रयोगशाला है।

इसके अतिरिक्त भी सामयिक प्रगति के लिए जनसाधारण को जो प्रोत्साहन दिए जाने हैं उनकी अनेकों शिक्षाएँ यहीं दी जाती हैं। अगले दिनों और भी बड़े काम हाथ में लिए जाने हैं।

गायत्री परिवार के लाखों व्यक्ति उत्तराखण्ड की यात्रा करने के लिए जाते समय शान्ति–कुन्ज के दर्शन करते हुए यहाँ की रज मस्तिष्क पर लगाते हुए तीर्थयात्रा आरम्भ करते हैं। बच्चों के अन्न प्राशन, नामकरण, मुण्डन, यज्ञोपवीत आदि संस्कार यहाँ आकर कराते हैं। क्योंकि परिजन इसे सिद्ध पीठ मानते हैं। पूर्वजों के श्राद्ध तर्पण कराने का भी यहाँ प्रबन्ध है। जन्म–दिन, विवाह दिन मनाने हर वर्ष प्रमुख परिजन यहाँ आते हैं। बिना दहेज की शादियाँ हर वर्ष यहाँ व तपोभूमि में होती हैं। इससे परिजनों को सुविधा भी बहुत रहती है, इस खर्चीली कुरीति से भी पीछा छूटता है।

जब पिछली बार हम हिमालय गये थे और हरिद्वार जाने और शान्ति-कुन्ज रहकर ऋषियों की कार्य पद्धति को पुनर्जीवन देने का काम हमें सोंपा गया था तब यह असमंजस था कि इतना बड़ा कार्य हाथ में लेने में न केवल विपुल धन की आवश्यकता है, वरन् इसमें कार्यकर्त्ता भी उच्च श्रेणी के चाहिए। वे कहाँ मिलेंगे? सभी संस्थाओं के पास वेतन भोगी हैं। वे भी चिन्ह पूजा करते हैं। हमें ऐसे जीवनदानी कहाँ से मिलेंगे? पर आश्चर्य है कि शान्ति कुन्ज में—ब्रह्मवर्चस में इन दिनों रहने वाले कार्यकर्त्ता ऐसे हैं जो अपनी बड़ी–बड़ी पोस्टों से स्वेच्छा से त्याग पत्र देकर आए हैं। सभी ग्रेजुएट पोस्ट ग्रेजुएट स्तर के अथवा प्रखर प्रतिभा सम्पन्न हैं। इनमें से कुछ तो मिशन के चौके में भोजन करते हैं। कुछ उसकी लागत भा अपनी जमा धनराशि के ब्याज से चुकाते रहते हैं। कुछ के पास पेन्शन आदि का प्रबन्ध भी है। भावावेश में आने जाने वालों का क्रम चलता रहता है पर जो मिशन के सूत्र संचालक व

मूलभूत उद्देश्य को समझते हैं, वे स्थायी बनकर टिकते व काम करते हैं। खुशी की बात है कि ऐसे भावनाशील नैष्ठिक परिजन सतत आते व संस्था से जुड़ते चले जा रहे हैं।

गुजारा अपनी जेब से एवं काम दिन-रात स्वयं सेवक की तरह मिशन का, ऐसा उदाहरण अन्य संस्थाओं में चिराग लेकर ढूँढ़ना पड़ेगा। यह सौभाग्य मात्र शान्ति-कुञ्ज को मिला है कि उसके पास एम० ए०, एम० एस० सी०, एम० डी०, एम० एस०, पी० एच० डी०, आयुर्वेदाचार्य, संस्कृत आचार्य स्तर के कार्यकर्त्ता हैं। उनकी नम्रता, सेवा भावना श्रमशीलता एवं निष्ठा देखते ही बनती हैं। जबकि वरीयता योग्यता एवं प्रतिभा को दी जाती है, डिग्री को नहीं, ऐसा परिकर जुड़ना इस मिशन का बहुत बड़ा सौभाग्य है।

जो काम अब तक हुआ है उसमें पैसे की याचना नहीं करनी पड़ी। मालवीय जी का मन्त्र मुट्ठी भर अन्न और दस पैसा नित्य देने का सन्देश मिल जाने से ही इतना बड़ा कार्य सम्पन्न हो गया। आगे इसकी और भी प्रगति होने की सम्भावना है। हम जन्मभूमि छोड़कर आए, वहाँ हाईस्कूल—फिर इण्टर काजेज एवं अस्पताल चल पड़ा। मथुरा का कार्य हमारे सामने की अपेक्षा उत्तराधिकारियों द्वारा दूना कर दिया गया है। हमारे हाथ का कार्य क्रमशः अब दूसरे समर्थ व्यक्तियों के कन्धों पर जा रहा है। पर मनमें विश्वास है कि वह घटेगा नहीं। ऋषियों का जो कार्य आरम्भ करना और बढ़ाना हमारे जिम्मे था, वह अगले दिनों घटेगा नहीं, प्रज्ञावतार की अवतरण बेला में मत्स्यावतार की तरह बढ़ता-फैलता ही चला जाएगा। चाहे हमारा शरीर रहे या न रहे किन्तु हमारा परोक्ष शरीर सतत् उस कार्य को करता रहेगा, जो ऋषि सत्ताने हमें सौंपा था।

"बोओ एवं काटो" का मंत्र, जो हमने जीवन भर अपनाया :

हिमालय यात्रा से हरिद्वार लौटकर आने के बाद जब आश्रम का प्रारम्भिक ढाँचा बनकर तैयार हुआ तो विस्तार हेतु साधनों की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। समय की विषमता ऐसी थी कि जिससे जूझने के लिए हमें

कितने ही साधनों, व्यक्तित्वों एवं पराक्रमों की आवश्यकता अपेक्षित थी। दो काम करने थे—एक संघर्ष, दूसरा सृजन। संघर्ष उन अवाँछनीयताओं से, जो अब तक की संचित सभ्यता, प्रगति और संस्कृति को निगल जाने के लिए मुँह बाये खड़ी हैं। सृजन उसका जो भविष्य को उज्ज्वल एवं सुख-शान्ति से भरा-पूरा बना सके। दोनों ही कार्यों का प्रयोग समूचे धरातल पर निवास करने वाले ५०० करोड़ मनुष्यों के लिए करना ठहरा था, इसलिए विस्तार क्रम अनायास ही अधिक हो जाता है।

निज के लिए हमें कुछ भी न करना था। पेट भरने के लिए जिस स्रष्टा ने कीट-पतंगों तक के लिए व्यवस्था बना रखी है, वह हमें क्यों भूखा रहने देगा। भूखे उठते तो सब हैं, पर खाली पेट सोता कोई नहीं। इस विश्वास ने निजी कामनाओं का आरम्भ में ही समापन कर दिया। न लोभ ने कभी सताया, न मोह ने। वासना, तृष्णा और अहन्ता में से कोई भी भव बन्धन बँधकर पीछे न लग सकी। जो करना था, भगवान के लिए करना था, गुरुदेव के निर्देशन पर करना था। उन्होंने संघर्ष और सृजन के दो ही काम, सोंपे थे, सो उन्हें करने में सदा उत्साह ही रहा। टाल-मटोल करने की न प्रवृत्ति थी और न कभी इच्छा हुई। जो करना सो तत्परता और तन्मयता से करना, यह आदत जन्मजात दिव्य अनुदान के रूप में मिली और अद्यावधि यथावत् बनी रही।

जिन साधनों की नव सृजन के लिए आवश्यकता थी, वे कहाँ से मिलें, कहाँ से आवें ? इस प्रश्न के उत्तर में मार्गदर्शक ने हमें हमेशा एक ही तरीका बताया था कि 'बोओ और काटो' मक्का और बाजरा का एक बीज जब पौधा बनकर फलता है तो एक के बदले सौ नहीं वरन् उससे भी अधिक मिलता है। द्रोपदी ने किसी सन्त को अपनी साड़ी फाड़कर दी थी, जिससे उन्होंने लंगोटी बनाकर अपना काम चलाया था।-वही आड़े समय में इतनी लम्बी बनी कि उन साड़ियों के गट्ठे को सिर पर रखकर भगवान को स्वयं भाग कर आना पड़ा। "जो तुझे पाना है, उसे बोना आरम्भ कर दे।"—यही बीज मन्त्र हमें बताया और अपनाया गया, प्रतिफल ठीक वैसा ही निकला जैसा कि संकेत

किया गया।

शरीर, बुद्धि और भावनाएँ स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों के साथ भगवान सबको देते हैं। धन स्व उपार्जित होता है। कोई हाथों-हाथ कमाते हैं तो कोई पूर्व संचित सम्पदा को उत्तराधिकार में पाते हैं। हमने कमाया तो नहीं था पर उत्तराधिकार में अवश्य समुचित मात्रा में पाया। इन सबको बो देने और समय पर काट लेने के लायक गुंजाइश थी, सो बिना समय गँवाये उस प्रयोजन में अपने को लगा दिया।

रात में भगवान का भजन कर लेना और दिन भर विराट् ब्रह्म के लिए—विश्व मानव के लिए समय और श्रम नियोजित रखना, यह शरीर साधना के रूप में निर्धारित किया गया।

बुद्धि दिन भर जागने में ही नहीं, रात्रि के सपने में भी लोक मंगल की विधाएँ विनिर्मित करने में लगी रही। अपने निज के लिए सुविधा सम्पदा कमाने का ताना-बाना बुनने की कभी इच्छा ही नहीं हुई। अपनी भावनाएँ सदा विराट् के लिए लगी रहीं। प्रेम, किसी वस्तु या व्यक्ति से नहीं आदर्शों से किया। गिरों को उठाने और पिछड़ों को बढ़ाने की ही भावनाएँ सतत् उमड़ती रहीं।

इस विराट को ही हमने अपना भगवान माना। अर्जुन के दिव्य चक्षु ने इसी विराट् के दर्शन किये थे। यशोदा ने कृष्ण के मुँह में सृष्टा का यही स्वरूप देखा था। राम ने पालने में पड़े-पड़े माता कौशल्या को अपना यही रूप दिखाया था और काक भुशुण्डि इसी स्वरूप की झाँकी करके धन्य हुए थे।

हमने भी अपने पास जो कुछ था, उसी विराट् ब्रह्म को—विश्व मानव को सौंप दिया। बोने के लिए इससे उर्वर खेत दूसरा कोई हो नहीं सकता था। वह समयानुसार फला-फूला। हमारे कोठे भर दिये गए। सौंपे गये दो कामों के लिए जितने साधनों की जरूरत थी, वे सभी उसी में जुट गए।

शरीर जन्मजात दुर्बल था। शारीरिक बनावट की दृष्टि से उसे दुर्बल कह सकते हैं, जीवनी शक्ति तो प्रचण्ड थी ही। जवानी में बिना शाक, घी दूध

के २४ वर्ष तक जौ की रोटी और छाछ लेते रहने से वह और कृश हो गया था। पर जब बोने काटने की विधा अपनाई तो पचहत्तर वर्ष की इस उम्र में वह इतना सुदृढ़ है कि कुछ ही दिन पूर्व उसने एक बिगड़ैल साँड को कन्धे का सहारा देकर चित्त पटक दिया और उससे भागते ही बना।

सर्वविदित है ही कि अनीति एवं आतंक के पक्षधर एक किराये के हत्यारे ने एक वर्ष पूर्व पाँच बोर की रिवाल्वर से लगातार हम पर फायर किये और उसकी सभी गोलियाँ नलियों में उलझी रह गईं। रिवाल्वर उससे भय के मारे वहीं गिर गयी। अबकी बार वह छुरेबाजी पर उतर आया। छुरे चलते रहे। खून बहता रहा। पर भौंके गए सारे प्रहार शरीर में सीधे न घुसकर तिरछे फिसल कर निकल गए। डाक्टरों ने जख्म सी दिये और कुछ ही सप्ताह में शरीर ज्यों का त्यों हो गया।

इसे परीक्षा का एक घटनाक्रम ही कहना चाहिए कि पाँच बोर का लोडेड रिवाल्वर शातिर हाथों में भी काम न कर सका। जानवर काटने के छुरे के बारह प्रहार मात्र प्रमाण के निशान छोड़कर अच्छे हो गए। आक्रमण-कारी अपने बम से स्वयं घायल होकर जेल जा बैठा। जिसके आदेश से उसने यह किया था, उसे फाँसी की सजा घोषित हुई। असुरता के आक्रमण असफल हुए। एक उच्चस्तरीय दैवी प्रयास को निष्फल कर देना सम्भव न हो सका। मारने वाले से बचाने वाला बड़ा सिद्ध हुआ।

इन दिनों एक से पाँच करने की सूक्ष्मीकरण विधा चल रही है। इस लिए क्षीणता तो आई है। तो भी बाहर से काया ऐसी है, जिसे जितने दिन चाहें जीवित रखा जा सके। पर हम जान-बूझकर इसे इस स्थिति में रखेंगे नहीं। कारण कि सूक्ष्म शरीर से अधिक काम लिया जा सकता है और स्थूल शरीर उसमें किसी कदर बाधा ही डालता है।

शरीर की जीवनी शक्ति असाधारण रही है। उसके द्वारा दस गुना काम लिया गया है। शंकराचार्य, विवेकानन्द बत्तीस पैंतीस वर्ष जिये, पर ३५० वर्ष के बराबर काम कर सके। हमने ७५ वर्षों में विभिन्न स्तर के इतने काम किये हैं कि उनका लेखा-जोखा लेने पर वे ७५० वर्ष से कम में होने

सम्भव प्रतीत नहीं होते। यह सारा समय नव सृजन की एक से एक अधिक सफल भूमिकाएँ बनाने में लगा है। निष्क्रिय, निष्प्रयोजन कभी नहीं खाली रहा।

बुद्धि को भगवान के खेत में बोया और वह असाधारण प्रतिभा बनकर प्रकटी। अभी तक लिखा हुआ साहित्य इतना है जिसे शरीर के बजन से तोला जा सके। यह सभी उच्च कोटि का है। आर्षग्रन्थों के अनुवाद से लेकर प्रज्ञा युग की भावी पृष्ठभूमि बनाने वाला ही सब कुछ लिखा गया है। आगे का सन् २००० तक का हमने अभी से लिखकर रख दिया है।

अध्यात्म को विज्ञान से मिलाने की योजना—कल्पना में तो कइयों के मन में थी पर उसे कोई कार्यान्वित न कर सका। इस असम्भव को सम्भव होते देखना हो तो ब्रह्मवर्चस् शोध संस्थान में आकर अपनी आँखों से स्वयं देखना चाहिए। जो सम्भावनाएँ सामने हैं उन्हें देखते हुए कहा जा सकता है कि अगले दिनों अध्यात्म की रूपरेखा विशुद्ध विज्ञान परक बनकर रहेगी।

छोटे-छोटे देश अपनी पंच वर्षीय योजनाएँ बनाने के लिए आकाश-पाताल के कुलाबे मिलाते हैं। पर समस्त विश्व की काया-कल्प योजना का चिन्तन और क्रियान्वयन जिस प्रकार शान्ति-कुन्ज के तत्वावधान में चल रहा है, उसे एक शब्द में अद्भुत एवं अनुपम ही कहा जा सकता है।

भावनाएँ हमने पिछड़ों के लिए समर्पित की हैं। शिव ने भी यही किया था। उनके साथ चित्र-विचित्र समुदाय रहता था और सर्पों तक को वे गले लगाते थे। उसी राह पर हमें भी चलते रहना पड़ा है। हम पर छुरा रिवाल्वर चलाने वाले को पकड़ने वाले जब दौड़ रहे थे, पुलिस भी लगी हुई थी। सभी को हमने वापस बुला लिया और घातक को जल्दी ही भाग जाने का अवसर दिया। जीवन में ऐसे अनेकों प्रसंग आए हैं, जब प्रतिपक्षी अपनी ओर से कुछ कमी न रहने देने पर भी मात्र हँसने और हँसाने के रूप में प्रतिदान पाते रहे हैं।

हमने जितना प्यार लोगों से किया है, उससे सौ गुनी संख्या और मात्रा में लोग हमारे ऊपर प्यार लुटाते रहे हैं। निर्देशों पर चलते रहे हैं और

घाटा उठाने तथा कष्ट सहने में पीछे नहीं रहे हैं। कुछ दिन पूर्व प्रज्ञा संस्थान बनाने का स्वजनों को आदेश किया तो दो वर्ष के भीतर २४०० गायत्री शक्ति पीठों की भव्य इमारतें बनकर खड़ी हो गईं और उसमें लाखों रुपयों की राशि रकम लग गई। बिना इमारत के १२ हजार प्रज्ञा संस्थान बने सो अलग। छुरा लगा तो सहानुभूति में इतनी बड़ी संख्या स्वजनों की उमड़ी, मानों मनुष्यों का आँधी तूफान आया हो। इनमें से हर एक बदला लेने के लिए आतुरता व्यक्त कर रहा था। हमने—माताजी ने सभी को दुलार कर दूसरी दिशा में मोड़ा। यह हमारे प्रति प्यार की—सघन आत्मीयता की ही अभिव्यक्ति तो है।

हमने जीवन भर प्यार खरीदा बँटोरा और लुटाया है। इसका एक नमूना हमारी धर्मपत्नी, जिन्हें हम माताजी कहकर सम्बोधित करते हैं, की भावनाएँ पढ़कर कोई भी समझ सकता है। वे काया और छाया की तरह साथ रही हैं और एक प्राण दो शरीर की तरह हमारे हर काम में हर घड़ी हाथ बँटाती रही हैं।

पशु-पक्षियों तक का हमने ऐसा प्यार पाया है कि वे स्वजन सहचर की तरह आगे-पीछे फिरते रहे हैं। लोगों ने आश्चर्य से देखा है कि सामान्यत: जो प्राणी मनुष्य से सर्वथा दूर रहते हैं वे किस तरह कन्धे पर बैठते, पीछे-पीछे फिरते और चुपके से बिस्तर में आ सोते हैं। ऐसे दृश्य हजारों ने हजारों की संख्या में देखे और आश्चर्यचकित रह गये हैं। यह और कुछ नहीं प्रेम का प्रतिदान मात्र था।

धन की हमें समय-समय पर भारी आवश्यकता पड़ती रही है। गायत्री तपोभूमि, शान्ति-कुन्ज और ब्रह्मवर्चस् की इमारतें करोड़ों रुपया मूल्य की हैं। मनुष्य के आगे हाथ न पसारने का व्रत निवाहते हुए अचाचक व्रत निवाहते हुए यह सारी आवश्यकताएँ पूरी हुई हैं। पूरा समय काम करने वालों की संख्या एक हजार से ऊपर है। इनकी आजीविका की ब्राह्मणोचित व्यवस्था बराबर चलती रहती है। प्रेस प्रकाशन प्रचार में संलग्न जीप गाड़ियाँ तथा अन्यान्य खर्चे ऐसे हैं जो समयानुसार बिना किसी कठिनाई के पूरे होते रहते हैं। यह

वह फसल है जो अपने पास की एक-एक पाई को भगवान के खेत में बो देने के उपरान्त हमें मिली है। इस फसल पर हमें गर्व है। जमींदारी समाप्त होने पर जो धनराशि मिली, वह गायत्री तपोभूमि निर्माण में दे दी। पूर्वजों की छोड़ी जमीन किसी कुटुम्बी को न देकर जन्मभूमि में हाईस्कूल और अस्पताल बनाने में लगा दी। हम व्यक्तिगत रूप से खाली हाथ हैं पर योजनायें ऐसी चलाते हैं जैसी लखपति करोड़पतियों के लिए भी सम्भव नहीं हैं। यह सब हमारे मार्गदर्शक के उस सूत्र के कारण सम्भव हो पाया है, जिसमें उन्होंने कहा था—"जमा मत करो, बिखेर दो। बोओ और काटो।" सत्प्रवृत्तियों का उद्यान जो प्रज्ञा परिवार के रूप में लहलहाता दृश्यमान होता है, उसकी पृष्ठभूमि इसी सूत्र संकेत के आधार पर बनी है।

ब्राह्मण मन और ऋषि कर्म

अन्तरंग में ब्राह्मण वृत्ति जगते ही बहिरंग में साधु प्रवृत्ति का उभरना स्वाभाविक है। ब्राह्मण अर्थात लिप्सा से जूझ सकने योग्य मनोबल का धनी। प्रलोभनों और दबावों का सामना करने में समर्थ। औसत भारतीय स्तर के निर्वाह में काम चलाने से सन्तुष्ट। इन परीक्षाओंमेंउत्तीर्ण होनेके लिए आरम्भिक जीवन में ही मार्गदर्शक का समर्थ प्रशिक्षण मिला। वही ब्राह्मण जन्म था। माता-पिता तो एक माँस पिण्ड को जन्म इससे पहले ही दे चुके थे। ऐसे नर पशुओं का कलेवर न जाने कितनी बार पहनना और छोड़ना पड़ा होगा। तृष्णाओं की पूर्ति के लिए न जाने कितनी बार पाप के पोटले, कमाने, लादने, ढोने और भुगतने पड़े होंगे। पर सन्तोष और गर्व इसी जन्म पर है। जिसे ब्राह्मण जन्म कहा जा सकता है। एक शरीर नर-पशु का, दूसरा नर नारायण का प्राप्त करने का सुयोग इसी बार मिला है।

ब्राह्मण के पास सामर्थ्य का भण्डार बच रहता है क्योंकि शरीर यात्रा का गुजारा तो बहुत थोड़े में निबट जाता है। हाथी, ऊँट भैंसे आदि के पेट बड़े होते हैं, उन्हें उसे भरने के लिए पूरा समय लगे तो बात समझ में आती है। पर मनुष्य के सामने वैसी कठिनाई नहीं है। बीस उँगली वाले दो हाथ —कमाने की हजार तरकीबें ढूँढ़ निकालने वाला मस्तिष्क—सर्वत्र उपलब्ध विपुल साधन—परिवार सहकार का अभ्यास इतनी सुविधाओं के रहते किसी को भी गुजारे में कमी न पड़नी चाहिए न असुविधा। फिर पेट की लम्बाई-चौड़ाई भी तो मात्र छः इन्च की हैं। इतना तो मोर कबूतर भी कमा लेते है। मनुष्य के सामने निर्वाह की कोई समस्या नही। वह कुछही घण्टे के

परिश्रम में पूरी हो जाती है। फिर सारा समय खाली ही खाली बचता है। उनके अन्तराल में सन्त जाग पड़ता है, वह एक ही बात सोचता है कि समय श्रम, मनोयोग की जो प्रखरता, प्रतिभा, हस्तगत हुई है, उसका उपयोग कहाँ किया जाय ? कैसे किया जाय ?

इस प्रश्न का उत्तर प्राप्त करने में बहुत देर नहीं लगती। देव मानवों का पुरातन इतिहास इसके लिए प्रमाण उदाहरणों की एक पूरी शृंखला लाकर खड़ी कर देता है। उनमें से जो भी प्रिय लगे, अनुकूल पड़े, अपने लिए चुना—अपनाया जा सकता है। केवल दैन्य ही हैं जिनकी इच्छाएँ, आवश्यकताएँ पूरी नहीं होतीं। कामनायें, वासनायें, तृष्णायें कभी किसी की पूरी नहीं हुई। साधनों के विपुल भण्डार जमा करने और उन्हें अतिशय मात्रा में भोगने की योजनायें तो अनेकों ने बनायीं पर हिरण्याक्ष से लेकर सिकन्दर तक कोई भी उन्हें पूरी न कर सका।

आत्मा और परमात्मा का मध्यवर्ती एक मिलन विराम है, जिसे देव मानव कहते हैं। इसके और भी कई नाम हैं—महापुरुष, सन्त, सुधारक, शहीद आदि। पुरातन काल में इन्हें ऋषि कहते थे। ऋषि अर्थात् वे—जिनका निर्वाह न्यूनतम में चलता हो और बची हुई सामर्थ्य सम्पदा को ऐसे कामों में नियोजित किए रहते हों, जो समय की आवश्यकता पूरी करे। वातावरण में सत्प्रवृत्तियों का अनुपात बढ़ाये। जो श्रेष्ठता की दिशा में बढ़ रहे हैं, उन्हें मनोबल अनुकूल न मिले। जो विनाश के आतुर हैं उनके कुचक्रों को सफलता न मिले। संक्षेप में यही हैं वे कार्य निर्धारण जिनके लिए ऋषियों के प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रयास अनवरत गति से चलते रहते हैं। निर्वाह से बची हुई क्षमता को वे इन्हीं कार्यों में लगाते रहते हैं। फलतः जब कभी लेखा-जोखा लिया जाता हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि वे कितना कार्य कर चुके, कितनी लम्बी मंजिल पार कर ली। यह एक-एक कदम-कदम चलते रहने का परिणाम है।एक-एक बूँद जमा करते रहने की ही परिणति है।

अपनी समझ में वह भक्ति नहीं आई जिसमें मात्र भावोन्माद ही हो, आचरण की दृष्टि से सब कुछ क्षम्य हो। न उसका कोई सिद्धान्त जँचा, न

उस कथन के औचित्य को विवेक ने स्वीकारा। अतएव जब-जब भक्ति उमँगती रही, ऋषियों का मार्ग ही अनुकरण के योग्य जँचा और जो समय हाथ में था, उसे पूरी तरह ऋषि परम्परा में खपा देने का प्रयत्न चलता रहा। पीछे मुड़कर देखते हैं कि अनवरत प्रयत्न करते रहने वाले कण-कण करके मन जोड़ लेते हैं। चिड़िया तिनका-तिनका बीनकर अच्छा-खासा घोंसला बना लेती है। अपना भी कुछ ऐसा ही सुयोग्य सौभाग्य है, कि ऋषि परम्परा का अनुकरण करने के लिए कुछ कदम बढ़ाये तो उनकी परिणति ऐसी हुई जिसे समझदार व्यक्ति शानदार कहते हैं।

अपने समय के विभिन्न ऋषिगणों ने अपने हिस्से के काम सम्हाले और पूरे किए थे। उन दिनों ऐसी परिस्थितियाँ, अवसर और इतना अवकाश भी था कि समय की आवश्यकता के अनुरूप अपने-अपने कार्यों को वे धैर्यपूर्वक उचित समय में सम्पन्न करते रह सकें। पर अब तो आपत्तिकाल है। इन दिनों अनेकों काम एक ही समय में द्रुतगति से निपटाने हैं। घर में अग्निकाण्ड हो तो जितना बुझाने का प्रयास बन पड़े उसे स्वयं करते हुए बच्चों को, कपड़ों को, धनराशि को निकालने—ढोने का काम साथ-साथ ही चलता है। हमें ऐसे ही आपत्तिकाल का सामना करना पड़ा है और ऋषियों द्वारा हमारी हिमालय यात्रा में सौंपे गये कार्यों में से प्रायः प्रत्येक को एक ही समय में बहुमुखी जीवन जीकर सम्भालना पड़ा है। इसके लिए प्रेरणा दिशा और सहायता हमारे समर्थ मार्गदर्शक की मिली है और शरीर से जो कुछ भी हम कर सकते थे, उसे पूरी तत्परता और तन्मयता के साथ सम्पन्न किया हैं। उसमें पूरी-पूरी ईमानदारी का समावेश किया है। फलतः वे सभी कार्य इस प्रकार सम्पन्न होते चले हैं मानो वे किए हुए ही रखे हों। कृष्ण का रथ चलाना और अर्जुन का गाण्डीव उठाना पुरातन इतिहास होते हुए भी हमें अपने सन्दर्भ में चरितार्थ होते दीखता रहा है।

युग परिवर्तन जैसा महान कार्य होता तो भगवान की इच्छा, योजना एवं क्षमता के आधार पर ही है पर उसका श्रेय वे ऋषि कल्प जीवनमुक्त आत्माओं को देते रहते हैं। यही उनकी साधना का—पात्रता का सर्वोत्तम

उपहार है। हमें भी इस प्रकार का श्रेय उपहार देने की भूमिका बनी और हम कृतकृत्य हो गये। हमें सुदूर भविष्य की झाँकी अभी से दिखाई पड़ती है, इसी कारण हमें यह लिख सकने में संकोच रंचमात्र भी नहीं होता।

अब पुरातन काल के ऋषियों में से किसी का भी स्थूल शरार नहीं है, उनकी चेतना निर्धारित स्थानों में मौजूद है। सभी से हमारा परिचय कराया गया और कहा गया कि इन्हीं के पद चिह्नों पर चलना है। इन्हीं की कार्य पद्धति अपनानी, देवात्मा हिमालय के प्रतीक स्वरूप शान्तिकुञ्ज हरिद्वार में एक आश्रम बनाना और ऋषि परम्परा को इस प्रकार कार्यान्वित करना है, जिससे युग परिवर्तन की प्रक्रिया का गति चक्र सुव्यवस्थित रूप से चल पड़े।

जिन ऋषियों, तपः पूत मानवों ने कभी हिमालय में रहकर विभिन्न कार्य किए थे, उनका स्मरण हमें मार्गदर्शक सत्ता ने तीसरी यात्रा में बार-बार दिलाया था। इनमें थे, भागीरथ (गंगोत्री), परशुराम (यमुनोत्री), चरक (केदारनाथ), व्यास (बद्रीनाथ), याज्ञवल्क्य (त्रियुगी नारायण) नारद (गुप्तकाशी), आद्य शंकराचार्य (ज्योतिर्मठ), जमदग्नि (उत्तरकाशी , पातञ्जलि (रुद्र प्रयाग), वशिष्ठ (देव प्रयाग), पिपलाद, सूत-शौनिक लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्न (ऋषिकेश), दक्ष प्रजापति, कणादि एवं विश्वामित्र सहित सभी सप्त ऋषिगण। इसके अतिरिक्त चैतन्य महाप्रभु, सन्त ज्ञानेश्वर एवं तुलसीदास जी के कर्तव्यों की झाँकी दिखाकर भगवान बुद्ध के परिव्राजक धर्मचक्र प्रवर्त्तनन अभियान को युगानुकूल परिस्थितियों में संगीत, संकीर्तन प्रज्ञा पुराण कथा के माध्यम से देश-विदेश में फैलाने एवं प्रज्ञावतार द्वारा बुद्धावतार का उत्तरार्ध पूरा किये जाने का भी निर्देश था। समर्थ रामदास के रूप में जन्म लेकर जिस प्रकार व्यायामशालाओं, महावीर मन्दिरों की स्थापना सोलहवीं सदी में हमसे कराई गयी थी, उसी को नूतन अभिनव रूप में प्रज्ञा संस्थानों, प्रज्ञापीठों, चरणपीठों, ज्ञानमन्दिर, स्वाध्याय मण्डलों द्वारा सम्पन्न किए जाने के संकेत मार्गदर्शक द्वारा हिमालय प्रवास में ही दे दिये गए थे।

देवात्मा हिमालय का प्रतीक प्रतिनिधि शान्ति कुन्ज को बना देने का जो निर्देश मिला वह कार्य साधारण नहीं श्रम एवं धन साध्य था। सहयोगियों की सहायता पर निर्भर भी। इसके अतिरिक्त अध्यात्म के उस ध्रुव केन्द्र में सूक्ष्म शरीर से निवास करने वाले ऋषियों की आत्मा का आह्वान करके प्राण प्रतिष्ठा का संयोग भी बिठाना था। यह सभी कार्य ऐसे हैं जिन्हें देवालय परम्परा में अद्भुत एवं अनुपम कहा जा सकता है। देवताओं के मन्दिर अनेक जगह बने हैं। वे भिन्न-भिन्न भी हैं। एक ही जगह सारे देवताओं की स्थापना का तो कहीं सुयोग हो भी सकता है, पर समस्त देवात्माओं ऋषियों की एक जगह प्राण प्रतिष्ठा हुई हो ऐसा तो संसार भर में अन्यत्र कहीं भी नहीं है। फिर इससे भी बड़ी बात यह है कि ऋषियों के क्रिया-कलापों की गतिविधियों का न केवल चिह्न पूजा के रूप में वरन् यथार्थता के रूप में भी यहाँ न केवल दर्शन वरन् परिचय भी प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार शान्ति-कुन्ज ब्रह्मवर्चस् गायत्री तीर्थ एक प्रकार से प्रायः सभी ऋषियों के क्रिया-कलापों का प्रतिनिधित्व करता है।

भगवान राम ने लङ्का विजय और रामराज्य स्थापना के निमित्त मङ्गलाचरण रूप में रामेश्वरम् पर शिव प्रतीक की स्थापना की थी। हमारा सौभाग्य है कि हमें युग परिवर्तन हेतु संघर्ष एवं सृजन प्रयोजन के लिए देवात्मा हिमालय की प्रतिमा प्राण प्रतिष्ठा समेत करने का आदेश मिला। शांति-कुंज में देवात्मा हिमालय का भव्य मन्दिर पाँचों प्रयागों, पाँचों काशियों, पाँचों सरिताओं और पाँचों सरोवरों समेत देखा जा सकता है। इसमें सभी ऋषियों के स्थानों के दिव्य दर्शन हैं। इसे अपने ढङ्ग का अद्भुत एवं अनुपम देवालय कहा जा सकता है। जिसने हिमालय के इन दुर्गम क्षेत्रों के कभी दर्शन न किये हों, वे इस लघु संस्करण के दर्शन से ही वही लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

जमदग्नि पुत्र परशुराम के फरसे ने अनेकों उद्धत उच्छृंखलों के सिर काटे थे। यह वर्णन अलङ्कारिक भी हो सकता है। उन्होंने यमुनोत्री में तपश्चर्या कर प्रखरता की साधना की एवं सृजानत्मक क्रान्ति का मोर्चा

सम्भाला। जो व्यक्ति तत्कालीन समाज के निर्माण में बाधक, अनीति में लिप्त थे, उनकी वृत्तियों का उन्होंने उन्मूलन किया। दुष्ट और भ्रष्ट जनमानस के प्रवाह को उलट कर सीधा करने का पुरुषार्थ उन्होने निभाया। इसी आधार पर उन्हें भगवान शिव से "परशु" (फरसा) प्राप्त हुआ। उत्तरार्ध में उन्होंने फरसा फेंककर फावड़ा थामा एवं स्थूल दृष्टि से वृक्षारोपण तथा सूक्ष्मतः रचनात्मक सत्प्रवृत्तियों का बीजारोपण किया। शान्ति-कुञ्ज से चलने वाली लेखनी ने-वाणी ने उसी परशु की भूमिका निभाई एवं असंख्यों की मान्यताओं, भावनाओं, विचारणाओं एवं गतिविधियों में आमूल—चूल परिवर्त्तन कर दिया है।

भागीरथ ने जल दुर्भिक्ष के निवारण हेतु कठोर तप करके स्वर्ग से गङ्गा को धरती पर लाने में सफलता प्राप्त की थी। भागीरथ शिला गङ्गोत्री के समीपस्थ है। गङ्गा उन्हीं के तप पुरुषार्थ से अवतरित हुई, इसलिए भागीरथी कहलाईं। लोक मङ्गल के प्रयोजन हेतु प्रचण्ड पुरुषार्थ करके भागीरथ दैवी कसौटी पर खरे उतरे एवं भगवान शिव के कृपा पात्र बने। आज आस्थाओं का दुर्भिक्ष चारों ओर संव्याप्त है। इसे दिव्य ज्ञान की धारा ज्ञान गङ्गा से ही मिटाया जा सकता है। बौद्धिक और भावनात्मक अकाल निवारणार्थ शान्ति—कुञ्ज से ज्ञान गङ्गा का जो अविरल प्रवाह बहा है, उससे आशा बँधती है कि दुर्भिक्ष मिटेगा, सद्भावना का विस्तार चहुँ ओर होगा।

चरक ऋषि ने केदारनाथ क्षेत्र के दुर्गम क्षेत्रों में वनौषधियों की शोध करके रोग ग्रस्तों को निरोग करने वाली संजीवनी खोज निकाली थी। शास्त्र कथन है कि ऋषि चरक औषधियों से वार्त्ता करके गुण पूछते व समुचित समय में उन्हें एकत्र कर उन पर अनुसंधान करते थे। जीवनी शक्ति सम्वर्धन, मनोविकार शमन एवं व्यवहारिक गुण, कर्म, स्वभाव में परिवर्त्तन करने वाले गुण रखने वाली अनेकों औषधियाँ इसी असंनुधान की देन हैं। शान्ति—कुञ्ज में दुर्लभ औषधियों को खोज निकालने, उनके गुण प्रभाव को आधुनिक वैज्ञानिक यन्त्रों से जाँचने का जो प्रयोग चलता है, उसने आयुर्वेद को एक

प्रकार से पुनर्जीवित किया है। सही औषधि के एकाकी प्रयोग से कैसे निरोग रह कर दीर्घायुष्यी बना जा सकता है, यह अनुसंधान इस ऋषि परम्परा के पुनर्जीवन हेतु किये जा रहे प्रयासों की एक कड़ी है।

महर्षि व्यास ने नर एवं नारायण पर्वत के मध्य वसुधारा जल प्रपात के समीप व्यास गुफामें गणेशजी की सहायता से पुराण लेखन का कार्य किया था। उच्चस्तरीय कार्य हेतु एकाकी, शान्त, सतोगुणी वातावरण ही अभीष्ट था। आज की परिस्थितियों में, जबकि प्रेरणादायी साहित्य का अभाव है, पुरातन ग्रन्थ लुप्त हो चले, शान्ति-कुञ्ज में विराजमान तन्त्री ने आज से पच्चीस वर्ष पूर्व ही चारों वेद, अठारह पुराण, १०८ उपनिषद्, छहों दर्शन, चौबीस गीताएँ, आरण्यक, ब्राह्मण, आदि ग्रन्थों का भाष्य कर सर्वसाधारण के लिए सुलभ एवं व्यवहारिक बनाकर रख दिया था। साथ ही जनसाधारण की हर समस्या पर व्यावहारिक समाधान परक युगानुकूल साहित्य सतत् लिखा है, जिसने लाखों व्यक्तियों के मन-मस्तिष्क को प्रभावित कर सही दिशा दी है। प्रज्ञापुराण के १८ खण्ड नवीनतम सृजन हैं जिसमें कथा साहित्य के माध्यम से उपनिषद-दर्शन को जन-सुलभ बनाया गया है।

पातञ्जलि ने रुद्र प्रयाग में अलकनन्दा एवं मन्दाकिनी के संगम स्थल पर योग विज्ञान के विभिन्न प्रयोगों का आविष्कार और प्रचलन किया था। उन्होंने प्रमाणित किया कि मानवी काया निहित ऊर्जा का भण्डार है। इस शरीर तन्त्र के ऊर्जा केन्द्रों को प्रसुप्ति से जागृति में लाकर मनुष्य देवमानव बन सकता है रिद्धि-सिद्धि सम्पन्न बन सकता है। शान्ति–कुञ्ज में योग साधना के विभिन्न अनुशासनों योगत्रयी, कायाकल्प एवं आसन-प्राणायाम के माध्यम से इस मार्ग पर चलने वाले जिज्ञासु साधकों की बहुमूल्य यन्त्र उपकरणों से शारीरिक-मानसिक परीक्षा सुयोग्य चिकित्सकों से कराने के उपरान्त साधना लाभ दिया जाता है एवं भावी जीवन सम्बन्धी दिशा धारा प्रदान की जाती है।

याज्ञवल्क्य ने त्रियुगी नारायण में यज्ञ विद्या का अन्वेषण किया था और उनके भेद-उपभेदों का परिणाम मनुष्य एवं समग्र जीव जगत के स्वास्थ्य

सम्बर्धन हेतु, वातावरण शोधन, वनस्पति सम्बर्धन एवं पर्जन्य वर्षण के रूप में जाँचा परखा था। हिमालय के इस दुर्गम स्थान पर सम्प्रति एक यज्ञकुण्ड में अखण्ड अग्नि है जिसे शिव-पार्वती विवाह के समय से प्रज्वलित माना जाता है। यह उस परम्परा की प्रतीक अग्नि शिखा है आज यज्ञ विज्ञान की लुप्त प्रायः शृंखला को फिर से खोजकर समय के अनुरूप अन्वेषण करने का दयित्व ब्रह्मवर्चस् शोध संस्थान ने अपने कन्धों पर लिया है। यज्ञोपचार पद्धति (यज्ञोपैथी) के अनुसंधान हेतु समय के अनुरूप एक सर्वांगपूर्ण प्रयोग-शाला आधुनिक उपकरणों से युक्त ब्रह्मवर्चस् प्राङ्गण के मध्य में विद्यमान है। वनौषधि यजन से शारीरिक, मानसिक रोगों के उपचार, मनोविकार शमन, जीवनीशक्ति वर्धन, प्राणवान पर्जन्य की वर्षा एवं पर्यावरण सन्तुलन जैसे प्रयोगों के निष्कर्ष देखकर जिज्ञासुओं को आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है।

विश्वामित्र गायत्री महामन्त्र के द्रष्टा, नूतन सृष्टि के सृजेता माने गये हैं। उनने सप्तर्षियों सहित जिस क्षेत्र में तप करके आद्यशक्ति का साक्षात्कार किया था, वह पावन भूमि यही गायत्री तीर्थ—शान्ति-कुञ्ज की है, जिसे हमारे मार्गदर्शक ने दिव्य चक्षु प्रदान करके दर्शन कराये थे एवं आश्रम निर्माण हेतु प्रेरित किया था। विश्वामित्र की सृजन साधना के सूक्ष्म संस्कार यहाँ सघन हैं। महाप्रज्ञा को युग शक्ति का रूप देने, उनकी चौबीस मूर्तियों की स्थापना कर सारे राष्ट्र एवं विश्व में आद्यशक्ति का वसुधैव कुटुम्बकम् एवं सद्‌बुद्धि की प्रेरणा वाला सन्देश यहीं से उद्‌घोषित हुआ। अनेकों साधकों ने यहाँ गायत्री अनुष्ठान किए हैं एवं आत्मिक क्षेत्र में सफलता प्राप्त की है। शब्द शक्ति एवं सावित्री विधा पर वैज्ञानिक अनुसंधान विश्वामित्र परम्परा का ही पुनर्जीवन है।

जमदग्नि का गुरुकुल—आरण्यक उत्तरकाशी में स्थिति था एवं बालकों, वानप्रस्थों की समग्र शिक्षा व्यवस्था का भण्डागार था। अल्पकालीन साधना, प्रायश्चित्य, संस्कार आदि कराने एवं प्रौढ़ों के शिक्षण की यहाँ समुचित व्यवस्था थी। प्रखर व्यक्तित्वों का उत्पादन, वानप्रस्थ—परिव्राजक हेतु लोकसेवियों का शिक्षण, गुरुकुल में बालकों को नैतिक शिक्षण तथा युग

शिल्पी विद्यालय में समाज निर्माण की विधा का समग्र शिक्षण इस ऋषि परम्परा को आगे बढ़ाने हेतु शांन्ति कुञ्ज द्वारा संचालित ऐसे ही क्रिया कलाप हैं।

देवर्षि नारद ने गुप्त काशी में तपस्या की। वे निरन्तर अपने वीणा-वादन से जन-जागरण में निरत रहते थे। उन्होंने सत्परामर्श द्वारा भक्ति भावनाओं को प्रसुप्ति से प्रौढ़ता तक समुन्नत किया था। शान्ति कुञ्ज के युग गायन शिक्षण विद्यालय ने अब तक हजारों ऐसे परिव्राजक प्रशिक्षित किए हैं। वे एकाकी अपने-अपने क्षेत्रों में एवं समूह में जीप टोली द्वारा भ्रमण कर नारद परम्परा का ही अनुकरण कर रहे हैं।

देव प्रयाग में राम को योग वाशिष्ठ का उपदेश देने वाले वशिष्ठ ऋषि धर्म और राजनीति का समन्वय करके चलते थे। शान्ति कुञ्ज के सूत्रा धार ने सन् १९३० से सन् १९४७ तक आजादी की लड़ाई लड़ी है। जेल में कठोर यातनाएँ सही हैं। बाद में साहित्य के माध्यम से समाज एवं राष्ट्र का मार्गदर्शन किया है। धर्म और राजनीति के समन्वय साहचर्य के लिए जो बन पड़ा है, हम उसे पूरे मनोयोग से करते रहे हैं।

आद्य शंकराचार्य ने ज्योतिर्मठ में तप किया एवं चार धामों की स्थापना देश के चार कोनों पर की। विभिन्न संस्कृतियों का समन्वय एवं धार्मिक संस्थानों के माध्यम से जन जागरण उनका लक्ष्य था। शान्ति-कुञ्ज के तत्वावधान में २४०० गायत्री शक्ति पीठें विनिर्मित हुई हैं, जहाँ से धर्म धारणा को समुन्नत करने का कार्य निरन्तर चलता रहता है। इसके अतिरिक्त बिना इमारत वाले चल प्रज्ञा संस्थानों एवं स्वाध्याय मण्डलों द्वारा सारे देश में चेतना केन्द्रों का जाल बिछाया गया है। ये सभी चार धामों की परम्परा में अपने-अपने क्षेत्रों में युग चेतना का आलोक वितरण कर रहे हैं।

ऋषि पिप्पलाद ने ऋषिकेश के समीप ही अन्न के मन पर प्रभाव का अनुसंधान किया था। वे पीपल वृक्ष के फलों पर निर्वाह करके आत्म संयम द्वारा ऋषित्व पा सके। हमने चौबीस वर्ष तक जौ की रोटी एवं छाछ

पर रहकर गायत्री अनुष्ठान किए। तदुपरान्त आजीवन आहार उबले अन्न शाक ही रहे। अभी भी उबले अन्न एवं हरी वनस्पतियों के कल्प प्रयोगों की प्रतिक्रिया की जाँच-पड़ताल शान्ति कुंज में अमृताशन शोध के नाम से चलती रहती है। ऋषि केश में ही सूत शौनिक कथा-पुराण वाचन से ज्ञान सत्र जगह-जगह लगाते थे। प्रज्ञा पुराणों का कथा वाचन इतना लोकप्रिय हुआ है कि लोग इसे युग पुराण कहते हैं। चार भाग इसके छप चुके, चौदह और प्रकाशित होना हैं।

हर का पौड़ी हरिद्वार में सर्व मेध यज्ञ में हर्षवर्धन ने अपनी सारी सम्पदा तक्षशिला विश्वविद्यालय निर्माण हेतु दान करदी थी। शान्ति-कुंज के सूत्रधार ने अपनी लाखों की सम्पदा गायत्री तपोभूमि तथा जन्मभूमि में विद्यालय निर्माण हेतु दे दी। स्वयं या सन्तान के लिए इनमें से एक पैसा भी नहीं रखा। इसी परम्परा को अब शान्ति कुञ्ज से स्थायी रूप से जुड़ते जा रहे लोक सेवी निभा रहे हैं।

कणाद ऋषि ने अथर्ववेदीय शोध परम्परा के अन्तर्गत अपने समय में अणु विज्ञान का एवं वैज्ञानिक अध्यात्म वाद का अनुसंधान किया था। बुद्धि-वादी के गले उतारने के लिए समय के अनुरूप अब आप्त बचनों के साथ-साथ तर्क, तथ्य एवं प्रमाण भी अनिवार्य हैं। ब्रह्मवर्चस् शोध संस्थान में अध्यात्म-देव एवं विज्ञान-दैत्य के समन्वय का समुद्र मन्थन चल रहा है। दार्शनिक अनुसंधान ही नहीं, वैज्ञानिक प्रमाणों का प्रस्तुतीकरण भी इसकी सबसे बड़ी विशेषता है। इसकी उपलब्धियों के प्रति संसार बड़ी-बड़ी आशाएँ लगाये बैठा है।

बुद्ध के परिब्राजक संसार भर में धर्म चक्र प्रवर्त्तन हेतु दीक्षा लेकर निकले थे। शान्ति-कुञ्ज में मात्र अपने देश में धर्मधारणा के विस्तार हेतु ही नहीं, संसार के सभी देशों में देव संस्कृति का सन्देश पहुँचाने हेतु परिब्राजक दीक्षित होते हैं। यहाँ आने वाले परिजनों को धर्म चेतना से अनुप्राणित किया जाता है। भारत में ही प्रायः एक लाख प्रज्ञापुत्र प्रबृज्या में निरत रह घर-घर अलख जगाने का कार्य कर रहे हैं।

आर्य भट्ट ने सौर-मण्डल के ग्रह-उपग्रहों का ग्रह गणित कर यह जाना था कि पृथ्वी के साथ सौर परिवार का क्या आदान-प्रदान क्रम है और इस आधार पर धरित्री का वातावरण एवं प्राणी समुदाय कैसे प्रभावित होता है। शांति कुञ्ज में एक समग्र वेधशाला बनायी गयी है एवं आधुनिक यन्त्रों का उसके साथ समन्वय स्थापित कर ज्योतिर्विज्ञान का अनुसंधान कार्य किया जा रहा है। दृश्य गणित पंचांग यहाँ की एक अनोखी देन है।

चैतन्य महाप्रभु, सन्त ज्ञानेश्वर, समर्थ गुरु रामदास, प्राणनाथ महाप्रभु, रामकृष्ण परमहंस आदि सभी मध्य कालीन सन्तों की धर्मधारणा विस्तार परम्परा का अनुसरण शान्ति-कुञ्ज में किया गया है।

सबसे महत्वपूर्ण प्रसंग यह है कि इस आश्रम का वातावरण इतने प्रबल संस्कारों से युक्त है कि सहज ही व्यक्ति अध्यात्म की ओर प्रेरित होता चला जाता है। यह सूक्ष्म सत्ताधारी ऋषियों की यहाँ उपस्थिति की ही परिणति है। वे अपने द्वारा सम्पन्न क्रियाओं का यह पुनर्जीवन देखते होंगे तो निश्चय ही प्रसन्न होकर भावभरा आशीर्वाद देते होंगे। ऋषियों के तप प्रताप से ही यह धरती देवमानवों से धन्य हुई है। वाल्मीकि आश्रम में लव-कुश एवं कण्व आश्रम में चक्रवर्ती भरत विकसित हुए। कृष्ण-रुक्मणी ने बद्री नारायण में तप करके कृष्ण सदृश्य प्रद्युम्न को जन्म दिया। पवन एवं अंजनी ने तपस्वी पूषा के आश्रम में बजरंग बली को जन्म दिया। यह हिमालय क्षेत्र में बन पड़ी तप साधना के ही चमत्कारी वरदान थे।

संस्कारवान क्षेत्र एवं तपस्वियों के सम्पर्क लाभ के अनेकों विवरण हैं। स्वाति बूंद पड़ने से सीप में मोती बनते हैं, बांस में वंशलोचन एवं केले में कपूर। चन्दन के निकटवर्त्ती झाड़-झंखाड़ भी उतने ही सुगन्धित हो जाते हैं। पारस स्पर्श कर लोहा सोना बन जाता है। हमारे मार्गदर्शक सूक्ष्म शरीर से पृथ्वी के स्वर्ग इसी हिमालय क्षेत्र में शताब्दियों से रहते आए हैं जिसके द्वार पर हम बैठे हैं। हमारी बैटरी चार्ज करने के लिए समय-समय पर वे बुलाते रहते हैं। जब भी उन्हें नया काम सौंपना हुआ है, तब नई

शक्ति देने हमें वहीं बुलाया गया है और लौटने पर हमें नया शक्ति भण्डार भर कर वापस आने का अनुभव हुआ है।

हम प्रज्ञा पुत्रों को—जागृतात्माओं को युग परिवर्त्तन में रीछ वानरों की, ग्वाल बालों की, भूमिका निभाने की क्षमता अर्जित करने के लिए शिक्षण पाने या साधना करने के निमित्त बहुधा शान्ति कुञ्ज बुलाते रहते हैं। इस क्षेत्र की अपनी विशेषता है। गंगा की गोद, हिमालय की छाया, प्राण चेतना से भरा-पूरा वातावरण एवं दिव्य संरक्षण यहाँ उपलब्ध है। इसमें थोड़े समय भी निवास करने वाले अपने में काया कल्प जैसा परिवर्त्तन हुआ अनुभव करते हैं। उन्हें लगता है कि वस्तुतः किसी जाग्रत तीर्थ में निवास करके अभिनव चेतना उपलब्ध करके वे वापस लौट रहे हैं। यह एक प्रकार का आध्यात्मिक सैनिटोरियम है।

साठ वर्ष से जल रहा अखण्ड दीपक, नौ कुण्ड की यज्ञशाला में नित्य दो घण्टे यज्ञ दोनों नवरात्रियों में २४-२४ लक्ष के गायत्री महापुरश्चरण, साधना आरण्यक में नित्य गायत्री उपासकों द्वारा नियमित अनुष्ठान, इन सब बातों से ऐसा दिव्य वातावरण यहां विनिर्मित होता है जैसा मलयागिरि में चन्दन वृक्षों की मनभावन सुगन्ध का। बिना साधना किए भी यहाँ वैसा ही आनन्द आता है मानो यह समय तप साधना में बीता। शान्ति कुञ्ज गायत्री तीर्थ की विशेषता यहाँ सतत् दिव्य अनुभूति होने की है। यह संस्कारित सिद्ध पीठ है क्योंकि यहाँ सूक्ष्म शरीरधारी वे सभी ऋषि क्रिया-कलापों के रूप में विद्यमान हैं, जिनका वर्णन किया है।

उपरोक्त पंक्तियों में ऋषि परम्परा की टूटी कड़ियों में से कुछ को जोड़ने का वह उल्लेख है जो पिछले दिनों अध्यात्म और विज्ञान की—ब्रह्म-वर्चस् शोध साधना द्वारा सम्पन्न किया जाता रहा है। ऐसे प्रसंग एक नहीं अनेकों हैं, जिन पर पिछले साठ वर्षों से प्रयत्न चलता रहा है और यह सिद्ध किया जाता रहा है कि लगनशीलता, तत्परता यदि उच्चस्तरीय प्रयोजनों में संलग्न हो तो उसके परिणाम कितने महत्वपूर्ण हो सकते हैं।

सबसे बड़ा और प्रमुख काम अपने जीवन का एक ही है कि प्रस्तुत

वातावरण को बदलने के लिए दृश्य और अदृश्य प्रयत्न किये जायें। इन दिनों आस्था संकट सघन है। लोग नीति और मर्यादा को तोड़ने पर बुरी तरह उतारू हैं। फलतः अनाचारों की अभिवृद्धि से अनेकानेक संकटों का माहौल बन गया है। न व्यक्ति सुखी है, न समाज में स्थिरता है। समस्याएँ, विपत्तियाँ, बिभीषिकाएँ निरन्तर बढ़ती जा रही है। सुधार के प्रयत्न कहीं भी सफल नहीं हो रहे। स्थिर समाधान के लिए जन-मानस का परिष्कार और सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन यह दो ही उपाय हैं। यह प्रत्यक्ष, रचनात्मक, संगठनात्मक सुधारात्मक उपयोग द्वारा भी चलने चाहिए और अदृश्य आध्यात्मिक उपचारों द्वारा भी। विगत जीवन में यही किया गया है। समूची सामर्थ्य को इसी में होमा गया है। परिणाम आश्चर्यजनक हुए हैं जो होने वाला है उसे अगले दिनों अप्रत्याशित कहा जायगा।

एक शब्द में यह ब्राह्मण मनोभूमि द्वारा अपनाई गई सन्त परम्परा अपनाने में की गई तत्परता है। इस प्रकार के प्रयासों में निरत व्यक्ति अपना भी कल्याण करते हैं दूसरे अनेकानेकों का भी।

हमारी प्रत्यक्ष सिद्धियाँ

सम्पदा एकत्रित होती है तो उसका प्रभाव परिलक्षित होता है। शरीर से स्वस्थ मनुष्य बलिष्ठ और सुन्दर दीखता है। सम्पदा वालों के ठाट-बाट बढ़ जाते हैं। बुद्धिमानों का वैभव, वाणी, रहन-सहन में दिखाई पड़ता है। ठीक इसी प्रकार आध्यात्मिक सम्पदा बढ़ने पर उसका प्रभाव भी स्पष्ट उदीयमान होता दृष्टिगोचर होता है। साधना से सिद्धि का अर्थ होता हैं, असाधारण सफलतायें। साधारण सफलतायें तो सामान्य जन भी अपने पुरुषार्थ और साधनों के सहारे प्राप्त करते रहते हैं और कई तरह की सफलतायें अर्जित करते रहते हैं। अध्यात्म क्षेत्र बड़ा और ऊँचा है, इसलिए उसकी सिद्धियाँ भी ऐसी होनी चाहिए जिन्हें सामान्यजनों के एकाकी प्रयास से न बन पड़ने वाली, अधिक ऊँचे स्तर की मानी जा सके।

इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि आध्यात्मिकता का अवमूल्यन होते-होते वह बाजीगरी स्तर पर पहुँच गयी है और सिद्धियों का तात्पर्य लोग किसी ऐसे ही अजूबे से समझने लगे हैं जो कौतुक कौतूहल उत्पन्न करता हो। दर्शकों को अचम्भे में डालता हो। भले ही वे अचरज सर्वथा निरर्थक ही क्यों न हों? बालों में से बालू निकाल देना, कोई ऐसा कार्य नहीं है, जिसके बिना किसी का काम रुकता हो या उस बालू से किसी का भला होता हो। असाधारण कृत्य, चकाचौंध में डालने वाले करतब ही बाजीगर लोग दिखाते रहते हैं। इसी के सहारे वाहवाही लूटते और पैसा कमाते हैं। किन्तु इनके कार्यों में से एक भी ऐसा नहीं होता जिससे जन-हित का कोई प्रयोजन पूरा होता हो। कौतूहल दिखाकर अपना बड़प्पन सिद्ध करना उनका उद्देश्य होता है। इसके सहारे वे अपना गुजारा चलाते हैं। सिद्ध पुरुषों में भी कितने

ही ऐसे होते हैं जो ऐसी ही कुछ हाथों की सफाई दिखाकर अपनी सिद्धियों का विज्ञापन करते रहते हैं। हवा में हाथ मारकर इलायची या मिठाई मँगा देने, नोट दूने कर देने, जैसे कृत्यों के बहाने चमत्कृत करके कितने ही भोले लोगों को ठग लिए जाने के समाचार आये दिन सुनने को मिलते रहते हैं। लोगों का बचपना है, जो बाजीगरी-कौतुकी और अध्यात्म क्षेत्र की सिद्धियों का अन्तर नहीं कर पाते। बाजीगरों और सिद्ध पुरुषों के जीवन क्रम में—स्तर में जो मौलिक अन्तर रहता है उसे पहचानना आवश्यक है।

साधना से सिद्धि का तात्पर्य उन विशिष्ट कार्यों से है, जो लोक-मंगल से सम्बन्धित होते हैं और इतने बड़े, भारी तथा व्यापक होते हैं, जिन्हें कोई एकाकी संकल्प या प्रयास के बल पर नहीं कर सकता। फिर भी वे उसे करने का दुस्साहस करते हैं—आगे बढ़ने का कदम उठाते हैं और अन्ततः असम्भव लगने वाले कार्य को भी सम्भव कर दिखाते हैं। समयानुसार जन सहयोग उन्हें भी मिलता रहता है। जब सृष्टि नियमों के अनुसार हर वर्ग के मनस्वी को सहयोग मिलते रहते हैं, तब कोई कारण नहीं कि श्रेष्ठ कामों पर वह विधान लागू न होता हो। प्रश्न एक ही है आध्यात्मवादी साधनों और सहयोगों के अभाव में भी कदम बढ़ाते हैं और आत्म-विश्वास तथा ईश्वर-विश्वास के सहारे नाव खेकर पार जाने का भरोसा रखते हैं। सामान्यजनों की मनःस्थिति ऐसी नहीं होती। वे सामने साधन सहयोग की व्यवस्था देख लेते हैं तभी हाथ डालते हैं।

साधनारत सिद्ध पुरुषों द्वारा महान् कार्य सम्पन्न होते रहे हैं। यही उनका सिद्धि चमत्कार है। देश में स्वतन्त्रता आन्दोलन आरम्भ कराने के लिए समर्थ गुरु रामदास एक मराठा बालक को आगे करके जुट गये और उसे आश्चर्यजनक सीमा तक बढा कर रहे। बुद्ध ने संव्याप्त भ्रष्टाचार के विरुद्ध विश्वव्यापी बुद्धिवादी आन्दोलन चलाया और उसे समूचे संसार तक विशेषतया एशिया के कौने-कौने में पहुँचाया। गान्धी ने सत्याग्रह आन्दोलन छेड़ा। मुट्ठी भर लोगों के साथ धरसना में नमक बनाने के साथ शुरू

किया। अन्ततः इसका कैसा विस्तार और कैसा परिणाम हुआ, यह सर्व-विदित है। विनोबा द्वारा एकाकी आरम्भ किया गया भूदान आन्दोलन कितना व्यापक और सफल हुआ यह किसी से छिपा नहीं है। स्काउटिंग, रैडक्रास आदि कितने ही आन्दोलन छोटे रूप में आरम्भ हुए और वे कहीं से कहीं जा पहुँचे। राजस्थान का वनस्थली बालिका विद्यालय—बाबा साहब आमटे का अपंग एवं कुष्ट रोगी सेवा सदन ऐसे ही दृश्यमान कृत्य है, जिन्हें साधना से सिद्धि का प्रत्यक्ष प्रमाण कहा जा सके। ऐसी अगणित घटनायें संसार में सम्पन्न हुई हैं जिनमें आरम्भकर्त्ताओं का कौशल, साधन एवं सहयोग नगण्य था पर आत्मबल असीम था। इतने भर से गाड़ी चल पड़ी और जहाँ-तहाँ से तेल-पानी प्राप्त करती हुई क्रमशः पूर्व से भी अगली मंजिल तक जा पहुँची। सदुदेद्श्यों की ऐसी पूर्ति के पीछे साधना से सिद्धि की झाँकी देखी जा सकती है।

हमारी जीवन साधना की परिणतियाँ यदि कोई सिद्धि स्तर पर ढूँढ़ना चाहे तो उसे निराश नहीं होना पड़ेगा। हर कदम अपने कौशल और उपलब्ध साधनों की सीमा से बहुत ऊँचे स्तर का उठा है। आरम्भ करते समय सिद्धि का पर्यवेक्षण करने वालों ने इसे मूर्खता कहा और पीछे उपहा-सास्पद बनते फिरने की चेतावनी भी दी किन्तु मन में उस ईश्वर के साथ रहने का अटूट विश्वास रहा जिसकी प्रेरणा उसे हाथ में लेने को उठ रही थी। लिप्सा रहित अन्तःकरणों में प्रायः ऐसे ही संकल्प उठते हैं जो सीधे लोकमंगल से सम्बन्धित हों और जिनके पीछे दिव्य सहयोग मिलने का विश्वास हो।

साधना की ऊर्जा सिद्धि के रूप में परिपक्व हुई तो उसने सामयिक आवश्यकतायें पूरी करने वाले किसी कार्य में उसे खपा देने का निश्चय किया। कार्य आरम्भ हुआ। और आश्चर्य इस बात का है कि सहयोग का साधन जुटने का वातावरण दीखते हुए भी प्रयास इस प्रकार अग्रगामी बने मानो वे सुनिश्चित रहे हों और किसी ने उसकी पूर्व से ही सांगोपांग व्यवस्था बना रखी हो। पर्यवेक्षकों में से अनेकों ने इसे आरम्भ में दुस्साहस कहा था

लेकिन सफलतायें मिलती चलने पर वे उस सफलता को साधना की सिद्धि कहते चले गए।

इन दुस्साहसों की छुटपुट चर्चा तो की जा चुकी। उन सबको पुनः दुहराया जा सकता है।

(१) पन्द्रह वर्ष की आयु में चौबीस वर्ष तक चौबीस गायत्री महा-पुरश्चरण चौबीस वर्ष में पूरा करने का अनेक अनुबन्धों के साथ जुड़ा हुआ संकल्प लिया गया। वह बिना लड़खड़ाये नियत अवधि में सम्पन्न हो गया।

(२) इस महापुरश्चरण की पूर्णाहुति में निर्धारित जप का हवन करना था। देश भरके गायत्री उपासक आशीर्वाद देने आमन्त्रित करने थे। पता लगाकर ऐसे चार लाख पाये गए और वे सभी मथुरा में सन् १९५८ में सहस्र कुण्डी यज्ञ में आमन्त्रित किए गए। प्रसन्नता की बात थी कि उनमें से एक भी अनुपस्थित नहीं रहा। पाँच दिन तक निवास, भोजन, यज्ञ आदि का निःशुल्क प्रबन्ध रहा। विशाल यज्ञशाला, प्रवचन मन्त्र, रोशनी, पानी सफाई आदि का सुनियोजित प्रबन्ध था। सात मील के घेरे में सात नगर बसाये गये। सारा कार्य निर्विघ्न पूरा हुआ। लाखों का खर्च हुआ पर उसकी पूर्ति बिना किसी के आगे पल्ला पसारे ही होती रही।

(३) गायत्री तपोभूमि मथुरा के भव्य भवन का निर्माण—शुभारम्भ अपनी पैतृक सम्पत्ति बेचकर किया। पीछे लोगों की अयाचित सहायता से उसका "धर्मतन्त्र से लोक शिक्षण" का उत्तरदायित्व सम्भालने वाले केन्द्र के रूप में विशालकाय ढाँचा खड़ा हुआ।

(४) "अखण्ड-ज्योति" पत्रिका का सन् १९३७ से अनवरत प्रकाशन। बिना विज्ञापन और बिना चन्दा माँगे, लागत मूल्य पर निकलने वाली गाँधी की हरिजन पत्रिका जबकि घाटे के कारण बन्द करनी पड़ी थी तब अखण्ड ज्योति अनेकों मुसीबतों का सामना करती हुई निकलती रही और अभी एक लाख पचास हजार की संख्या में छपती है एक अङ्क को कई पढ़ते हैं इस दृष्टि पाठक दस लाख से कम नहीं।

साहित्य सृजन। आर्षग्रन्थों का अनुवाद तथा व्यावहारिक जीवन में अध्यात्म सिद्धान्तों का सफल समावेश करने वाली नितान्त सस्ती किन्तु अत्यन्त उच्चस्तरीय पुस्तकों का प्रकाशन। इनका अन्यान्य भाषाओं में अनुवाद। यह लेखन इतना है जिसे एक मनुष्य के शरीर भार के समान तोलने पर भी अधिक ही होगा। इसे करोड़ों ने पढ़ा है और नया प्रकाश पाया है।

(६) गायत्री परिवार का गठन—उसके द्वारा लोकमानस के परिष्कार के लिए प्रज्ञा अभियान का और सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन के लिए युग निर्माण योजना का कार्यान्वयन। दोनों के अन्तर्गत लाखों जागृत आत्माओं का एकत्रीकरण। सभी का अपने-अपने ढंग से नव सृजन में भावभरा योगदान।

(७) युग शिल्पी प्रज्ञा पुत्रों के लिए आत्म निर्माण—लोक निर्माण की समग्र पाठ्य-विधि का निर्धारण और सत्र योजना के अन्तर्गत नियमित शिक्षण। दस-दस दिन के गायत्री साधना सत्रों की ऐसी व्यवस्था जिसमें साधकों के लिए निवास, भोजन आदि का भी प्रबन्ध है।

(८) अध्यात्म और विज्ञान के समन्वय की शोध के लिए ब्रह्मवर्चस् शोध संस्थान की स्थापना। इसमें यज्ञ विज्ञान एवं गायत्री महाशक्ति का उच्चस्तरीय अनुसंधान चलता है। इसी उपक्रम को आगे बढ़ाकर जड़ी-बूटी विज्ञान की 'चरक कालीन' प्रक्रिया का अभिनव अनुसंधान हाथ में लिया गया है। इसके साथ ही खगोल विद्या की टूटी हुई कड़ियों को नये सिरे से जोड़ा जा रहा है।

(९) देश के कोने-कोने में २४०० निजी इमारत वाली प्रज्ञा पीठ और बिना इमारत वाले ७५०० प्रज्ञा संस्थानों की स्थापना करके नैतिक, बौद्धिक और सामाजिक पुनर्निर्माण की युगान्तरीय चेतना को व्यापक बनाने का सफल प्रयत्न। इस प्रयास को ७४ देशों के प्रवासी भारतीयों में भी विस्तृत किया गया है।

(१०) देश की समस्त भाषाओं तथा संस्कृतियों के अध्ययन अध्यापन का एक अभिनव केन्द्र स्थापित किया गया है ताकि हर वर्ग के लोगों तक नवयुग की विचारधारा को पहुँचाया जा सके। प्रचारक हर क्षेत्र में पहुँच

सकें। अभी तो जन-जागरण के प्रचारक जत्थे जीप गाड़ियों के माध्यम से हिन्दी, गुजराती, उड़िया-मराठी क्षेत्रों में ही जाते रहे हैं। अब वे देश के कोने-कोने में पहुँचेंगे और पवित्रता, प्रखरता एवं एकात्मकता की जड़ें मजबूत करेंगे।

(११) प्रचार तन्त्र अब तक टैप रिकार्डरों और स्लाइड प्रोजेक्टरों के माध्यम से ही चलता रहा है। अब उसमें वीडियो फिल्म निर्माण की एक कड़ी और जोड़ी जा रही है।

(१२) प्रज्ञा अभियान की विचारधारा को फोल्डर योजना के माध्यम से देश की सभी भाषाओं में प्रसारित प्रचारित किया जा रहा है ताकि कोई कौना ऐसा न बचे, जहाँ नव चेतना का वातावरण न बने।

(१३) प्रज्ञा पुराण के पाँच खण्डों का प्रकाशन—हर भाषा में तथा उसके टैप प्रवचनों का निर्माण। इस आधार पर नवीनतम समस्याओं का पुरातन कथा आधार पर समाधान का प्रयास।

(१४) प्रतिदिन शान्ति-कुन्ज के भोजनालय में शिक्षार्थियों, अतिथियों और तीर्थयात्रियों की संख्या प्रायः एक हजार रहती है। किसी से कोई मूल्य नहीं माँगा जाता। सभी भावश्रद्धा से प्रसाद ग्रहण करके ही जाते हैं।

(१५) अगणित व्यक्ति गायत्री तीर्थ में आकर अनुष्ठान साधना करते रहे हैं। इससे उनके व्यक्तित्व में परिष्कार हुआ है, मनोविकारों से मुक्ति मिली है एवं भावी जीवन की रीति-नीति निर्धारित करने में मदद मिली है। विज्ञान सम्मत पद्धति से ब्रह्मवर्चस् शोध संस्थान में उनका पर्यवेक्षण कर इसे सत्यापित भी किया गया है।

उपरोक्त प्रमुख कार्यों और निर्धारणों को देखकर सहज बुद्धि यह अनुमान लगा सकती है कि इनके लिए कितने श्रम, मनोयोग, साधन, कितनी बड़ी संख्या में—कितने लोगों के लगे होंगे इसकी कल्पना करने पर प्रतीत होता है कि सब सरंजाम पहाड़ जितना होना चाहिए। उसे उठाने, आमन्त्रित एकत्रित करने में एक व्यक्ति की अदृश्य शक्ति भर काम करती रही है। प्रत्यक्ष याचना की—अपील की—चन्दा जमा करने की प्रक्रिया कभी अपनाई नहीं

गई। जो कुछ चला है स्वेच्छा सहयोग से चला है। सभी जानते हैं कि आजकल धन जमा करने के लिए कितने दबाव, आकर्षण और तरीके काम में लाने पड़ते हैं पर मात्र यही एक ऐसा मिशन है जो दस पैसा प्रतिदिन के ज्ञान घट और एक मुट्ठी अनाज वाले धर्मघट स्थापित करके अपना काम भली प्रकार चला लेता है। जो इतनी छोटी राशि देता है, वह यह भी अनुभव करता है कि संस्था हमारी है, हमारे श्रम सहयोग से चल रही है फलतः उसकी आत्मीयता भी सघनता पूर्वक जुड़ी रहती है। संचालकों को भी इतने लोगों के सामने उत्तरदायी होने—जबाव देने का ध्यान रखते हुए एक-एक पाई का खर्च फूँक-फूँककर करना पड़ता है। कम पैसे में इतने बड़े काम चल पड़ने और सफल होने का रहस्य यह लोकप्रियता ही है।

निःस्वार्थ निस्पृह और उच्चस्तरीय व्यक्तित्व वाले जितने कार्यकर्त्ता इस मिशन के पास हैं, उतने अन्य किसी संगठन के पास कदाचित् ही हों। इसका कारण एक ही है, संचालन सूत्र को अधिकाधिक निकट से परखने के उपरान्त यह विश्वास करना कि यहाँ ब्राह्मण आत्मा सही काम करती है। बुद्ध को लोगों ने परखा और लाखों परिव्राजक घर-बार छोड़कर उनके अनुयायी बने। गाँधी के सत्याग्रहियों ने भी वेतन नहीं माँगा। इनदिनों हर संस्था के पास वैतनिक कर्मचारी काम करते हैं, तब मात्र प्रज्ञा अभियान ही एक मात्र ऐसा तन्त्र है जिसमें हजारों लोग उच्चस्तरीय योग्यता होते हुए भी मात्र भोजन वस्त्र पर निर्वाह करते हैं।

इतने व्यक्तियों का श्रम—सहयोग—बूँद-बूँद करके लगने वाला इतना धन साधन किस चुम्बकत्व से खिचता हुआ चला आता है, वह भी एक सिद्धि चमत्कार है जो अन्यत्र कदाचित् ही कहीं दीख पड़े।

पिछले दिनों बार-बार हिमालय जाने और एकान्त साधना करने का निर्देश निबाहना पड़ा। इसमें क्या देखा ? इसकी जिज्ञासा बड़ी आतुरता पूर्वक सभी करते हैं। उनका तात्पर्य, किन्हीं यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, वेताल, सिद्ध पुरुष से भेंट वार्ता रही हो। उनकी उछल-कूद देखी हो। अदृश्य और प्रकटहोने वाले कुछ जादुई गुट के लिए हों। इन जैसी घटनायें सुनाने का मन होता है

है। वे समझते हैं कि हिमालय माने जादू का पिटारा। वहाँ जाते ही कोई करामाती बाबा डिब्बे में से भूत की तरह उछल पड़ते होंगे और जो कोई उस क्षेत्र में जाता है उसे उन कौतूहलों—करतूतों को दिखाकर मुग्ध करते रहते होंगे। वस्तुतः हिमालय हमें अधिक अन्तर्मुखी होने के लिए जाना पड़ा। बहिरंग जीवन पर घटनाएँ छाई रहती हैं और अन्तःक्षेत्र पर भावनाएँ। भावनाओं का वर्चस्व ही अध्यात्मवाद है। कामनाओं और वस्तुओं की घुड़-दौड़—भौतिकवाद। चूँकि अपना जीवन क्रम दोनों का संगम रहा है, इसलिए बीच-बीच में एकान्त में बहिरंग के जमे हुए प्रभावों को निरस्त करने की आवश्यकता पड़ती रही है। आत्मा को प्रकृति सान्निध्य से जितना बन पड़ा उतना हटाया है और आत्मा को परमात्मा के—साथ जितना निकट ला सकना सम्भव था उतना हिमालय के अज्ञातवास में किया है। आहार-विहार में परिस्थिति वश अधिक सात्विकता का समावेश होता ही रहा है। इसके अतिरिक्त सबसे बड़ी बात हुई है—उच्चस्तरीय भाव सम्वेदनाओं का उन्नयन और रसास्वादन। इसके लिए व्यक्तियों की, साधनों की, परिस्थितियों की आवश्यकता नहीं पड़ती। जैसा भी भला-बुरा सामने प्रस्तुत है, उसी पर अपने भाव चिन्तन का आरोपण करके ऐसा स्वरूप बनाया जा सकता है, जिससे कुछ का कुछ दीखने लगे। कण-कण में भगवान की—उसकी रस सम्वेदना की झाँकी होने लगे।

जिनने हमारी "सुनसान के सहचर" पुस्तक पढ़ी है उनने समझा होगा कि सामान्य घटनाओं और परिस्थितियों में भी अपनी उच्च भावनाओं का समावेश करके किस प्रकार स्वर्गीय उमंगों से भरा-पूरा वातावरण गठित किया जा सकता है और उसमें निमग्न रहकर सत्-चित् आनन्द की अनुभूति हो सकती है। यह भी एक उच्चस्तरीय सिद्धि है। इसे हस्तगत करके हम इसी सर्वसाधारण जैसी जीवन चर्या में निरत रहते हुए स्वर्ग में रहने वाले देवताओं की तरह आनन्द मग्न रहते रहे हैं।

★

चौथा और अन्तिम निर्देशन

चौथी बार गत वर्ष पुनः हमें एक सप्ताह के लिए हिमालय बुलाया गया। सन्देश पूर्ववत् सन्देश रूप में आया। आज्ञा के परिपालन में विलम्ब कहाँ होना था। हमारा शरीर सौंपे हुए कार्यक्रमों में खटता रहा है, किन्तु मन सदैव दुर्गम हिमालय अपने गुरु के पास रहा है। कहने में संकोच होता है पर प्रतीत ऐसा भी होता है कि गुरुदेव का शरीर हिमालय रहता है और मन हमारे इर्द-गिर्द मँडराता रहता है। उनकी वाणी अन्तराल में प्रेरणा बनकर गूँजती रहती है। उसी चाबी के कसे जाने पर हृदय और मस्तिष्क का पेण्डुलम धड़कता और उछलता रहता है।

यात्रा पहली तीनों बार की ही तरह कठिन रही। इस बार साधक की परिपक्वता के कारण सूक्ष्म शरीर को आने का निर्देश मिला था। उसी काया को एक साथ तीन परीक्षाओं को पुनः देना था। साधना क्षेत्र में एक बार उत्तीर्ण हो जाने पर पिसे को पीसना भर रह जाता है। मार्ग देखा—भाला था। दिनचर्या बनी बनाई थी। गोमुख से साथ मिल जाना और तपोवन तक सहज जा पहुँचना यही क्रम पुनः चला। उनका सूक्ष्म शरीर कहाँ रहता है, क्या करता है यह हमने कभी नहीं पूछा। हमें तो भेंट का स्थान मालूम है—मखमली गलीचा। ब्रह्म कमल की पहचान हो गई थी। उसी को ढूँढ़ लेते और उसी को प्रथम मिलन पर गुरुदेव के चरणों पर चढ़ा देते। अभिवन्दन—आशीर्वाद के शिष्टाचार में तनिक भी देर न लगती और काम की बात तुरन्त आरम्भ हो जाती। यही प्रकरण इस बार भी दुहराया गया। रास्ते में मन सोचता आया कि जब भी जितनी बार भी बुलाया गया है, तभी पुराना स्थान छोड़कर अन्यत्र जाना पड़ा है। इस बार भी सम्भवतः

वैसा ही होगा। शान्ति-कुञ्ज छोड़ने के उपरान्त सम्भवतः अब इसी ऋषि प्रदेश में आने का आदेश मिलेगा और इस बार कोई काम पिछले अन्य कामों की तुलना में बड़े कदम के रूप में उठाना होगा। यह रास्ते के सङ्कल्प विकल्प थे। अब तो प्रत्यक्ष भेंट हो रही थी।

अब तक के कार्यों पर उनने अपनी प्रसन्नता व्यक्त की। हमने इतना ही कहा—"काम आप करते हैं और श्रेय मुझ जैसे वानर को देते हैं। समग्र समर्पण कर देने के उपरान्त यह शरीर और मन दीखने भर के लिए ही अलग है। वस्तुतः यह सब कुछ आपकी ही सम्पदा है। जब जैसा चाहते हैं, तब वैसा तोड़ मोड़कर आप ही उपयोग कर लेते हैं।

गुरुदेव ने कहा—"अब तक जो बताया और कराया गया है, वह नितान्त स्थानीय था और सामान्य भी। ऐसा जिसे वरिष्ठ मानव कर सकते हैं, भूतकाल में करते भी रहे हैं। तुम अगला काम सम्भालोगे तो यह सारे कार्य दूसरे तुम्हारे अनुवर्त्ती लोग आसानी से करते रहेंगे। जो प्रथम कदम बढ़ाता है, उसे अग्रणी होने का श्रेय मिलता है। पीछे तो ग्रह नक्षत्र भी—सौर मण्डल के सदस्य भी अपनी-अपनी कक्षा पर बिना किसी कठिनाई के ढर्रा चला ही रहे हैं।

अगला काम इससे भी बड़ा है। स्थूल वायु मण्डल और सूक्ष्म वातावरण, इन दिनों इतने विषाक्त हो गये हैं, जिससे मानवी गरिमा ही नहीं, सत्ता भी सङ्कट में पड़ गयी है। भविष्य बहुत भयानक दीखता है। इससे परोक्षतः लड़ने के लिए हमें-तुम्हें वह सब कुछ करना पड़ेगा जिसे अद्‌भुत एवं अलौकिक कहा जा सके।

धरती का घेरा—वायु-जल और जमीन तीनों ही विषाक्त हो रहे हैं। वैज्ञानिक कुशलता के साथ अर्थ लोलुपता के मिल जाने से चल पड़े यन्त्रीकरण ने सर्वत्र विष बिखेर दिया है और ऐसी स्थिति पैदा कर दी है, जिसमें दुर्बलता, रुग्णता और अकाल मृत्यु का जोखिम हर किसी के सिर पर मँडराने लगा है। अणु आयुधों के अनाड़ियों के हाथों प्रयोगों का खतरा इतना बड़ा है कि उसके तनिक से व्यतिक्रम पर सब कुछ भस्मसात हो सकता है। प्रजा

की उत्पत्ति बरसाती घास-पात की तरह हो रही है। यह खायेंगे क्या ? रहेंगे कहाँ ? इन सब विपत्तियों-विभीषिकाओं से विषाक्त वायुमण्डल धरती को नरक बना देगा।

जिस हवा में लोग साँस ले रहे हैं, उसमें जो भी साँस लेता है, वह अचिन्त्य चिन्तन अपनाता और दुष्कर्म करता है। दुर्गति हाथों-हाथ सामने आती जाती है। यह अदृश्य लोक में भर गए विकृत वातावरण का प्रतिफल है। इस स्थिति में जो भी रहेगा, नर पशु और नर पिशाच जैसे क्रिया—कृत्य करेगा। भगवान की इस सर्वोतम कृति धरती और मानव सत्ता को इस प्रकार नरक बनते देखने में व्यथा होती है। महाविनाश की सम्भावना से कष्ट होता है। इस स्थिति को बदलने, इस समस्या का समाधान करने के लिए भारी गोवर्धन पर्वत उठाना पड़ेगा, लम्बा समुद्र छलाँगना पड़ेगा। इसके लिए वामन जैसे बड़े कदम उठाने के लिए तुम्हें बुलाया गया है।

इसके लिए तुम्हें एक से पाँच बनकर पाँच मोर्चों पर लड़ना पड़ेगा। कुन्ती के समान अपनी एकाकी सत्ता को निचोड़कर पाँच देवपुत्रों को जन्म देना होगा जिन्हें भिन्न–भिन्न मोर्चों पर भिन्न–भिन्न भूमिका प्रस्तुत करनी पड़ेंगी।

मैंने बात के बीच में विक्षेप करते हुए कहा—"यह तो आपने परिस्थितियों की बात कहीं। इतना सोचना और समस्या का समाधान खोजना आप बड़ों का काम है। मुझ बालक को तो काम बता दीजिए और सदा की तरह कठपुतली के तारों को अपनी उङ्गलियों में बाँधकर नाच नचाते रहिए। परामर्श मत कीजिए। समर्पित को तो केवल आदेश चाहिए। पहले भी आपने जब कोई मूक आदेश स्थूलतः या सूक्ष्म सन्देश के रूप में भेजा है, उसमें हमने अपनी ओर से कोई ननुनच नहीं की। गायत्री के चौबीस महा-पुरश्चरणों के सम्पादन से लेकर स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेने तक, लेखनी पकड़ने से लेकर विराट् यज्ञायोजन तक एवं विशाल सङ्गठन खड़ा करने से लेकर करोड़ों की स्थापनाएँ करने तक आपकी आज्ञा, संरक्षण एवं मार्ग-दर्शन ने ही सारी भूमिका निभाई है। दृश्य रूप में हम भले ही सबके समक्ष

थे ही, हमारा अन्तःकरण जानता है कि यह सब कराने वाली सत्ता कौन है ? फिर इसमें हमारा सुझाव कैसा, सलाह कैसी ? परिस्थितियों के सन्दर्भ में [illegible] जो भी निर्देश होगा, वह करेंगे। इस शरीर का एक-एक कण, रक्त की एक-एक बूँद, चिन्तन—अन्तःकरण आपको—विश्व मानवता को समर्पित है।" उनने प्रसन्न वदन स्वीकारोक्ति प्रकट की एवं परावाणी से निर्देश व्यक्त करने का उन्होंने संकेत किया।

बात जो विवेचना स्तर की चल रही थी सो समाप्त हो गई और सार संकेत के रूप में जो करना था सो कहा जाने लगा।

"तुम्हें एक से पाँच बनना है। पाँच रामदूतों की तरह, पाँच पाण्डवों की तरह काम पाँच तरह से करने हैं, इसलिए इसी शरीर को पाँच बनाना है। एक पेड़ पर पाँच पक्षी रह सकते हैं। तुम अपने को पाँच बनालो। इसे 'सूक्ष्मीकरण" कहते हैं। पाँच शरीर सूक्ष्म रहेंगे क्योंकि व्यापक क्षेत्र को सम्भालना सूक्ष्म सत्ता से ही बन पड़ता है। जब तक पाँचों परिपक्व होकर अपने स्वतन्त्र काम न सम्भाल सकें, तब तक इसी शरीर से उनका परिपोषण करते रहो। इसमें एक वर्ष भी लग सकता है एवं अधिक समय भी। जब वे समर्थ हो जायें तो उन्हें अपना काम करने हेतु मुक्त कर देना। समय आने पर तुम्हारे दृश्यमान स्थूल शरीर की छुट्टी हो जाएगी।"

यह दिशा निर्देशन हो गया। करना क्या है ? कैसे करना है ? इसका प्रसङ्ग उन्होंने अपनी वाणी में समझा दिया। इसका विवरण बताने का आदेश नहीं है। जो कहा गया है, उसे कर रहे हैं। संक्षेप में इसे इतना ही समझना पर्याप्त होगा—(१) वायु मण्डल का संशोधन। (२) वातावरण का परिष्कार। (३) नवयुग का निर्माण। (४) महाविनाश का निरस्तीकरण समापन। (५) देवमानवों का उत्पादन-अभिवर्धन।

'यह पाँचों काम किस प्रकार करने होंगे, इसके लिए अपनी सत्ता को पाँच भागों में कैसे विभाजित करना होगा, भागीरथ और दधीचि की

भूमिका किस प्रकार निभानी होगी, इसके लिए अलौकिक क्रिया-कलापों से विराम लेना होगा। बिखराव को समेटना पड़ेगा। यही है—सूक्ष्मीकरण।"

"इसके लिए जो करना होगा, समय-समय पर बताते रहेंगे। योजना को असफल बनाने के लिए, इस शरीर को समाप्त करने के लिए जो दानवी प्रहार होंगे उससे बचाते चलेंगे। पूर्व में हुए आसुरी आक्रमण की पुनरावृत्ति कभी भी किसी भी रूप में सज्जनों-परिजनों पर प्रहार आदि के रूप में हो सकती है। पहले की तरह सबमें हमारा संरक्षण साथ रहेगा। अब तक जो काम तुम्हारे जिम्मे दिया है, उन्हें अपने समर्थ सुयोग्य परिजनों के सुपुर्द करते चलना, ताकि मिशन के किसी काम की चिन्ता या जिम्मेदारी तुम्हारे ऊपर न रहे। जिस महा परिवर्त्तन का ढाँचा हमारे मन में है उसे पूरा तो नहीं बताते पर उसे समयानुसार प्रकट करते रहेंगे। ऐसे विषम समय में उस रण-नीति को समय से पूर्व प्रकट करने से उद्देश्य की हानि होगी।"

इस बार हमें अधिक समय रोका नहीं गया। बैटरी चार्ज करके बहुत दिनों तक काम चलाने वाली बात नहीं बनी। उन्होंने कहा कि "हमारी ऊर्जा अब तुम्हारे पीछे अदृश्य रूप चलती रहेगी। अब हमें एवं जिनका आवश्यकता होगी, उन ऋषियों का तुम्हारे साथ सदैव रहना और हाथ बँटाते रहना पड़ेगा। तुम्हें किसी अभाव का, आत्मिक ऊर्जा की कमी का कभी अनुभव नहीं होगा। वस्तुतः यह ५ गुनी और बढ़ जाएगी।"

हमें विदाई दी गई और शान्ति-कुञ्ज लौट आए। हमारी सूक्ष्मीकरण सावित्री साधना राम नवमी १९८४ से प्रारम्भ हो गयी।

तपश्चर्या आत्म-शक्ति के उद्भव हेतु अनिवार्य :

अरविन्द ने विलायत से लौटते ही अंग्रेजों को भगाने के लिए जो उपाय सम्भव थे, वे सभी किये। पर बात बनती न दिखाई पड़ी। राजाओं को संगठित करके, विद्यार्थियों की सेना बनाकर, वनपार्टी गठित करके उनने देख लिया कि इतनी सशक्त सरकार के सामने यह छुटपुट प्रयत्न सफल न हो सकेंगे। इसके लिए समान स्तर की सामर्थ्य, टक्कर लेने के लिए चाहिए।

के सत्याग्रह जैसा समय उन दिनों सम्भव नहीं था। ऐसी दशा में उन्होंने आत्म-शक्ति उत्पन्न करने और उसके द्वारा वातावरण गरम करने का काम हाथ में लिया। अंग्रेजों की पकड़ से अलग हटकर वे पाण्डिचेरी चले गये और एकान्त-वास—मौन साधना सहित विशिष्ट तप करने लगे।

लोगों की दृष्टि में वह पलायनवाद भी हो सकता था पर वस्तुतः वैसा था नहीं। सूक्ष्मदर्शियों के अनुसार उसके द्वारा अदृश्य स्तर की प्रचण्ड ऊर्जा उत्पन्न हुई। वातावरण गरम हुआ और एक ही समय में देश के अन्दर इतने महापुरुष उत्पन्न हुए, जिसकी इतिहास में अन्यत्र कहीं भी तुलना नहीं मिलती। राजनैतिक नेता कहीं भी उत्पन्न हो सकते हैं और कोई भी हो सकते हैं और कोई भी हो सकते हैं किन्तु महापुरुष हर दृष्टि से उच्चस्तरीय होते हैं। जिनका व्यक्तित्व कहीं अधिक ऊँचा होता है इसलिए जनमानस को उल्लसित आन्दोलित करने की क्षमता भी उन्हीं में होती है। दो हजार वर्ष की गुलामी में बहुत कुछ गँवा बैठने वाले देश को ऐसे ही कर्णधारों की आवश्यकता थी। वे एक नहीं अनेकों एक ही समय में उत्पन्न हुए। प्रचण्ड ग्रीष्म में उठते चक्रवातों की तरह। फलतः अरविन्द का वह संकल्प कालान्तर में ठीक प्रकार सम्पन्न हुआ जिसे वे अन्य उपायों से पूरा कर सकने में समर्थ न हो पा रहे थे।

अध्यात्म विज्ञान के इतिहास में उच्चस्तरीय उपलब्धियों के लिए तप साधना एक मात्र विधान उपचार है। वह सुविधा भरी—विलासी रीति नीति अपनाकर सम्पादित नहीं की जा सकती। एकाग्रता और एकात्मता सम्पादित करने के लिए बहुमुखी बाह्याचारों में प्रचार प्रयोजनों में भी निरत नहीं रहा जा सकता। उससे शक्तियाँ बिखरती हैं। फलतः केन्द्रीकरण का वह प्रयोजन पूरा नहीं होता जो सूर्य किरणों की आतिशी शीशे पर केन्द्रित करने की तरह अग्नि उत्पादन जैसी प्रचण्डता उत्पन्न कर सके। अठारह पुराण लिखते समय व्यास उत्तराखण्ड की गुफाओं में वसोधरा शिखर के पास चले गये। साथ में लेखन कार्य की सहायता करने के लिए गणेश जी इस

शर्त पर रहे कि एक शब्द भी बोले बिना सर्वथा मौन रहेंगे। इतना महत्व पूर्ण कार्य इससे कम में सम्भव भी नहीं हो सकता था।

भारतीय स्वाधीनता संग्राम के दिनों महर्षि रमण का मौन तप चलता रहा। इसके अतिरिक्त भी हिमालय में अनेकों उच्चस्तरीय आत्माओं की विशिष्ट तपश्चर्याएँ इसी निमित्त चलीं। राजनेताओं द्वारा संचालित आन्दोलनों को सफल बनाने में इस अदृश्य सूत्र संचालन का कितना बड़ा योगदान रहा इसका स्थूल दृष्टि से अनुमान न लग सकेगा किन्तु सूक्ष्मदर्शी तथ्यान्वेषी उन रहस्यों पर पूरी तरह विश्वास करते हैं।

जितना बड़ा कार्य उतना बड़ा उपाय उपचार के सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुए इस बार की विशिष्ट तपश्चर्या वातावरण के प्रवाह को बदलने सुधारने के लिए की गई है। इसलिए उसका स्तर और स्वरूप कठिन है। आरम्भिक दिनों में जो काम कन्धे पर आया था वह भी लोकमानस को परिष्कृत करने, जागृत आत्माओं को एक संगठन सूत्र में पिरोने और रचनात्मक गतिविधियों का उत्साह उभारने का था। इसके लिए वक्ता, संगठन, गायक एवं प्रचार साधन जुटाने से काम चलने वाला न था। इतने भर से काम चल जाया करे तो इसकी व्यवस्था सम्पन्न लोग अपनी जेब से अथवा दूसरों से माँग-जाँचकर आसानी से पूर्ण कर लिया करते और अब तक स्थिति को बदलकर कुछ से कुछ बना लिया गया होता। कईयों ने पूरे जोर-शोर से यह प्रयत्न किये भी हैं। प्रचारात्मक साधनों के अम्बार भी जुटाये हैं पर उनके बलबूते कुछ ऐसा न बन पड़ा जिसका कारगर प्रभाव हो सके। वस्तुस्थिति को समझने वाले निर्देशक ने सर्वप्रथम एक ही काम सौंपा। चौबीस साल की गायत्री महापुरश्चरण साधना शृंखला का। पिछले तीस वर्षों में जो कुछ बन पड़ा उसमें उसका श्रेय है। कमाई की वह हुण्डी ही अब तक काम देती रही। अपना, व्यक्ति विशेष का; समाज का, संस्कृति का यदि कुछ भला अपने द्वारा बन पड़ा तो इस चौबीस वर्ष के संचित भण्डार को खर्च किये जाने की बात ही समझी जा सकती है। उस समय भी मात्र जप संख्या ही पूरी नहीं की

गई थी वरन् साथ ही कितने ही अनुबन्ध—अनुशासन एवं व्रत पालन भी जुड़े हुए थे।

जप संख्या तो ज्यों-त्यों करके कोई भी खाली समय वाला पूरी कर सकता है पर विलासी एवं अस्त-व्यस्त जीवनचर्या अपनाने वाला कोई व्यक्ति उतनी भर चिन्ह पूजा से कोई बड़ा काम नहीं कर सकता। साथ में तपश्चर्या के कठोर विधान भी जुड़ें रहने चाहिए जो स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीनों ही शरीरों को तपाते और हर दृष्टि से समर्थ बनाते हैं। संचित कषाय-कल्मष भी आत्मिक प्रगति के मार्ग में बहुत बड़े व्यवधान होते हैं। उनका निवारण एवं निराकरण भी इसी भट्टी में प्रवेश करने से बन पड़ता है। जमीन में से निकालते समय लोहा मिट्टी मिला कच्चा होता है। अन्य धातुएँ भी ऐसी ही अनगढ़ स्थिति में होती है। उन्हें भट्टी में डालकर तपाया और प्रयोग के उपयुक्त बनाया जाता है। रस शास्त्री बहुमूल्य रस भस्में बनाने के लिए कई-कई अग्नि संस्कार करते हैं। कुम्हार के पास बर्त्तन पकाने के लिए उन्हें आँवे में तपाने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं। मनुष्यों पर भी यही नियम लागू होते हैं। ऋषि मुनियों की सेवा साधना, धर्म धारणा तो प्रकट है ही साथ ही वे अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए आवश्यक शक्ति अर्जित करने के लिए तपश्चर्या भी समय-समय पर अपनाते रहते थे। यह प्रक्रिया अपने-अपने ढंग से हर महत्वपूर्ण व्यक्ति को सम्पन्न करनी पड़ी है, करनी पड़ेगी। क्योंकि ईश्वर प्रदत्त शक्तियों का उन्नयन, परिपोषण इसके बिना हो नहीं सकता। व्यक्तित्व में पवित्रता, प्रखरता और परिपक्वता न हो तो कहने योग्य—सराहने योग्य सफलताएँ प्राप्त कर सकने का सुयोग ही नहीं बनता। कुचक्र छद्म और आतंक के बलबूते उपार्जित की गई सफलताएँ जादू के तमाशे में हथेली पर सरसों जमाने जैसे चमत्कार दिखाकर तिरोहित हो जाती हैं। बिना जड़ का निकला पेड़ कब तक टिकेगा और किस प्रकार फूलेगा-फलेगा।

तपश्चर्या के मौलिक सिद्धान्त हैं—संयम और सदुपयोग। इन्द्रिय संयम से पेट ठीक रहने से स्वास्थ्य नहीं बिगड़ता। ब्रह्मचर्य पालन से मनोबल का भण्डार चुकने नहीं पाता। अर्थ संयम से, नीति की कमाई से औसत

भारतीय स्तर का निर्वाह करना पड़ता है, फलतः न दरिद्रता फटकती है और न बेईमानी की आवश्यकता पड़ती है। समय संयम से व्यस्त दिनचर्या बनाकर चलना पड़ता है और श्रम तथा मनोयोग को निर्धारित सत्प्रयोजनों में लगाये रहना पड़ता है। फलतः कुकर्मों के लिए समय ही नहीं बचता। जो बन पड़ता है, श्रेष्ठ और सार्थक ही होता है। विचार संयम से एकात्मता सधती है। आस्तिकता, आध्यात्मिकता और धार्मिकता का दृष्टिकोण विकसित होता है। भक्तियोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग की साधना सहज सधती रहती है। संयम का अर्थ है—बचत। चारों प्रकार का संयम बरतने पर मनुष्य के पास इतनी अधिक सामर्थ्य बच रहती है, जिसे निर्वाह परिवार के अतिरिक्त महान प्रयोजनों में प्रचुर मात्रा में भली प्रकार लगाया जाता रहे। संयमशीलों को वासना तृष्णा और अहंता की खाई पाटने में मरना खपना नहीं पड़ता इसलिए सदुद्देश्यों की दिशा में कदम बढ़ाने की आवश्यकता पड़ने पर व्यस्तता, अभावग्रस्तता, चिन्ता, समस्या आदि के बहाने नहीं गढ़ने पड़ते। स्वार्थ-परमार्थ साथ-साथ सधते रहते हैं और हँसती-हँसाती हलकी-फुलकी जिन्दगी जीने का अवसर मिल जाता है। इसी मार्ग पर अब से ६० वर्ष पूर्व मार्गदर्शक ने चलना सिखाया था। वह क्रम अनवरत रूप से चलता रहा। जब भी वातावरण में बैटरी चार्ज करने के लिए बुलाया जाता रहा। विगत तीस वर्षों में एक-एक वर्ष के लिए एकान्तवास और विशेष साधना उपक्रम के लिए जाना पड़ा है। इसका उद्देश्य एक ही था। तपश्चर्या के उत्साह और पुरुषार्थ में—श्रद्धा और विश्वास में कहीं कोई कमी न पड़ने पाये। जहाँ कमी पड़ रही हो उसकी भरपाई होती रहे। भागीरथ शिला—गंगोत्री में की गई साधना से धरती पर ज्ञान गंगा की—प्रज्ञा अभियान की—अवतरण की क्षमता एवं दिशा मिली। एक बार उत्तर काशी के परशुराम आश्रम में वह कुल्हाड़ा उपलब्ध हुआ जिसके सहारे व्यापक अवांछनीयता के प्रति लोकमानस में विक्षोभ एवं आक्रोश उत्पन्न किया जा सके। पौराणिक परशुराम ने धरती पर से अनेक आततायियों के अनेकों बार सिर काटे थे। अपना सिर काटना "ब्रेन वाशिंग" है। विचार क्रान्ति एवं प्रज्ञा अभियान में सृजनात्मक ही नहीं

सुधारात्मक प्रयोजन भी सम्मिलित । यह दोनों ही उद्देश्य जिस प्रकार, जितने व्यापक क्षेत्र में जितनी सफलता के साथ सम्पन्न होते रहे हैं, उनमें न शक्ति कौशल है न साधनों का चमत्कार, परिस्थितियों का संयोग यह मात्र तपश्चर्या की सामर्थ्य से ही सम्पन्न हो सका ।

यह जीवनचर्या के अद्यावधि भूतकाल का विवरण हुआ । वर्तमान में इसी दिशा में एक बड़ी छलांग लगाने के लिए उस शक्ति ने निर्देश किया है, जिस सूत्रधार के इशारों पर कठपुतली की तरह नाचते हुए समूचा जीवन गुजर गया । अब हमें तपश्चर्या की एक नवीन उच्चस्तरीय कक्षा में प्रवेश करना पड़ा है । सर्वसाधारण को इतना ही पता है कि हम एकान्तवास में हैं किसी से मिल जुल नहीं रहे । यह जानकारी सर्वथा अधूरी है । क्योंकि जिस व्यक्ति के रोम-रोम में कर्मठता, पुरुषार्थ–परायणता नियमितता, व्यवस्था भरी पड़ी हो वह इस प्रकार का निरर्थक और निष्क्रिय जीवन जी ही नहीं सकता, जैसा कि समझा जा रहा है । एकान्त वास में हमें पहले की अपेक्षा अधिक श्रम करना पड़ा है । अधिक व्यस्त रहना पड़ा है । तथा लोगों से न मिलने की विधा अपनाने पर भी इतनों से, ऐसों से सम्पर्क सूत्र जोड़ना पड़ा है जिनके साथ बैठने में ढेरों का ढेरों समय चला जाता है पर मन नहीं भरता । फिर एकान्त कहाँ हुआ ? न मिलने की बात कहाँ बन पड़ी ? मात्र कार्य शैली में ही राई रत्ती परिवर्तन हुआ । मिलने-जुलने वालों का वर्ग एवं विषय भर बदला । ऐसी दशा में अकर्मण्य और पलायनवाद का दोष ऊपर कहाँ लदा ? तपस्वी सदा ऐसी ही रीति-नीति अपनाते हैं । वे निष्क्रिय दीखते भर हैं, वस्तुतः अत्यधिक व्यस्त रहते हैं । लट्टू जब पूरे वेग से घूमता है तब स्थिर खड़ा भर दीखता है । उसके घूमने का पता तो चलता है, जब चाल धीमी पड़ती है और बैलेंस लड़खड़ाने पर औंधा गिरने लगता है ।

आइन्स्टीन जिन दिनों अत्यधिक महत्वपूर्ण अणु अनुसन्धान में लगे थे उन दिनों उनकी जीवनचर्या में विशेष प्रकार का परिवर्तन किया गया था । वे भव्य भवन में एकाकी रहते थे । सभी साधन सुविधाएँ उसमें उपलब्ध थीं । साहित्य, प्रयोग उपकरण एवं सेवक सहायक भी । वे सभी दूर रखे जाते थे

ताकि एकान्त में एकाग्रतापूर्वक बन पड़ने वाले चिन्तन में कोई व्यवधान उत्पन्न न हो। वे जब तक चाहते नितान्त एकान्त में सर्वथा एकाकी रहते। कोई उनके कार्य में तनिक भी विक्षेप नहीं कर सकता था। जब वे चाहते घण्टी बजाकर नौकर बुलाते और सभी वस्तु या व्यक्ति प्राप्त कर लेते। मिलने वाले मात्र कार्ड जमा कर जाते और जब कभी उन्हें बुलाया जाता तब की महीनों प्रतीक्षा करते। घनिष्ठता बताकर कोई भी उनके कार्य में विक्षेप नहीं कर सकता था। इतना प्रबन्ध बन पड़ने पर ही उनके लिए यह सम्भव हुआ कि संसार को आश्चर्यचकित कर देने वाली—मनुष्य जाति को महान अनुदान देने वाली उपलब्धियाँ प्रस्तुत कर सके। यदि यारबासों से घिरे रहते उथले कार्यों में रस लेकर समय गुजारते तो अन्यान्यों की तरह वे भी बहुमूल्य जीवन का कोई कहने लायक लाभ न उठा पाते। प्राचीनकाल के ऋषि-तपस्वियों की जीवनचर्या ठीक इसी प्रकार की थी। उनके सामने आत्म विज्ञान से सम्बन्धित अगणित अनुसन्धान कार्य थे। उनमें तन्मयता पूर्वक अपना कार्य कर सकने के लिए वे कोलाहल रहित स्थान निर्धारित करते थे और पूरी तरह तन्मयता के साथ निर्धारित प्रयोजनों में लगे रहते थे।

अपने सामने भी प्रायः इसी स्तर के नये काम करने के लिए रख दिये गये। वे बहुत वजनदार हैं, साथ ही बहुत महत्वपूर्ण भी। इनमें से एक है—विश्वव्यापी सर्वनाशी विभीषिकाओं को निरस्त कर सकने योग्य आत्म-शक्ति उत्पन्न करना। दूसरा है—सृजन शिल्पियों को जिस प्रेरणा और क्षमता के बिना कुछ करते-धरते नहीं बन पड़ रहा है उसकी पूर्ति करना। तीसरा है नवयुग के लिए जिन सत्प्रवृत्तियों का सूत्र-संचालन होना है, उनका ताना बुनना और ढाँचा खड़ा करना। यह तीनों ही कार्य ऐसे हैं जो अकेले स्थूल शरीर से नहीं बन सकते। उसकी सामा और सामर्थ्य अति न्यून है। इन्द्रिय सामर्थ्य थोड़े दायरे में काम कर सकती है और सीमित बजन उठा सकती है। हाड-माँस के पिण्ड में बोलने, सोचने, चलने, करने, कमाने, पचाने की बहुत थोड़ी सामर्थ्य है। उतने भर से सीमित काम हो सकता है। सीमित कार्य से शरीर यात्रा चल सकती है और समीपवर्ती सम्बद्ध लोगों का यत्किंचित भला

हो सकता है। अधिक व्यापक और अधिक बड़े कामों के लिए सूक्ष्म और कारण शरीरों के विकसित किये जाने की आवश्यकता पड़ती है। तीनों जब समान रूप में सामर्थ्यवान और गतिशील होते हैं तब कहीं इतने बड़े काम बन सकते हैं जिनके करने की इनदिनों आवश्यकता पड़ गई है।

रामकृष्ण परमहंस के सामने यही स्थिति आई थी। उन्हें व्यापक काम करने के लिए बुलाया गया। योजना के अनुसार उनने अपनी क्षमता विवेकानन्द को सोंप दी तथा उनके कार्यक्षेत्र को सरल और सफल बनाने के लिए आवश्यक ताना-बाना बुन देने कार्य सम्भाला। इतना बड़ा काम वे मात्र स्थूल शरीर के सहारे कर नहीं पा रहे थे। सो उनने उसे निःसंकोच छोड़ भी दिया। बैलेंस से अधिक वरदान देते रहने के कारण उन पर ऋण भी चढ़ गया था। उसकी पूर्ति के बिना गाड़ी रुकती। इसलिए स्वेच्छापूर्वक कैन्सर का रोग भी ओढ़ लिया। इस प्रकार ऋण मुक्त होकर विवेकानन्द के माध्यम से उस कार्य में जुट गये जिसे करने के लिये उनकी निर्देशक सत्ता ने उन्हें संकेत किया था। प्रत्यक्षतः रामकृष्ण तिरोहित हो गये। उनका अभाव खटका, शोक भी बना। पर हुआ वह जो श्रेयस्कर था। दिवंगत होने के उपरान्त उनकी सामर्थ्य हजार गुनी अधिक बढ़ गई। इसके सहारे उनने देश एवं विश्व में अनेकानेक सत्प्रवृत्तियों का सम्बर्धन किया। जीवन काल से वे भक्तजनों को थोड़ा बहुत आशीर्वाद देते रहे और एक विवेकानन्द को अपना संग्रह सोंपने में समर्थ हुए। पर जब उन्हें सूक्ष्म और कारण शरीर से काम करने का अवसर मिल गया तो उनसे उत्तरी क्षेत्रों में इतना काम किया जा सका जिसका लेखा-जोखा ले सकना सामान्य स्तर की जाँच-पड़ताल से समझ सकना सम्भव नहीं।

ईसा की जीवनचर्या भी ऐसी ही है। वे जीवन भर में बहुत-दौड़-धूप के उपरान्त मात्र १३ शिष्य बना सके। देखा कि स्थूल शरीर की क्षमता से उतना बड़ा काम न हो सकेगा जितना वे चाहते हैं, ऐसी दशा में यही उपयुक्त समझा कि सूक्ष्म शरीर का अवलम्बन कर संसार भर में ईसाई मिशन फैला

दिया जाय। ऐसे परिवर्तनों के समय महापुरुष पिछला हिसाब-किताब साफ करने के लिए कष्टसाध्य मृत्यु का वरण करते हैं। ईसा का क्रूस पर चढ़ना, सुकरात का विष पीना, कृष्ण को तीर लगना, पाण्डवों का हिमालय में गलना, गाँधी का गोली खाना, आद्य शंकराचार्य को भगन्दर होना यह बताता है कि अगले महान प्रयोजनों के लिए जिन्हें स्थूल से सूक्ष्म में प्रवेश करना होता है, वे उपलब्ध शरीर का इस प्रकार अन्त करते हैं, जिसे बलिदान स्तर का—प्रेरणा प्रदान करने वाला और अपने चलते समय का पवित्रता, प्रखरता प्रदान करने वाला कहा जा सके। हमारे साथ भी यही हुआ है व आगे होना है।

स्थूल का सूक्ष्म में परिवर्त्तन: सूक्ष्मीकरण

युग परिवर्त्तन की यह एक ऐतिहासिक बेला है। इन बीस वर्षों में हमें जमकर काम करने की ड्यूटी सौंपी गई थी। सन् १६८० से लेकर अब तक के पाँच बर्षों में जो काम हुआ है पिछले ३० वर्षों की तुलना में कहीं अधिक है। समय की आवश्यकता के अनुरूप तत्परता बरती गई प और खपत को ध्यान में रखते हुए तद्नुरूप शक्ति उपार्जित की गई है। यह वर्ष कितनी जागरूकता, तन्मयता एकाग्रता और पुरुषार्थ की चरम सीमा तक पहुँच कर व्यतीत करने पड़े हैं, उनका उल्लेख उचित न होगा। क्योंकि इस तत्परता का प्रतिफल २४०० प्रज्ञा पीठों और १५००० प्रज्ञा संस्थानों के निर्माण के अतिरिक्त और कुछ प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर नहीं होता। एक कड़ी हर दिन एक फोल्डर लिखने की इसमें और जोड़ी जा सकती है शेष सब कुछ परोक्ष है। परोक्ष का प्रत्यक्ष लेखा-जोखा किस प्रकार सम्भव हो ?

युग सन्धि की बेला में अभी १५ वर्ष और रह जाते हैं। इस अवधि में गतिचक्र और भी तेजी से भ्रमण करेगा। एक ओर उसकी गति बढ़ानी होगी, दूसरी ओर रोकनी। विनाश को रोकने और विकास को बढ़ाने की आबश्यकता पड़ेगी। दोनों ही गतियाँ इन दिनों मन्थर हैं। इस हिसाब से सन् २००० तक उस लक्ष्य की उपलब्धि न होसकेगी जो अभीष्ट है। इसलिए सृष्टि के प्रयास चक्र निश्चित रूप से तीव्र होंगे। उसमें हमारी भी

गीध—गिलहरी जैसी भूमिका है । काम कौन, कब, क्या, किस प्रकार करे—यह बात आगे की है । प्रश्न जिम्मेदारी का है । युद्ध काल में जो जिम्मेदारी सेनापति की होती है, वही खाना पकाने वाले की भी । आपत्ति काल में उपेक्षा कोई भी नहीं बरत सकता ।

इस अवधि में एक साथ कई मोर्चों पर एक साथ लड़ाई लड़नी होगी। समय ऐसे भी आते हैं जब खेत की फसल काटना, जानवरों को चारा लाना, बीमार लड़के का इलाज कराना, मुकदमे की तारीख पर हाजिर होना, घर आये मेहमान का स्वागत करना जैसे कई काम एक ही आदमी को एक ही समय पर करने होते हैं । युद्ध काल में तो बहुमुखी चिन्तन और उत्तर-दायित्व और भी अधिक सघन तथा विरल हो जाता है । किस मोर्चे पर कितने सैनिक भेजना है, जो लड़ रहे हैं, उनके लिए गोला बारूद कम न पड़ने देना रसद का प्रबन्ध रखना, अस्पताल का दुरस्त होना, मरे हुए सैनिकों को ठिकाने लगाना, अगले मोर्चे के लिए खाइयाँ खोदना जैसे काम बहुमुखी होते हैं । सभी पर समान ध्यान देना होता है । एक में भी चूक होने से बात बिगड़ जाती है । करा-धरा चौपट हो जाता है ।

हमें अपनी प्रवृत्तियाँ बहुमुखी बढ़ा लेने के लिए कहा गया है । इसमें सबसे बड़ी कठिनाई स्थूल शरीर का सीमा बन्धन है । यह सीमित है, सीमित क्षेत्र में ही काम कर सकता है । सीमित ही वजन उठा सकता है । काम असीम क्षेत्र से सम्बन्धित हैं और ऐसे हैं जिनमें एक साथ कितनों से ही वास्ता पड़ना चाहिए । यह कैसे बने ? इसके लिए एक तरीका यह है कि स्थूल शरीर को बिलकुल ही छोड़ दिया जाय और जो करना है उसे पूरी तरह एक या अनेक सूक्ष्म शरीरों से सम्पन्न करते रहा जाय । निर्देशक को यदि यही उचित लगेगा तो उसे निपटाने में पल भर की भी देर न लगेगी । स्थूल शरीरों का एक झंझट है कि उनके साथ कर्मफल के भोग विधान जुड़ जाते हैं । यदि लेन-देन बाकी रहे तो अगले जन्म तक वह भार

लदा चला जाता है और फिर खींचतान करता है। ऐसी दशा में उसके भोग भुगतते हुए जाने में निश्चिन्तता रहती है।

रामकृष्ण परमहँस ने आशीर्वाद वरदान बहुत दिए थे। उपार्जित पुण्य भण्डार कम था। हिसाब चुकाने के लिए गले का कैन्सर बुलाया गया। बेबाकी तब हुई। आद्य शङ्कराचार्य को भी भगन्दर का फोड़ा ही जान लेकर गया था। महात्मा नारायण स्वामी को भी ऐसा ही रोग सहना पड़ा। गुरु गोलवलकर कैंन्सर से पीड़ित होकर स्वर्गवासी हुए। ऐसे ही अन्य उदाहरण भी हैं जिनमें पुण्यात्माओं को अन्तिम समय व्यथा पूर्वक बिताना पड़ा। इसमें उनके पापों का दण्ड कारण नहीं होता वह पुण्य व्यतिरेक की भरपाई करना होता है। वे कइयों का कष्ट अपने ऊपर लेते रहते हैं। बीच में चुका सके तो ठीक अन्यथा अन्तिम समय हिसाब-किताब बराबर करते हैं, ताकि आगे के लिए कोई झंझट शेष न रहे और जीवन—मुक्त स्थिति बने रहने में पीछे का कोई कर्मफल व्यवधान उत्पन्न न करे।

मूल प्रश्न जीव सत्ता के सूक्ष्मीकरण का है। सूक्ष्म व्यापक होता है। बहुमुखी भी। एक ही समय में कई जगह काम कर सकता है। कई उत्तर-दायित्व एक साथ ओढ़ सकता है। जबकि स्थूल के लिए एक स्थान, एक सीमा के बन्धन हैं। स्थूल शरीरधारी अपने भाग-दौड़ के क्षेत्र में ही काम करेगा। साथ ही भाषा ज्ञान के अनुरूप विचारों का आदान-प्रदान कर सकेगा। किन्तु सूक्ष्म में प्रवेश करने पर भाषा सम्बन्धी झंझट दूर हो जाते हैं विचारों का आदान-प्रदान चल पड़ता है। विचार सीधे मस्तिष्क या अन्त-राल तक पहुँचाए जा सकते हैं। उनके लिए भाषा माध्यम आवश्यक नहीं। व्यापकता की दृष्टि से यह एक बहुत बड़ी सुविधा है। यातायात की व्यवस्था भी स्थूल—शरीरधारी को चाहिए। पैरों के सहारे तो यह घण्टे में प्रायः तीन मील ही चल पाता है। वाहन जिस गति का होगा, उसकी दौड़ भी उतनी ही रह जायगी। एक व्यक्ति की एक जीभ होती है। उसका उच्चारण उसी से होगा। किन्तु सूक्ष्म शरीर की इन्द्रियों पर इस प्रकार का बन्धन नहीं

है। उनकी देखने की, सुनने की, बोलने की सामर्थ्य स्थूल शरीर की तुलना में अनेक गुनी हो जाती है। एक ही शरीर समयानुसार अनेक शरीरों में भी प्रतिभाषित हो सकता है। रास के समय श्रीकृष्ण के अनेकों शरीर गोपियों को अपने साथ सहनृत्य करते दीखते थे। कंस वध के समय तथा सिया स्वयम्बर के समय उपस्थित समुदाय को राम और कृष्ण की विभिन्न प्रकार की आकृतियाँ दृष्टिगोचर हुई थीं। विराट् रूप के दर्शन में भगवान् ने अर्जुन को, यशोदा को जो दर्शन कराया था, वह उनके सूक्ष्म एवं कारण शरीर का ही आभास था। अलङ्कार काव्य के रूप में उसकी व्याख्या की जाती है, सो भी किसी सीमा तक ठीक ही है।

यह स्थिति शरीर त्यागते ही हर किसी को उपलब्ध हो जाय यह सम्भव नहीं। भूत-प्रेत चले तो सूक्ष्म शरीर में जाते हैं पर वे बहुत ही अनगढ़ स्थिति में रहते हैं। मात्र सम्बन्धित लोगों को ही अपनी आवश्यकताएँ बताने भर के दृश्य कठिनाई से दिखा सकते हैं। पितर स्तर की आत्माएँ उनसे कहीं अधिक सक्षम होती हैं। उनका विवेक एवं व्यवहार कहीं अधिक उदात्त होता है। इसके लिए उनका सूक्ष्म शरीर पहले से ही परिष्कृत हो चुका होता है। सूक्ष्म शरीर को उच्चस्तरीय क्षमता—सम्पन्न बनाने के लिए विशेष प्रयत्न करने पड़ते हैं। वे तपस्वी स्तर के होते हैं। सामान्य काया को सिद्ध पुरुष स्तर की बनाने के लिए अगला कदम सूक्ष्मीकरण का है सिद्ध पुरुष अपनी काया की सीमा में रहकर जो दिव्य क्षमता अर्जित कर सकते हैं, कर लेते हैं। उसी से दूसरों की सेवा सहायता करते हैं। किन्तु शरीर विकसित कर लेने वाले उन सिद्धियों के भी धनी देखे गए हैं जिन्हें योगशास्त्र में अणिमा, महिमा, लघिमा आदि कहा गया है। शरीर का हलका, भारी, दृश्य, अदृश्य हो जाना, यहाँ से वहाँ जा पहुँचना, प्रत्यक्ष शरीर के रहते हुए सम्भव नहीं। क्योंकि सशरीरगत परमाणुओं की संरचना ही ऐसी नहीं है जो पदार्थ विज्ञान की सीमा मर्यादा से बाहर जा सके। कोई मनुष्य हवा में नहीं उड़ सकता और न पानी पर चल सकता है। यदि ऐसा

कर सका तो उसने वैज्ञानिकों की चुनौती अवश्य स्वीकार की होती और प्रयोगशाला जाकर विज्ञान के प्रतिपादनों में एक नया अध्याय अवश्य ही जोड़ता। किम्बदन्तियों के आधार पर कोई किसी से इस स्तर की सिद्धियों का बखान करने भी लगे, तो उसे अत्युक्ति ही माना जायगा। अब—प्रत्यक्ष को प्रामाणित किए बिना किसी कीगति नहीं।

प्रश्न सूक्ष्मीकरण साधना का है जो हम इन दिनों कर रहे हैं। यह एक विशेष साधना है, जो स्थूल शरीर में रहते हुए भी की जा सकती है और उसे त्यागने के उपरान्त भी करनी पड़ती है। दोनों ही परिस्थितियों में यह स्थिति बिना अतिरिक्त प्रयोग—पुरुषार्थ के—तप साधना के—सम्भव नहीं हो सकती। इसे योगाभ्यास तपश्चर्या का अगला चरण कहना चाहिए।

इसके लिए किसे क्या करना होता है, यह उसके वर्त्तमान स्तर एवं उच्चस्तरीय मार्गदर्शन पर निर्भर होता है। सबके लिए एक पाठ्यक्रम नहीं हो सकती। किन्तु इतना अवश्य है कि अपनी शक्तियों का बहिरङ्ग अपव्यय रोकना पड़ता है अण्डा जब तक पक नहीं जाता तब तक एक खोखले में बन्द रहता है। इसके बाद वह इस छिलके को तोड़कर चलने—फिरने और दौड़ने—उड़ने लगता है। लगभग यही अभ्यास सूक्ष्मीकरण के हैं जो हमने पिछले दिनों किए हैं। प्राचीन काल में गुफा सेवन, समाधि आदि का प्रयोग प्रायः इसी निमित्त होता था।

सूक्ष्म शरीर धारियों का वर्णन और विवरण पुरातन ग्रन्थों में विस्तारपूर्वक मिलता है। यक्ष और युधिष्ठिर के मध्य विग्रह तथा विवाद का महाभारत में विस्तार पूर्वक वर्णन है यक्ष, गन्धर्व, ब्रह्मराक्षस जैसे कई वर्ग सूक्ष्म शरीर धारियों के थे। विक्रमादित्य के साथ पाँच "वीर" रहते थे। शिवजी के गण "वीरभद्र" कहलाते थे। भूत, प्रेत, जिन्न, मसानों की अलग ही बिरादरी थी। 'अलाद्दीन का चिराग' जिनने पढ़ा है उन्हें इस समुदाय

की गतिविधियों की जानकारी होगी । छायापुरुष साधना में अपने निज के शरीर से ही एक अतिरिक्त सत्ता गढ़ ली जाती है और वह एक समर्थ अदृश्य साथी सहयोगी जैसा काम करती है ।

इन सूक्ष्म शरीर धारियों में अधिकाँश का उल्लेख हानिकारक या नैतिक दृष्टि से हेय स्तर पर हुआ है । सम्भव है उन दिनों अतृप्त विक्षुब्ध स्तर के योद्धा रणभूमि में मरने के उपरान्त ऐसे ही कुछ हो जाते रहे हों। उन दिनों युद्धों की मार—काट ही सर्वत्र संव्याप्त थी, पर साथ ही सूक्ष्म शरीरधारी देवर्षियों का भी कम उल्लेख नहीं है । राजर्षि और ब्रह्मर्षि तो स्थूल शरीरधारी ही होते थे पर जिनकी गति सूक्ष्म शरीर में भी काम करती थी वे देवर्षि कहलाते थे । वायुभूत होकर विचरण करते थे । लोक—लोकान्तरों में जा सकते थे । जहाँ आवश्यकता अनुभव करते थे वहाँ भक्तजनों का मार्गदर्शन करने के लिए अनायास ही जा पहुँचते थे ।

ऋषियों में से अन्य कईयों के भी ऐसे उल्लेख मिलते हैं । वे समय-समय पर धैर्य देने, मार्गदर्शन करने या जहाँ आवश्यकता समझी है, वहाँ पहुँचे, प्रकट हुए हैं । पैरों से चलकर जाना नहीं पड़ा है। अभी भी हिमालय के कई यात्री ऐसा विवरण सुनाते हैं कि राह भटक जाने पर कोई उन्हें उपयुक्त स्थल तक छोड़कर चला गया । कइयों ने किन्हीं गुफाओं में, शिखरों पर अदृश्य योगियों को दृश्य तथा दृश्य को अदृश्य होते देखा है । तिब्बत के लामाओं की ऐसी कितनी ही कथा—गाथाएँ सुनी गई हैं । थियोसोफिकल सोसायटी की मान्यता है कि अभी हिमालय के ध्रुव केन्द्र पर एक ऐसी मण्डली है जो विश्व शान्ति में योगदान करती है । इसे उन्होंने "अदृश्य सहायक" नाम दिया है ।

यहाँ स्मरण रखने योग्य बात यह है कि यह देवर्षि समुदाय भी मनुष्यों का ही एक विकसित वर्ग है । योगियों, सिद्ध पुरुषों और महामानवों की तरह वह सेवा—सहायता में दूसरों की अपेक्षा अधिक समर्थ पाया जाता है । पर यह मान बैठना गलती होगी कि वे सर्व समर्थ हैं और किसी की

भी मनोकाममा को तत्काल पूरी कर सकते हैं, या अमोघ वरदान दे सकते हैं। कर्मफल की वरिष्ठता सर्वोपरि है। उसे भगवान ही घटा या मिटा सकते हैं। मनुष्य की सामर्थ्य से वह बाहर है। जिस प्रकार बीमार की चिकित्सक, विपत्ति ग्रस्त की धनी सहायता कर सकता है ठीक उसी प्रकार सूक्ष्म शरीर-धारी देवर्षि भी समय-समय पर सत्कर्मों के निमित्त बुलाने पर अथवा बिना बुलाये भी सहायता के लिए दौड़ते हैं। इससे बहुत लाभ भी मिलता है। इतने पर भी किसी को नहीं मान बैठना चाहिए कि पुरुषार्थ की आवश्यकता ही नहीं रही, या उनके आड़े आते ही निश्चित सफलता मिल गई। ऐसा रहा होता तो लोग उन्हीं का आसरा लेकर निश्चिन्त हो जाते और फिर निजी पुरुषार्थ की आवश्यकता न समझते। निजी कर्मफल आड़े आने—परि-स्थितियों के बाधक होने की बात को ध्यान में ही न रखते।

यहाँ एक अच्छा उदाहरण हमारे हिमालयवासी गुरुदेव का है। सूक्ष्म शरीरधारी होने के कारण ही वे उस प्रकार के वातावरण में रह पाते हैं, जहाँ जीवन निर्वाह के कोई साधन नहीं हैं। समय-समय पर हमारा मार्गदर्शन और सहायता करते रहते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि हमें कुछ करना नहीं पड़ा, कोई कठिनाई मार्ग में आयी ही नहीं, कभी असफलता मिली ही नहीं। यह भी होता रहा है। पर निश्चित है कि हम एकाकी जो कर सकते थे उसकी अपेक्षा उस दिव्य सहयोग से मनोबल बहुत बढ़ा-चढ़ा रहा है। उचित मार्गदर्शन मिला है। कठिनाई के दिनों में धैर्य और साहस यथावत् स्थिर रहा है। यह कम नहीं है। इतनी ही आशा दूसरों से करनी भी चाहिए। सब काम करके कोई रख जाएगा ऐसी आशा भगवान् से भी नहीं करनी चाहिए। भूल यही होती रही कि दैवी सहायता का नाम लेते हा लोग समझते हैं कि वह जादू की छड़ी घुमाई और मनचाहा काम बन गया। ऐसे ही अतिवादी लोग क्षण भर में आस्था खो बैठते देखे गए हैं। दैवी शक्तियों से, सूक्ष्म शरीरों से हमें सामयिक सहायता की आशा करनी चाहिए। साथ ही अपनी जिम्मेदारियाँ आप वहन करने के लिए कटिबद्ध भी रहना चाहिए। असफलताओं तथा कठिनाइयों को अच्छा शिक्षक

मानकर अगले कदम अधिक सावधानी के, अधिक बहादुरी के उठाने की तैयारी करनी चाहिए।

सूक्ष्म शरीरों की शक्ति सामान्यतः भी अधिक होती है। दूर दर्शन, दूर श्रवण, पूर्वाभास, विचार—सम्प्रेषण आदि में प्रायः सूक्ष्म शरीर की ही भूमिका रहती है। उनकी सहायता से कितनों को ही विपत्तियों से उबरने का अवसर मिला है। कइयों को ऐसी सहायताएँ मिली हैं जिनके बिना उनका कार्य रुका ही पड़ा रहता। दो सच्चे मित्र मिलने से लोगों की हिम्मत कई गुना बढ़ जाती है। वैसा ही अनुभव अदृश्य सहायकों के साथ सम्बन्ध जुड़ने से भी करना चाहिए।

जिस प्रकार अपना दृश्य संसार है और उसमें दृश्य शरीर वाले जीवधारी रहते हैं। ठीक उसी प्रकार उससे जुड़ा हुआ एक अदृश्य लोक भी है। उसमें सूक्ष्म शरीरधारी निवास करते हैं। इनमें कुछ बिलकुल साधारण, कुछ दुरात्मा और कुछ अत्यन्त उच्चस्तर के होते हैं। वे मनुष्य लोक में समुचित दिलचस्पी लेते हैं। बिगड़ों को सुधारना और सुधरों को अधिक सफल बनाने में अयाचित सहायता माँगने का प्रयोजन और माँगने वाले का स्तर उपयुक्त होने पर तो वह सहायता और भी अच्छी तरह और भी बड़ी मात्रा में मिलती है।

यह सूक्ष्म शरीरों की, सूक्ष्म लोक की सामान्य चर्चा हुई। प्रसंग अपने आपे का है। यह विषम बेला है। इसमें प्रत्यक्ष शरीर वाले, प्रत्यक्ष उपाय-उपचारों से जो कर सकते है सो तो कर ही रहे हैं। करना भी चाहिए। पर दीखता है कि उतने भर से काम चलेगा नहीं। सशक्त सूक्ष्म शरीरों को बिगड़ों को अधिक न बिगड़ने देने के लिए अपना जोर लगाना पड़ेगा। सँभालने के लिए जो प्रक्रिया चल रही है वह पर्याप्त न होगी। उसे और भी अधिक सरल–सफल बनाने के लिए अदृश्य सहायता की आवश्यकता पड़ेगी। यह सामूहिक समस्याओं के लिए भी आवश्यक होगा और व्यक्तिगत रूप से सत्प्रयोजनों में संलग्न व्यक्तित्वों को अग्रगामी—यशस्वी बनाने की दृष्टि से भी।

जब हमें यह काम सौंपा गया तो उसे करने में आनाकानी कैसी ? दिव्य सत्ता के संकेतों पर चिरकाल से चलते चले आ रहे हैं और जब तक आत्मबोध जागृत रहेगा तब तक यही स्थिति बनी रहेगी । यही गतिविधि चलेगी । यह विषम बेला है, इन दिनों दृश्य और अदृश्य क्षेत्र में जो विषाक्तता भरी हुई है उसका परिशोधन प्रयास अविलम्ब हो गया है तो संजीवनी बूटी लाने के लिए पर्वत उखाड़ लाने और सुषैण वैद्य की खोज में जाने के लिए जो भी करना पड़े करना चाहिए । यह कार्य स्थूल शरीर को प्रसुप्त से जागृत स्थिति में लाने के लिए हमें अविलम्ब जुटना पड़ा एवं विगत दो वर्षों में कठोर तपश्चर्या का—एकान्त साधना का अवलम्बन लेना पड़ा ।

इनदिनों हम यह करने में जुट रहे हैं

हमारी जिज्ञासाओं एवं उत्सुकताओं का समाधान गुरुदेव प्रायः हमारे अन्तराल में बैठकर ही किया करते हैं। उनकी आत्मा हमें अपने समीप ही दृष्टिगोचर होती रहती है। आर्षग्रन्थों के अनुवाद से लेकर प्रज्ञा पुराण की संरचना तक जिस प्रकार लेखन प्रयोजन में उनका मार्ग दर्शन अध्यापक और विद्यार्थी जैसा रहा है, हमारी वाणी भी उन्हीं की सिखावन को दुहराती रही है। घोड़ा जिस प्रकार सवार के संकेतों पर दिशा और चाल बदलता रहता है, वही प्रक्रिया हमारे साथ भी कार्यान्वित होती रही है।

बैटरी चार्ज करने के लिए जब हिमालय बुलाते हैं, तब भी वे कुछ विशेष कहते नहीं। सेनीटोरियम में जिस प्रकार किसी दुर्बल का स्वास्थ्य सुधर जाता है, वही उपलब्धियाँ हमें हिमालय जाने पर हस्तगत होती हैं। वार्तालाप का प्रयोग अनेकों प्रसंगों में होता रहता है।

इस बार सूक्ष्मीकरण की प्रक्रिया और साधना विधि तो ठीक तरह समझ में आ गई और जिस प्रकार कुन्ती ने अपने शरीर में से देव सन्तानें जन्मी थीं ठीक उसी प्रकार अपनी काया में विद्यमान पाँच कोषों, अन्नमय, मनोमय, प्राणमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोषों को पाँच वीर भद्रों के रूप में विकसित करना पड़ेगा, इसकी साधना विधि भी समझ में आ गई। जब तक वे पाँचों पूर्ण समर्थ न हो जाँय, तब तक वर्तमान स्थूल शरीर को उनके घोंसले की तरह बनाये रहने का भी आदेश है और अपनी दृश्य स्थूल जिम्मेदारियाँ दूसरों को हस्तान्तरित करने की दृष्टि से अभी शान्ति-कुञ्ज ही रहने का निर्देश है।

यह सब स्पष्ट हो गया सावित्री साधना का विधान भी उनका निर्देश मिलते ही इस निमित्त आरम्भ कर दिया।

अब प्रश्न यह रहा कि पाँच वीरभद्रों को काम क्या सोंपना पड़ेगा और किस प्रकार वे क्या करेंगे। उसका उत्तर भी अधिक जिज्ञासा रहने के कारण अब मिल गया। इससे निश्चिन्तता भी हुई और प्रसन्नता भी।

इस संसार में आज भी ऐसी कितनी ही प्रतिभाएँ हैं जो दिशा पलट जाने पर अभी जो कर रही हैं, उसकी तुलना में अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य करने लगेंगी। उलटे को उलटकर सीधा करने के लिए जिस प्रचण्ड शक्ति की आवश्यकता होती है। उसी को हमारे अंग-अंग वीरभद्र करने लगेंगे। प्रतिभाओं की सोचने की यदि दिशा बदली जा सके तो उनका परिवर्तन चमत्कारी जैसा हो सकता है।

नारद ने पार्वती, ध्रुव, प्रह्लाद, बाल्मीकी, सावित्री आदि की जीवन दिशा बदली, तो वे जिन परिस्थितियों में रह रहे थे, उसे लात मार कर दूसरी दिशा में चल पड़े और संसार के लिए एक अनुकरणीय उदाहरण बन गये। भगवान बुद्ध ने आनन्द, कुमार जीव, अंगुलिमाल, अम्बपाली, अशोक, हर्षवर्धन संघ मित्रा आदि का मन बदल दिया तो वे जो कुछ कर रहे थे, उसके ठीक उलटा करने लगे और विश्व विख्यात हो गये। विश्वामित्र ने हरिश्चन्द्र को एक मामूली राजा नहीं रहने दिया वरन् इतना वरेण्य बना दिया कि उनकी लीला अभिनय देखने मात्र से गाँधी जी विश्व बंद्य हो गए। महाकृपण भामाशाह को सन्त विठोबा ने अन्तःप्रेरणा दी और उनका सारा धन महाराणा प्रताप के लिए उगलवा लिया। आद्यशंकराचार्य की प्रेरणा से मान्धाता ने चारों धामों के मठ बना दिये। अहिल्याबाई को एक सन्त ने प्रेरणा देकर कितने ही मन्दिरों घाटों का जीर्णोद्धार करा लिया और दुर्गम स्थानों पर नये देवालय बनाने के संकल्प को पूर्ण कर दिखाने के लिए सहमत कर लिया। समर्थ गुरु रामदास ने शिवाजी को वह काम करने की अन्तःप्रेरणा दी जिसे वे अपनी इच्छा से कदाचित ही कर पाते। रामकृष्ण परमहंस ही थे, जिन्होंने नरेन्द्र

के पीछे पड़कर उसे विवेकानन्द बना दिया। राजा गोपीचन्द का मन वैराग्य में लगा देने का श्रेय सन्त भर्तृहरि को था।

ऐसे उदाहरणों से इतिहास भरा पड़ा है, जिसमें कितनी ही प्रतिभाओं को किन्हीं मनस्वी आत्म वेत्ताओं ने बदलकर कुछ से कुछ बना दिया। उनकी अनुकम्पा न हुई होती तो वे जीवन भर अपने उसी पुराने ढर्रे पर लुढ़कते रहते, जिस पर कि उनका परिवार चल रहा था।

हमारी अपनी बात भी ठीक ऐसी ही है। यदि गुरुदेव ने उलट न दिया होता तो हम अपने पारिवारिक जनों की तरह पौरोहित्य का धन्धा कर रहे होते या किसी और काम में लगे रहते। उस स्थान पर पहुँच ही न पाते, जिस पर कि हम अब पहुँच गये हैं।

इनदिनों युग परिवर्तन के लिए कई प्रकार की प्रतिभाएँ चाहिए। विद्वानों की आवश्यकता है, जो लोगों को अपने तर्क प्रमाणों से सोचने की नई पद्धति प्रदान कर सके। कलाकारों की आवश्यकता है, जो चैतन्य महाप्रभु, मीरा, सूर, कबीर की भावनाओं को इस प्रकार लहरा सकें, जैसे सपेरा साँप को लहराता रहता है। धनवानों की जरूरत है, जो अपने पैसे को विलास में खर्च करने की अपेक्षा सम्राट अशोक की तरह अपना सर्वस्व समय की आवश्यकता पूरी करने के लिए लुटा सकें। राजनीतिज्ञों की जरूरत है जो गाँधी, रूसो और कार्लमार्क्स, लेनिन की तरह अपने सम्पर्क के प्रजाजनों को ऐसे मार्ग पर चला सकें, जिसकी पहले कभी भी आशा नहीं की गई थी।

भावनाशील का क्या कहना ? सन्त सज्जनों ने न जाने कितनों को अपने सम्पर्क से लोहे जैसे लोगों को पारस की भूमिका निभाते हुए कुछ से कुछ बना दिया।

हमारे वीरभद्र अब यही करेंगे। हमने भी यही किया है। लाखों लोगों की विचारणा और क्रिया पद्धति में आमूल-चूल परिवर्तन किया है और उन्हें गाँधी के सत्याग्रहियों की तरह, विनोबा के भूदानियों की तरह, बुद्ध के परिव्राजकों की तरह अपना सर्वस्व लुटा देने के लिए तैयार कर दिया। प्रज्ञा पुत्रों की इतनी बड़ी सेना हनुमान के अनुयायी वानरों की भूमिका निभाती

है। इस छोटे से जीवन में अपनी प्रत्यक्ष क्रियाओं के द्वारा जहाँ भी रहे, वहीं चमत्कार खड़े कर दिये तो कोई कारण नहीं कि हमारी ही आत्मा के टुकड़े जिसके पीछे लगे, उसे भूतपलीत की तरह तोड़ मरोड़ कर न रख दें।

अगले दिनों अनेकों दुष्प्रवृत्तियों के उन्मूलन की आवश्यकता पड़ेगी। उसके लिए ऐसे गाण्डीव धारियों की, जो अर्जुन की तरह कौरवों की अक्षौहिणी सेनाओं को धाराशायी कर दे आवश्यकता पड़ेगी। ऐसे हनुमानों की जरूरत होगी जो एक लाख पूत—सवा लाख नाती वाली लंका को पूँछ से जलाकर खाक कर दे। ऐसे परिवर्तन अन्तराल बदलने भर से हो सकते हैं। अमेरिका के अब्राहम लिंकन और जार्ज वाशिंगटन बहुत गई-गुजरी हैसियत के परिवारों में जन्मे थे, पर वे अपने जीवन प्रवाह को पलट कर अमेरिका के राष्ट्रपति बन गये।

प्रतिभाहीनों की बात जाने दीजिए, वे तो अपनी क्षमता और बुद्धिमत्ता को चोरी, डकैती, ठगी जैसे नीच कर्मों में भी लगा सकते हैं, पर जिनमें भावना भर हो वे अपने साधारण पराक्रम से समय को उलटकर कहीं से कहीं ले जा सकते हैं। स्वामी दयानन्द, श्रद्धानन्द, रामतीर्थ जैसों के कितने ही उदाहरण सामने हैं, जिनकी दिशाधारा बदली तो वे असंख्यों को बदलने में समर्थ हो गये।

इनदिनों प्रतिभायें, विलासिता में, संग्रह में, अहंकार की पूर्ति में निरत हैं। इसी निमित्त वे अपनी क्षमता और सम्पन्नता को नष्ट करती रहती हैं। यदि इनमें से थोड़ी-सी भी अपना ढर्रा बदल दें तो गीता प्रेस वाले जय दयाल गोयन्दका की तरह ऐसे साधन खड़े कर सकती हैं, जिन्हें अद्भुत और अनुपम कहा जा सके।

कौन प्रतिभा किस प्रकार बदली जानी है और उससे क्या काम लिया जाना है, यही निर्धारण उच्च भूमिका से होता रहेगा। अभी जो लोग विश्व युद्ध छेड़ने और संसार को तहस-नहस कर देने की बात सोचते हैं, उनके दिमाग बदलेंगे तो विनाश प्रयोजनों में लगने वाली बुद्धि, शक्ति और सम्पदा को विकास प्रयोजनों की दिशा में मोड़ देंगे। इतने भर से परिस्थितियाँ बदल

कर कहीं से कहीं चली जायँगी प्रवृत्तियाँ। एवं दिशाएँ बदल जाने से मनुष्य के कर्तृत्व कुछ से कुछ हो जाते हैं और जो श्रेय मार्ग पर कदम बढ़ाते हैं उनके पीछे भगवान की शक्ति सहायता के लिए निश्चित रूप से विद्यमान रहती है। बाबा साहब आमटे की तरह वे अपंगों का विश्व विद्यालय कुष्ठ औषधालय बना सकते हैं। हीरालाल शास्त्री की तरह बनस्थली बालिका विद्यालय खड़े कर सकते हैं। लक्ष्मीबाई की तरह कन्या गुरुकुल खड़े कर सकते हैं।

मानवी बुद्धि की भ्रष्टता ने उसकी गतिविधियों को भ्रष्ट, पापी अपराधी स्तर की बना दिया है। जो कमाते हैं, वह हाथोंहाथ अवांछनीय कार्यों में नष्ट हो जाता है। सिर पर बदनामी और पाप का टोकरा ही फूटता है। इस समुदाय के विचारों को कोई पलट सके, रीति-नीति और दिशाधारा में बदल सकें, तो यही लोग इतने महान बन सकते हैं, ऐसे महान कार्य कर सकते हैं कि उनका अनुकरण करते हुए लाखों धन्य हो सकें और जमाना बदलता हुआ देख सकें।

इन दिनों हमारी जो सावित्री साधना चल रही हैं, उसके माध्यम से जो अदृश्य महाबली उत्पन्न किये जा रहे हैं, वे चुपके-चुपके असंख्य अन्तःकरणों में घुसेंगे, उनकी अनीति को छुड़ा कर मानेंगे और ऐसे मणि-माणिक्य छोड़ कर आवेंगे जिससे वे स्वयं धन्य बन सकें और "युग परिवर्तन" जो अभी कठिन दीखता है, कल सरल बना सकें।

मनीषी के रूप में हमारी प्रत्यक्ष भूमिका :

मनुष्य अपनी अन्तःशक्ति के सहारे–प्रसुप्त के प्रकटीकरण द्वारा ऊँचा उठता है, यह जितना सही है, उतना ही यह भी मिथ्या नहीं कि तप-तितिक्षा से प्रखर बनाया गया वातावरण, शिक्षा, सान्निध्य-सत्संग, परामर्श-अनुकरण भी अपनी उतनी ही सशक्त भूमिका निभाता है। देखा जाता है कि किसी समुदाय में नितान्त साधारण श्रेणी के सीमित सामर्थ्य सम्पन्न व्यक्ति एक प्रचण्ड प्रवाह के सहारे असम्भव पुरुषार्थ भी सम्भव कर दिखाते हैं। प्राचीन काल में मनीषी-मुनिगण यही भूमिका निभाते थे। वे युग साधना में निरत रहे लेखनी-वाणी के सशक्त तन्त्र के माध्यम से जन-मानस के चिन्तन को उभा-

रते थे। ऐसी साधना अनेकों उच्चस्तरीय व्यक्तित्वों क जन्म देती थी—उनकी प्रसुप्त सामर्थ्य को उजागर कर उन्हें सही दिशा देकर समाज में वांछित परिवर्त्तन लाती थी। शरीर की दृष्टि से सामान्य दृष्टिगोचर होने वाले व्यक्ति भी प्रतिभा-कुशलता-चिन्तन की श्रेष्ठता से अभिपूरित देखे जाते थे।

सर्वविदित है कि मुनि एवं ऋषि ये दो श्रेणियाँ अध्यात्म क्षेत्र की प्रतिभाओं में गिनी जाती रही हैं। ऋषि वह जो तपश्चर्या द्वारा काया का चेतनात्मक अनु-सन्धान कर उन निष्कर्षों से जन-समुदाय को लाभ पहुँचाएँ तथा मुनिगण वे कहलाते हैं, जो चिन्तन-मनन स्वाध्याय द्वारा जन-मानस के परिष्कार की अहम भूमिका निभाते हैं। एक पवित्रता का प्रतीक है तो दूसरा प्रखरता का। दोनों को ही तप साधना में निरत हो सूक्ष्मतम बनना पड़ता है ताकि अपना स्वरूप और विराट् व्यापक बनाकर स्वयं को आत्मबल सम्पन्न कर वे युग चिन्तन के प्रवाह को मरोड़-बदल सकें। मुनि जहाँ प्रत्यक्ष साधनों का प्रयोग करने की स्वतन्त्रता रखते हैं, वहाँ ऋषियों के लिए यह अनिवार्य नहीं। वे अपने सूक्ष्म रूप में भी वातावरण को आन्दोलित करते—सुसंस्कारित बनाये रख सकते हैं।

लोक व्यवहार में मनीषी शब्द का प्रायः अर्थ उस महाप्राज्ञ से लिया जाता है जिसका मन उसके वश में हो। जो मन से नहीं संचालित होता अपितु अपने विचारों द्वारा मन को चलाता है, उसे मनीषी एवं ऐसी प्रज्ञा को मनीषा कहा जाता है। शास्त्रकार का कथन है—"मनीषा अस्ति येषां ते मनीषी नः।" लेकिन साथ ही यह भी कहा है—"मनीषि नस्तु भवन्ति, पावनानि न भवन्ति"—अर्थात्—मनीषी तो कई होते हैं, बड़े-बड़े बुद्धिमान होते हैं परन्तु वे पावन हों—पवित्र हों, यह अनिवार्य नहीं"। प्रतिभाशाली—बुद्धिमान होना अलग बात है एवं पवित्र-शुद्ध अन्तःकरण रखते हुए बुद्धिमान होना दूसरी। यह कथन आज की परिस्थितियों में नितान्त सही है। आज सम्पादक, बुद्धिजीवी, लेखक, अन्वेषक, प्रतिभाशाली वैज्ञानिक तो अनेकानेक हैं देश-देशान्तरों में फैले पड़े हैं लेकिन वे मनीषी नहीं हैं। क्यों? क्योंकि तपः

शक्ति द्वारा अन्तःशोधन द्वारा उन्होंने पवित्रता नहीं अर्जित की।

साहित्य की आज कहीं कमी है ? जितनी पत्र-पत्रिकाएँ आज प्रकाशित होती हैं, जितना साहित्य नित्य विश्व भर में छपता है उस पहाड़ के समान सामग्री को देखते हुए लगता है, वास्तव में मनीषी बढ़े हैं, पढ़ने वाले भी बढ़े हैं । लेकिन इन सबका प्रभाव क्यों नहीं पड़ता ? क्यों एक लेखक की कलम कुत्सा भड़काने में ही निरत रहती है एवं उस साहित्य को पढ़कर तुष्टि पाने वालों की संख्या बढ़ती है, इसके कारण ढूँढ़े जायें तो वहीं आना होगा, जहाँ कहा गया था "पावनानि न भवन्ति" । यदि इतनी मात्रा में उच्चस्तरीय, चिन्तन को उत्कृष्ट बनाने वाला साहित्य रचा गया होता एवं उसकी भूख बढ़ाने का माद्दा जन-समुदाय के मन में पैदा किया गया होता तो क्या ये विकृतियाँ नजर आतीं जो आज समाज में विद्यमान हैं । दैनन्दिन जीवन की समस्याओं का समाधान यदि सम्भव है तो वह युग-मनीषा के हाथों ही होगा ।

जैसा कि हम पूर्व में भी कह चुके हैं कि नवयुग यदि आएगा तो विचार शोधन द्वारा ही, क्रान्ति होगी तो वह लहू और लोहे से नहीं विचारों की विचारों से काट द्वारा होगी, समाज का नव-निर्माण होगा तो वह सद्विचारों का प्रतिष्ठापना द्वारा ही सम्भव होगा । अभी तक जितनी मलिनता समाज में प्रविष्ट हुई है, वह बुद्धिमानों के माध्यम से ही हुई है । द्वेष-कलह, नस्लवाद, व्यापक नर-संहार जैसे कार्यों में बुद्धिमानों ने ही अग्रणी भूमिका निभाई है । यदि वे सन्मार्गगामी होते, उनके अन्तःकरण पवित्र होते, तप ऊर्जा का सम्बल उन्हें मिला होता तो उन्होंने विधेयात्मक विज्ञान प्रवाह को जन्म दिया होता, सत्साहित्य रचा होता, ऐसे आन्दोलन चलाए होते । हिटलर ने जब नीत्से के सुपर मेन रूपी अधिनायक को अपने में साकार करने की इच्छा की तो सर्व-प्रथम सारे राष्ट्र के विचार प्रवाह को उस दिशा में मोड़ा । अध्यापक-वैज्ञानिक वर्ग नाजीवाद का कट्टर समर्थक बना तो उसकी उस निषेधात्मक विचार साधना द्वारा जो उसने "मीन केम्फ" के रूप में आरोपित की । बाद में सारे राष्ट्र के पाठ्यक्रम, अखबारों की धारा का मोड़ उसने उस दिशा में

मोड़ दिया जैसा कि वह चाहता था। जर्मन राष्ट्र नस्लवाद के अहं में सर्वश्रेष्ठ जाति का प्रतीक होने के गर्वोन्माद में उन्मत्त हो व्यापक नर संहार कर स्वयं ध्वस्त हो गया। यह भी मनीषा के एक मोड़ की परिणति है, ऐसे मोड़ की जो सही दिशा में होता तो ऐसे समर्थ सम्पन्न राष्ट्र को कहाँ से कहाँ ले जाता।

कार्लमार्क्स ने सारे अभावों में जीवन जीते हुए अर्थशास्त्र रूपी ऐसे दर्शन को जन्म दिया जिसने समाज में क्रान्ति ला दी। पूँजीवादी किले ढहते चले गये एवं साम्राज्यवाद दो तिहाई धरती से समाप्त हो गया। "डास कैपीटल" रूपी इस रचना ने एक नवयुग का शुभारम्भ किया जिसमें श्रमिकों को अपने अधिकार मिले एवं पूँजी के समान वितरण का यह अध्याय खुला जिससे करोड़ों व्यक्तियों को सुख-चैन की, स्वावलम्बन प्रधान जिन्दगी जी सकने की स्वतन्त्रता मिली। रुसो ने जिस प्रजातन्त्र की नींव डाली थी, उपनिवेशबाद एवं साम्राज्यवाद के पक्षधर शोषकों की रीति-नीतिही उसकी प्रेरणा स्रोत होगी। मताधिकार की स्वतन्त्रता, बहुमत के आधार पर प्रतिनिधित्व का दर्शन विकसित न हुआ होता, यदि रूसो की विचार धारा ने व्यापक प्रभाव जन समुदाय पर न डाला होता तो। "जिसकी लाठी—उसकी भैंस" की नीति ही सब जगह चलती, कोई विरोध तक न कर पाता। जागीरदारों एवं उत्तराधिकार के आधार पर राजा बनने वाले अनगढ़ों का ही वर्चस्व होता। इसे एक प्रकार की मनीषा प्रेरित क्रान्ति का कहना चाहिए कि देखते-देखते उपनिवेश समाप्त हो गए, शोषक वर्ग का सफाया हो गया। इसी सन्दर्भ में हम कितनी ही बार लिंकन एवं लूथर किंग के साथ-साथ उस महिला हैरिएट स्टो का उल्लेख करते रहे हैं जिसकी कलम ने कालों को गुलामी के चंगुल से मुक्त कराया। प्रत्यक्षतः यह युग मनीषा की भूमिका है।

बुद्ध की विवेक एवं नीति-मत्ता पर आधारित विचार क्रान्ति एवं गाँधी -पटेल नेहरू द्वारा पैदा की गयी स्वातन्त्र्य आन्दोलन की आँधी उस परोक्ष मनीषा की प्रतीक है, जिसने अपने समय में ऐसा प्रचण्ड प्रवाह उत्पन्न किया

कि युग बदलता चला गया। उन्होंने कोई विचारोत्तेजक साहित्य रचा हो, यह भी नहीं। फिर यह सब कैसे सम्भव हुआ। यह तभी हो पाया जब उन्होंने मुनि स्तर की भूमिका निभायी, स्वयं को तपाया विचारों में शक्ति पैदा की एवं उससे वातावरण को प्रभावित किया।

परिस्थितियाँ आज भी विषम हैं। वैभव और विनाश के झूले में झूल रही मानव जाति को उबारने के लिये आस्थाओं के मर्मस्थल तक पहुँचना होगा और मानवी गरिमा को उभारने, दूरदर्शी विवेकशीलता को जगाने वाला प्रचण्ड पुरुषार्थ करना होगा। साधन इस कार्य में कोई योगदान दे सकते है, यह सोचना भ्रान्तिपूर्ण है। दुर्बल आस्था अन्तराल को तत्वदर्शन और साधना प्रयोग के उर्वरक की आवश्यकता है अध्यात्म वेत्ता इस मरुस्थल की देखभाल करने की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेते व समय-समय पर संव्याप्त भ्रान्तियों से मानवता को उबारते हैं। अध्यात्म की शक्ति विज्ञान से भी बड़ी है। अध्यात्म ही व्यक्ति के अन्तराल में विकृतियों के माहौल से लड़ सकने—निरस्त कर पाने में सक्षम तत्वों की प्रतिष्ठापना कर पाता है। हमने व्यक्तित्वों में पवित्रता व प्रखरता का समावेश करने के लिए मनीषा को ही अपना माध्यम बनाया एवं उज्ज्वल भविष्य का सपना देखा है।

हमने अपने भावी जीवनक्रम के लिये जो महत्व पूर्ण निर्धारण किये हैं, उनमें सर्वोपरि है लोक चिन्तन को सही दिशा देने हेतु एक ऐसा विचार प्रवाह खड़ा करना जो किसी भी स्थिति में अवांछनीयताओं को टिकने ही न दे। आज जन समुदाय के मन-मस्तिष्क में जो दुमति घुस पड़ी है, उसी की परिणति ऐसी परिस्थितियों के रूप में नजर आती है जिन्हें जटिल, भयावह समझा जा रहा है। ऐसे वातावरण को बदलने के लिये व्यास की तरह, बुद्ध, गाँधी, कार्लमार्क्स की तरह, मार्टिन, लूथर, अरविन्द, महर्षि रमण की तरह भूमिका निभाने वाले मुनि व ऋषि के युग्म की आवश्यकता है, जो प्रत्यक्ष एवं परोक्ष प्रयासों द्वारा विचार क्रान्ति का प्रयोजन पूरा कर सके। यह पुरुषार्थ अन्तःक्षेत्र की प्रचण्ड तप साधना द्वारा ही सम्भव हो सकता है। इसका

प्रत्यक्ष रूप युग मनीषा का हो सकता है जो अपनी शक्ति द्वारा उत्कृष्ट स्तर का साहित्य रच सके जिसे युगान्तरकारी कहा जा सकता है। अखण्ड-ज्योति के माध्यम से जो संकल्प हमने आज से सैंतालीस वर्ष पूर्व लिया था' उसे अनवरत निभाते रहने का हमारा नैतिक दायित्व है।

युग ऋषि की भूमिका अपने परोक्ष रूप में निभाते हुए उन अनुसन्धानों की पृष्ठभूमि बनाने का हमारा मन था जो वैज्ञानिक अध्यात्म का प्रत्यक्ष रूप इस तर्क, तथ्य, प्रमाणो को आधार मानने वाले समुदाय के समक्ष रख सकें। आज चल रहे वैज्ञानिक अनुसन्धान यदि उनसे कुछ दिशा लेकर सही मार्ग पर चल सके तो हमारा प्रयास सफल माना जाएगा। आत्मानुसन्धान के लिये अन्वेषण कार्य किस प्रकार चलना चाहिए, साधना-उपासना का वैज्ञानिक आधार क्या है ? मनःशक्तियों के बिकास में साधना उपचार किस प्रकार सहायक सिद्ध होते हैं ? ऋषिकालीन आयुर्विज्ञान का पुनर्जीबन कर शारीरिक एबं मानसिक स्वास्थ्य को कैसे अक्षुण्ण बनाया जा सकता है, गायत्री की शब्द शक्ति एवं यज्ञाग्नि की ऊर्जा कैसे व्यक्तित्व को सामर्थ्यबान एवं पवित्र तथा काया को जीवनी शक्ति सम्पन्न बनाकर प्रतिकूलताओं से जूझने में समर्थ बना सकती है, ज्योतिर्विज्ञान के चिर पुरातन प्रयोगों के माध्यम से आज के परिप्रेक्ष्य में मानव समुदाय को कैसे लाभान्वित किया जा सकता है, ऐसे अनेकानेक पक्षों को हमने अथर्ववेदीय ऋषि परम्परा के अन्तर्गत अपने शोध प्रयासों में अभिनव रूप में प्रस्तुत कर दिये हैं। हमने उनका शुभारम्भ कर बुद्धिजीवी समुदाय को एक दिशा दी है, आधार खड़ा किया है। परोक्ष रूप में हम उसे सतत् पोषण देते रहेंगे। सारे वैज्ञानिक समुदाय का चिन्तन इस दिशा में चल पड़े, आत्मिकी के अनुसन्धान में अपनी प्रज्ञा नियोजित कर वे स्वयं को धन्य बना सकें, ऐसा हमारा प्रयास रहेगा। सारी मानव जाति को अपनी मनीषा के द्वारा एवं शोध अनुसन्धान के निष्कर्षों के माध्यम से लाभान्वित करने का हमारा संकल्प सूक्ष्मीकरण तपश्चर्या की स्थिति में और भी प्रखर रूप ले रहा है। इसकी परिणतियाँ आने वाला समय बताएगा।

"विनाश नहीं सृजन" हमारा भविष्य कथन :

अगला समय संकटों से भरा-पूरा है, इस बात को विभिन्न मूर्धन्यों ने अपने-अपने दृष्टिकोण के अनुसार विभिन्न प्रकार से जोरदार शब्दों में कहा। ईसाई धर्म ग्रन्थ बाइबिल में जिस "सैविन टाइम्स" में प्रलय काल जैसी विपत्ति आने का उल्लेख किया है, उसका ठीक समय यही है। इस्लाम धर्म में चौदहवीं सदी के महान संकट का उल्लेख है। भविष्य पुराण में इन्हीं दिनों महती विपत्ति टूट पड़ने का संकेत है। सिखों के गुरु ग्रन्थसाहिब में भी ऐसी ही अनेकों भविष्यवाणियाँ हैं। कवि सूरदास ने इन्ही दिनों विपत्ति आने का इशारा किया था। मिश्र के पिरामिडों में भी ऐसे ही शिलालेख पाये गए हैं। अनेकों भारतीय भविष्यवक्ताओं ने इन दिनों भयंकर उथल-पुथल के कारण अध्यात्म आधार पर और दृश्य गणित ज्योतिष के सहारे ऐसी ही सम्भावनायें व्यक्त की हैं।

पाश्चात्य देशों में जिन भविष्य वक्ताओं की धाक है और जिनकी भविष्यवाणियाँ ९९ प्रतिशत सही निकलती रही हैं, उनमें जीन डिक्सन, प्रो० हरार, एण्डरसन, जॉनबावेरी, कीरो, आर्थर क्लार्क, नोस्ट्राडेमस, मदर शिम्पटन, आनन्दाचार्य आदि ने इस समय के सम्बन्ध में जो सम्भावनायें व्यक्त की हैं, वे भयावह हैं। कोरिया में पिछले दिनों समस्त संसार के दैवज्ञों का एक सम्मेलन हुआ था, उसमें भी डरावनी सम्भावनाओं की ही आगाही व्यक्त की गयी थी। टोरोन्टो कनाडा में—संसार भर के भविष्य विज्ञान विशेषज्ञों (फ्यूचरॉण्टालाजिस्टों) का एक सम्मेलन हुआ था, जिसमें वर्तमान परिस्थितियों का पर्यवेक्षण करते हुए कहा था कि बुरे दिन अति समीप आ गए। ग्रह-नक्षत्रों के पृथ्वी पर पड़ने वाले प्रभाव को समझने वालों ने इन दिनों सूर्य पर बढ़ते धब्बों और लगातार पड़ने वाले सूर्य ग्रहणों को धरती निवासियों के लिए हानिकारक बताया है। इन दिनों सन् ८५ के प्रारम्भ में उदय हुए "हैली" धूमकेतु की विषैली गैसों का परिणाम पृथ्वीवासियों के लिए हानिकारक बताया गया है।

सामान्य बुद्धि के लोग भी जानते हैं कि अन्धा-धुन्ध बढ़ती हुई जन-संख्या के लिए अगले दिनों अन्न जल तो क्या, सड़कों पर चलने को रास्ता तक न मिलेगा। औद्योगीकरण—मशीनीकरण की भरमार से हवा और पानी भी कम पड़ रहा है और विषाक्त हो चला है। खनिज तेल और धातुएँ, कोयला, पचास वर्ष तक के लिए नहीं हैं। अणु परीक्षणों से उत्पन्न विकिरण से अगली पीढ़ी और वर्तमान जन समुदाय को कैंसर जैसे भयानक रोगों की भरमार होने का भय है। कहीं अणु युद्ध हो गया तो इससे न केवल मनुष्य वरन् अन्य प्राणियों और वनस्पतियों का भी सफाया हो जायगा। असन्तुलित हुए तापमान से ध्रुवों की बर्फ पिघल पड़ने, समुद्र में तूफान आने और हिम-युग के लौट पड़ने की सम्भावना बताई जा रही है और भी अनेक प्रकार के संकटों के अनेकानेक कारण विद्यमान हैं। इस सन्दर्भ में साहित्य इकट्ठा करना हो तो उनसे ऐसी सम्भावनाएँ सुनिश्चित दिखाई पड़ती हैं, जिनके कारण इन वर्षों में भयानक उथल-पुथल हो। सन् २००० में युग परिवर्तन की घोषणा है, ऐसे समय में भी विकास से पूर्व विनाश की—ढलाई से पूर्व गलाई की सम्भावना का अनुमान लगाया जा सकता है। किसी भी पहलू से विचार किया जाय, प्रत्यक्षदर्शी और भावनाशील मनीषी—भविष्य वक्ता इन दिनों विश्व संकट को अधिकाधिक गहरा होता देखते हैं।

पत्रकारों और राजनीतिज्ञों के क्षेत्र में इस बार एक अत्यधिक चिन्ता यह संव्याप्त है कि इन दिनों जैसा संकट मनुष्य जाति के सामने है, वैसा मानवी उत्पत्ति के समय में कभी भी नहीं आया। शान्ति परिषद आदि अनेक संस्थायें इस बात के लिए प्रयत्नशील हैं कि महाविनाश का जो संकट सिर पर छाया हुआ है, वह किसी प्रकार टले। छुट-पुट लड़ाइयाँ तो विभिन्न क्षेत्रों में होती ही रहती हैं। शीत युद्ध किसी भी दिन महाविनाश के रूप में विकसित हो सकता है, यह अनुमान लगा सकता है।

भूतकाल में भी देवासुर संग्राम होते रहे हैं, पर जन-जीवन के सर्वनाश की प्रत्यक्ष सम्भावना का, सर्वसम्मत ऐसा अवसर इससे पूर्व कभी भी नहीं आया।

इन संकटों को ऋषि-कल्प सूक्ष्मधारी आत्मायें भली प्रकार देख और समझ रहीं हैं। ऐसे अवसर में वे मौन नहीं रह सकतीं। ऋषियों के तप स्वर्ग, मुक्ति एवं सिद्धि प्राप्त करने के लिए नहीं होते। यह उपलब्धियाँ तो आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश करने वाले स्थूल शरीरधारी भी प्राप्त कर लेते हैं। यह महामानवों को प्राप्त होने वाली विभूतियाँ हैं। ऋषियों को भगवान का कार्य सम्भालना पड़ता है और वे उसी प्रयास को लक्ष्य मानकर संलग्न रहते हैं।

हमारे ऊपर जिन ऋषि का—दैवी सत्ता का अनुग्रह है, उनने सभी कार्य लोकमंगल के निमित्त कराये हैं। आरम्भिक २४ महापुरश्चरण भी इसी निमित्त कराये हैं कि आत्मिक समर्थता इस स्तर की प्राप्त हो सके, जिसके सहारे लोक-कल्याण के अति महत्वपूर्ण कार्यों को सम्पन्न करने में कठिनाई न पड़े।

विश्व के ऊपर छाये हुए संकटों को टालने के लिए उन्हें चिन्ता है। चिन्ता ही नहीं प्रयास भी किए हैं। इन्हीं प्रयासों में एक हमारे व्यक्तित्व को पवित्रता और प्रखरता से भर देना भी है। आध्यात्मिक सामर्थ्य इसी आधार पर विकसित होती हैं।

उपासना का वर्तमान चरण सूक्ष्मीकरण की सावित्री साधना के रूप में चल रहा है। इस प्रक्रिया के पीछे किसी व्यक्ति विशेष की ख्याति, सम्पदा, वरिष्ठता या विभूति नहीं हैं। एकमात्र प्रयोजन यही है कि मानवी सत्ता और गरिमा के लड़खड़ाते हुए पैर स्थिर हो सकें। पाँच वीरभद्रों के कन्धों पर वे अपना उद्देश्य लादकर उसे सम्पन्न भी कर सकते हैं। हनुमान के कन्धों पर राम लक्ष्मण दोनों बैठे फिरते थे। यह श्रेष्ठता प्रदान करना भर है। इसे माध्यम का चयन कह सकते हैं। एक गाण्डीव धनुष के आधार पर किस प्रकार इतना विशालकाय महाभारत लड़ा जा सकता था। इसे सामान्य बुद्धि से असम्भव ही कहा जा सकता है। पर भगवान की जो इच्छा होती है, वह तो किसी न किसी प्रकार पूरी होकर रहती है। महाबली हिरण्याक्ष

को शूकर भगवान ने फाड़-चीरकर रख दिया था, उसमें भी भगवान की ही इच्छा थी।

इस बार भी हमारी निज की अनुभूति है कि असुरता द्वारा उत्पन्न हुई—विभीषिकाओं को सफल नहीं होने दिया जायेगा। परिवर्तन इस प्रकार होगा कि जो लोग इस महाविनाश में संलग्न हैं, इसकी संरचना कर रहे हैं, वे उलट जायेंगे या उनके उलट देने वाले नए पैदा हो जायेंगे। विश्व-शान्ति में भारत की निश्चित ही कोई बड़ी भूमिका हो सकती है।

समस्त संसार के मूर्धन्यों शक्तिवानों और विचारवानों की आशंका एक ही है कि विनाश होने जा रहा है। हमारा अकेले का कथन यह है कि उलटे को उलटकर ही सीधा किया जायेगा। हमारे भविष्य कथन को अभी ही बड़ी गम्भीरतापूर्वक समझ लिया जाय। विज्ञान की घटाओं को प्रचण्ड तूफानी प्रवाह अगले दिनों उड़ाकर कहीं ले जायेगा और अन्धेरा चीरते हुए प्रकाश से भरा वातावरण दृष्टिगोचर होगा। यह ऋषियों के पराक्रम से ही सम्भावित है, इसमें कुछ दृश्यमान व कुछ परोक्ष भूमिका भी हो सकती हैं।

यह मानकर चलना चाहिए कि सामान्य स्तर के लोगों की इच्छा शक्ति भी काम करती है। जनमत का भी दबाव पड़ता है। जिन लोगों के हाथ में इन दिनों विश्व की परिस्थितियाँ बिगाड़ने की क्षमता है उन्हें जागृत लोकमत के सामने झुकना ही पड़ेगा। लोकमत को जागृत करने का अभियान "प्रज्ञा-आन्दोलन" द्वारा चल रहा है। यह क्रमशः बढ़ता और सशक्त होता जायेगा। इसका दबाव हर प्रभावशाली क्षेत्र के समर्थ व्यक्तियों पर पड़ेगा और उनका मन बदलेगा कि अपने कौशल, चातुर्य को विनाश की योजनायें बनाने की अपेक्षा विकास के निमित्त लगाना चाहिए। प्रतिभा एक महान शक्ति है। वह जिधर भी अग्रसर होती है, उधर ही चमत्कार प्रस्तुत करती जाती है।

वर्तमान समस्यायें एक-दूसरे से गुँथी हुई हैं। एक से दूसरी का घनिष्ठ सम्बन्ध है, चाहे वह पर्यावरण हो अथवा युद्ध सामग्री का जमाव, बढ़ती अनीति–दुराचार हो अथवा अकाल–महामारी जैसी दैवी आपदायें। एक

को सुलझा लिया जाय और बाकी सब उलझी पड़ी रहें, ऐसा नहीं हो सकता। समाधान एक मुश्त खोजने पड़ेंगे और यदि इच्छा सच्ची है तो उनके हल निकल कर ही रहेंगे।

शक्तियों में दो ही प्रमुख हैं। इन्हीं के माध्यम से कुछ बनता या बिगड़ता है। एक शस्त्र बल-धन बल। दूसरा बुद्धि बल–संगठन बल। पिछले बहुत समय से शस्त्र बल और धन बल के आधार पर मनुष्य को गिराया और अनुचित रीति से दबाया और जो मनमें आया सो कराया जाता रहा है। यही दानवी शक्ति है। अगले दिनों दैवी शक्ति को आगे आना है और बुद्धि-बल तथा संगठन बलका प्रभाव अनुभव कराना है। सही दिशामें चलने पर यह दैवी सामर्थ्य क्या कुछ कर दिखा सकती है, इसकी अनुभूति सबको करानी है।

न्याय की प्रतिष्ठा हो, नीति को सब ओर से मान्यता मिले, सब लोग हिलमिल कर रहें और मिल बाँटकर खायें, इस सिद्धान्त को जन भावना द्वारा सच्चे मन से स्वीकारा जायेगा, तो दिशा मिलेगी, उपाय सूझेंगे, नयी योजनायें बनेंगी, प्रयास चलेंगे और अन्ततः लक्ष्य तक पहुँचने का उपाय बन ही जायेगा।

"आत्मवत् सर्वभूतेषु" और "वसुधैव कुटुम्बकम्" यह दो ही सिद्धान्त ऐसे हैं, जिन्हें अपना लिए जाने के उपरान्त तत्काल यह सूझ पड़ेगा कि इन दिनों किन अवांछनीयताओं को अपनाया गया है और उन्हें छोड़ने के लिए क्या साहस अपनाना पड़ेगा, किस स्तर का संघर्ष करना पड़ेगा। मनुष्य की सामर्थ्य अपार है। वह जिसे करने की यदि ठान ले और औचित्य के आधार पर अपना ले तो काई कठिन कार्य ऐसा नहीं है, जिसे पूरा न कर किया जा सके।

अगले दिनों एक विश्व, एक भाषा, एक धर्म, एक संस्कृति का प्रावधान बनने जा रहा है। जाति, लिंग वर्ण और धन के आधार पर बरती जाने वाली विषमता का अन्त समय अब निकट आ गया। इसके लिए जो कुछ करना आवश्यक हैं, वह सूझेगा भी और विचारशील लोगों के द्वारा पराक्रम पूर्वक क्रिया भी जायगा। यह समय निकट है। इसकी हम सब उत्सुकता से प्रतीक्षा कर सकते हैं।

आत्मीय जनों से अनुरोध एवं उन्हें आश्वासन

साधना से उपलब्ध अतिरिक्त सामर्थ्य को विश्व के मूर्धन्य वर्गों को हिलाने उलटने में लगाने का हमारा मन है। अच्छा होता सुई और धागे को आपस में पिरो देने वाले कोई सूत्र मिल जाते। अन्यथा सर्वथा अपरिचित रहने की स्थिति में तारतम्य बैठने में कठिनाई होगी। मूर्धन्यों में सत्ताधीश, धनाध्यक्ष, वैज्ञानिक, और मनीषी वर्ग का उल्लेख है। यह सर्वोच्च स्तर के भी होंगे और सामान्य स्तर के भी। सर्वोच्च स्तर वालों की सूक्ष्मता जहाँ पैनी होती है। वहाँ वे अहंकारी और आग्रही भी कम नहीं होते। इसलिए मात्र उच्च वर्ग तक ही अपने को सीमित न रखकर हम मध्यम वृत्ति के इन चारों को भी अपनी पकड़ में ले रहे हैं ताकि बात नीचे से उठते-उठते ऊपर तक पहुँचने का भी कोई सिलसिला बने।

दूसरा वर्ग जागृत आत्माओं का है। इसका उत्पादन सदा से भारत भूमि में अधिक होता रहा है। महामानव, ऋषि, मनीषी, देवता यहाँ जितने जन्मे हैं उतने अन्यत्र कहीं नहीं। हमारे लिए समीप भी पड़ता है। अस्तु प्रयत्न यह करेंगे कि जहाँ कहीं भी पूर्व संचित संस्कारों वाली आत्माएँ दृष्टि-गोचर हों, उन्हें समय का सन्देश सुनायें, युग-धर्म बताएँ और समझाएँ कि यह समय व्यामोह में कटौती करके, किसी प्रकार निर्वाह भर में सन्तोष करने का है। जो हस्तगत है उसे बोया, उगाया और हजार गुना बनाया जाना चाहिए। हम अकेले ही उगे, बढ़े और गलकर समाप्त हो गए तो यह एक दुर्घटना होगी। एक से हजार वाली बात सोची और कही जा रही है तो उसकी प्रत्यक्ष परिणति भी वैसी ही होनी चाहिए। प्रज्ञा परिवार बड़ा है। फिर भारत भूमि की उर्वरता कम नहीं है। इसके अतिरिक्त अपनी योजना विश्वव्यापी है। उसकी परिधि में अकेला भारत ही नहीं समूचा संसार भी आता है। अस्तु प्रयत्न यह चला है कि विचार-क्रान्ति की प्रक्रिया को परिस्थितियों के अनुरूप व्यापक बनाने के लिए जागृत आत्माओं का समुदाय

हर क्षेत्र में हर देश में मिले। कार्य पद्धतियाँ क्षेत्रीय वातावरण के अनुरूप बनती रहेंगी पर लक्ष्य एक ही रहेगा—"ब्रेन वाशिंग"—विचार परिवर्तन—प्रज्ञा अभियान। हम सब तीर की तरह सनसनाते हुए ही लक्ष्य तक पहुँचने का प्रयत्न करेंगे। जिनमें इस प्रकार की जीवट होगी वे अनुभव करेंगे कि उन्हें कोई कोंचता, कुरेदता झकझोरता, घसीटता और बाधित करता है। यों ऐसे लोग समय की पुकार पर अन्तरात्मा की प्रेरणा से भी जग पड़ते हैं। ब्राह्म मुहूर्त में मुर्गा तक बाँग लगाने के लिए उठ खड़ा होता है तो कोई कारण नहीं कि जिनमें प्राण चेतना विद्यमान है वे महाकाल का आमन्त्रण न सुनें और पेट-प्रजनन की आड़ में व्यस्तता और अभाव ग्रस्तता की ही बहानेबाजी करते रहें। समय की पुकार और हमारी मनुहार का संयुक्त प्रभाव कुछ भी न पड़े ऐसा हो ही नहीं सकता। विश्वास किया गया है कि इस स्तर का एक शानदार वर्ग उभर कर ऊपर आयेगा और सामने ही कटिबद्ध खड़ा दृष्टि-गोचर होगा।

तीसरा वर्ग प्रज्ञा परिवार का है। इसमें हमारा व्यक्तिगत लगाव है। लम्बे समय से जिस-तिस बहाने साथ-साथ रहने के कारण घनिष्ठता ऐसी और इतनी बढ़ गई है कि उसका समापन किसी भी प्रकार हो सकना सम्भव नहीं। इसके कई कारण हैं। प्रथम यह है कि 'हमें अनेक जन्मों का स्मरण है। लोगों को नहीं। जिनके साथ पूर्वजन्मों से सघन सम्बन्ध रहे हैं उन्हें संयोग वश या प्रयत्न पूर्वक हमने परिजनों के रूप में एकत्रित कर लिया है कि और वे जिस-तिस कारण हमारे इर्द-गिर्द जमा हो गए हैं। इन्हें अखण्ड ज्योति अपने अंचल में समेटे बटोरे रही है। संगठन के नाम पर चलने वाले रचनात्मक कार्यक्रम भी इस सन्दर्भ में आकर्षण उत्पन्न करते रहे हैं। इसके अतिरिक्त बच्चों और अभिभावकों के बीच जो सहज वात्सल्य भरा आदान-प्रदान रहता है वह भी चलता रहा है। बच्चे सहज स्वभाव अभिभावकों से कुछ चाहते रहते हैं। भले ही उसे मुँह खोलकर मागें अथवा भाव भंगिमा से प्रकट करते रहें। बच्चों की आकांक्षा बढ़ी-चढ़ी होती है। भले ही वह उपयोगी हो या अनुपयोगी। आवश्यक हो या अनावश्यक। दे दिलाकर ही उन्हें चुपाया जाता है। इतनी

समझ होती नहीं कि पैसा व्यर्थ जाने और वस्तु किसी काम न आने का तर्क उनके गले उतारा जा सके। बच्चों और अभिभावकों के बीच यह दुलार भरी खींचतान तब तक चलती रहती है तब तक वे परिपक्व बुद्धि के नहीं हो जाते और उपयोगिता-अनुपयोगिता का अन्तर नहीं समझने लगते। हमारे साथ एक रिश्ता परिजनों का यह भी चलता रहा है।

मान्यता सो मान्यता। आदत सो आदत। प्रत्यक्ष रिश्तेदारी न सही पूर्व संचित सघनता का दबाव सही। एक ऐसा सघन सूत्र हम लोगों के बीच विद्यमान है जो विचार विनिमय, सम्पर्क—सान्निध्य—तक ही सीमित नहीं रहता, कुछ ऐसा भी चाहता है कि अधिक प्रसन्नता का कोई साधन कोई अवसर हाथ लगे। कइयों के सामने कठिनाइयाँ होती हैं। कई भ्रमवश जंजाल में फँसे होते हैं। कइयों को अधिक अच्छी स्थिति चाहिए। कारण कई हो सकते हैं पर देखा यह जाता रहा है कि अधिकांश लोग इच्छा आकांक्षा लेकर आते हैं। वाणी से या बिना वाणी के व्यक्त करते हैं। साथ ही सोचते है कि हमारी बात यथास्थान पहुँच गई। उसका विश्वास उन्हें तब होता है जो पूरा न सही आधा-अधूरा उपलब्ध भी हो जाता है।

याचक और दानी का रिश्ता दूसरा है। पर बच्चों और अभिभावकों के बीच यह बात लागू नहीं होती। बछड़ा दूध न पिये तो गाय का बुरा हाल होता है। मात्र गाय ही बछड़े को नहीं देती। बछड़ा भी गाय को कुछ देता है। यदि ऐसा न होता तो कोई अभिभावक बच्चे जनने और उनके लालन-पालन में समय लगाने, पैसा खर्च करने का झंझट मोल न लेते।

कहने को गायत्री परिवार, प्रज्ञा परिवार आदि नाम रखे गए हैं और उनकी सदस्यता का रजिस्टर तथा समयदान, अंशदान का अनुबन्ध भी है। पर वास्तविकता दूसरी ही है जिसे हम सब भली-भाँति अनुभव करते हैं। वह है जन्म-जन्मान्तरों से संग्रहीत आत्मीयता। जिसके पीछे जुड़ी हुई अनेकानेक गुदगुदी उत्पन्न करने वाली घटनाएँ हमें स्मरण हैं। परिजन उन्हें स्मरण न रख सके होंगे। फिर वे विश्वास करते हैं कि परस्पर आत्मीयता की कोई ऐसी मजबूत डोरी बँधी है जो कई बार तो हिलाकर रख देती है। एक दूसरे

के अधिक निकट आने, परस्पर कुछ अधिक कर गुजरने के लिए आतुर होते हैं। यह कल्पना नहीं वास्तविकता है जिसकी दोनों पक्षों को निरन्तर अथवा समय-समय पर अनुभूति होती रहती है।

यही तीसरा वर्ग है—बालकों का। इनकी सहायता से मिशन का कुछ काम भी चला है पर वह बात गौण है। प्रमुख प्रश्न एक ही है कि इन्हें हँसता-हँसाता खिलता-खिलाता देखने का आनन्द कैसे मिले? अब तक भेंट, परामर्श, सत्संग, सान्निध्य से भी इस भाव सम्वेदना की तुष्टि होती थी। पर अब तो नियति ने वह सुविधा भी हाथ से छीन ली। अब परस्पर भेंट मिलन का अध्याय समाप्त होता है। इसमें समय की कमी,या कोई व्यवस्था सम्बन्धी कठिनाई कारण नहीं है। बात इतनी भर है कि इससे सूक्ष्मीकरण में बाधा पड़ती है। चित्त भटकता है और जिस स्तर का दबाव अन्तराल पर पड़ना चाहिए वह बिखर जाता है। फलतः उस लक्ष्य की पूर्ति में बाधा पड़ती है जिसके साथ समस्त मनुष्य समुदाय का भाग्य-भविष्य जुड़ा हुआ है। अपनी निज की मुक्ति, सिद्धि या स्वर्ग उत्कर्ष जैसा कारण रहा होता तो उसे आगे कभी के लिए टहलाया जा सकता था। पर समय तो ऐसा विकट है जो एक क्षण की भी छूट नहीं देता। ईमानदार सिपाही की तरह मोर्चा सम्भालने के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं। इसलिए सूक्ष्मीकरण के सन्दर्भ में परिजनों को हमें अपनी साधना हेतु एकाकी छोड़ देना चाहिए।

बच्चों के प्रज्ञा परिजनों के—सम्बन्ध में चलते-चलाते हमारा इतना ही आश्वासन है कि वे यदि अपने भाव सम्वेदना क्षेत्र को थोड़ा और परिष्कृत कर लें तो निकटता अब की अपेक्षा भी अधिक गहरी अनुभव करने लगेंगे। कारण कि हमारा सूक्ष्म शरीर सन् २००० तक और भी अधिक प्रखर होकर जियेगा। जहाँ उसकी आवश्यकता होगी, बिना विलम्ब लगाए पहुँचेगा। इतना ही नहीं, स्नेह-सहयोग, परामर्श-मार्ग-दर्शन जैसे प्रयाजनों की पूर्ति भी करता रहेगा। कठिनाइयों में सहायता करने और बालकों को ऊँचा उठाने, आगे बढ़ाने की हमारी प्रकृति में राई-रत्ती भी अन्तर नहीं होने जा रहा है। वह लाभ पहले की अपेक्षा और भी अधिक मिलता रह सकता है।

हमारे गुरुदेव सूक्ष्म शरीर से हिमालय रहते हैं। विगत ६१ वर्षों में हमने निरन्तर उनका सान्निध्य अनुभव किया है। यों आँखों से देखने की बात मात्र जीवन भर में तीन बार ही, तीन-तीन दिन के लिए सम्भव हुई है। भाव सान्निध्य में श्रद्धा की उत्कृष्टता रहने से उसकी परिणति एकलव्य के द्रोणाचार्य, मीरा के कृष्ण और रामकृष्ण परमहंस के कालीदर्शन जैसी होती है। हमें भी यह लाभ निरन्तर मिलता रहा है। जो अपनी भाव सम्वेदना बढ़ा सकेंगे वे भविष्य में हमारी निकटता अपेक्षाकृत और भी अच्छी तरह अनुभव करते रहेंगे।

बच्चे बड़ों से कुछ चाहते हैं, सो ठीक है। पर बड़े बदले में कुछ न चाहते हों ऐसी बात भी नहीं है। नियत स्थान पर मल-मूत्र त्यागने, शिष्टाचार समझने, हँसने-हँसाने, वस्तुएँ न बखेरने, पढ़ने जाने जैसी अपेक्षाएँ वे भी करते हैं। जितना सम्भव है उतना तो उन्हें भी करना चाहिए। हमारी अपेक्षाएँ भी ऐसी ही हैं। गोवर्धन उठाने वाले ने अपने अनगढ़ ग्वाल-बालों के सहारे ही गोवर्धन उठाकर दिखाया था। हनुमान की बात किसी ने नहीं सुनी तो अपने सहचर रीछ-वानरों को ही समेट लाए। नव-निर्माण के कन्धे पर लदे उत्तरदायित्व को वहन करने में हम अकेले समर्थ नहीं हो सकते थे। यह मिल-जुलकर सम्पन्न हो सकने वाला कार्य था। सो, समझदारों में से कोई हाथ न लगा तो अपने इसी बाल परिवार को लेकर जुट पड़े और जो कुछ, जितना कुछ सम्भव हो सका करते रहे। अब तक की प्रगति का यही सार संक्षेप है।

बात अगले दिनों की आती है। हमें अपने बच्चों के लिए क्या करना चाहिए इस कर्तव्य उत्तरदायित्व का सदा ध्यान रहा है और जब तक चेतना का अस्तित्व है उसका स्मरण बना भी रहेगा। इस सम्बन्ध में स्मरण दिलाने योग्य बात एक ही है कि हमारी आकांक्षा और आवश्यकता को भुला न दिया जाय। समय निकट है। इसमें प्रत्येक परिजन का समयदान और अंशदान हमें चाहिए। जितना मिलता रहा है उससे भी अधिक मात्रा में। क्योंकि जो करना है उसके लिए तत्काल कदम उठाने हैं। सो भी बड़े कामों के लिए बड़े-बड़े लोग चाहिए, बड़े साधन भी। हमारे परिवार का हर व्यक्ति बड़ा है।

छोटेपन का तो उसने मुखौटा भर पहन रखा है। उतारने भर की देर है कि उसका असली चेहरा दृष्टिगोचर होगा। भेड़ों के समूह में पले सिंह-शावक की कथा अपने प्रज्ञा परिजनों में से प्रत्येक के ऊपर लागू होती है या हो सकती है।

हमें हमारे मार्गदर्शक ने एक पल में क्षुद्रता का लबादा झटक कर महानता का परिधान पहना दिया था। इस काया-कल्प में मात्र इतना ही हुआ था कि लोभ, मोह की कीचड़ से उबरना पड़ा। जिस-तिस के परामर्शों आग्रहों की उपेक्षा करनी पड़ी और आत्मा परमात्मा के संयुक्त निर्णय को शिरोधार्य करने का साहस जुटाना पड़ा। एकाकी चलने का आत्म-विश्वास जागा और आदर्शों को भगवान मानकर कदम बढ़े। इसके बाद एकाकी नहीं रहना पड़ा और न साधन हीन उपेक्षित स्थिति का कभी आभास हुआ। सत्य का अवलम्बन अपनाने भर की देर थी कि असत्य का कुहासा अनायास ही हटता चला गया।

हमारा परिजनों से यही अनुरोध है कि हमारी जीवनचर्या को घटना क्रम की दृष्टि से नहीं वरन् इस पर्यवेक्षण की दृष्टि से पढ़ा जाना चाहिए कि उसमें दैवी अनुग्रह के अवतरण होने से "साधना स सिद्धि" वाला प्रसंग जुड़ा या नहीं। इसी प्रकार यह भी दृष्टव्य है कि दूसरों के अवलम्बन योग्य आध्यात्मिकता का प्रस्तुतीकरण करते हुए हमारे कदम ऋषि परम्परा अपनाने के लिए बढ़े या नहीं? जिसे जितनी यथार्थता मिले वह उतनी ही मात्रा में यह अनुमान लगाये कि अध्यात्म विज्ञान का वास्तविक स्वरूप यही है। आन्तरिक पवित्रता और बहिरंग की प्रखरता में जो जितना आदर्शवादी समन्वय कर सकेगा वह उन विभूतियों से लाभान्वित होगा जो अध्यात्म तत्व ज्ञान एवं क्रिया-विज्ञान के साथ जोड़ी और बताई गई हैं।

अपने अनन्य आत्मीय प्रज्ञा परिजनों में से प्रत्येक के नाम हमारी यही वसीयत और विरासत है कि हमारे जीवन से कुछ सीखें। कदमों की यथार्थता खोजें। सफलता जाँचे और जिससे जितना बन पड़े अनुकरण का, अनुगमन का प्रयास करें। यह नफे का सौदा है घाटे का नहीं।

मुद्रकः—युग निर्माण प्रेस मथुरा।